राष्ट्र सेवा दल प्रकाशन
साने गुरुजी स्मारक, सिंहगड रोड, पुणे ४११ ०३०.
टेलि-फॅक्स : ०२०-४३३६११०

राष्ट्र सेवा दल
इतिहास और कार्य

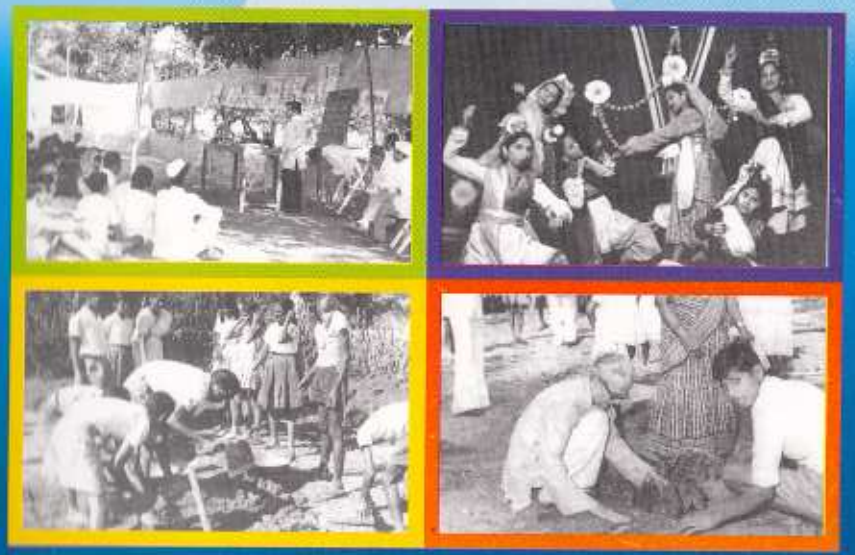

डॉ. मु. ब. शहा

हम सावित्रीकी कन्याएं हैं
अब न कहीं रुकना है ।

राष्ट्र सेवा दल
इतिहास और कार्य

डॉ. मु. ब. शहा

राष्ट्र सेवा दल - प्रकाशन

राष्ट्र सेवा दल : इतिहास और कार्य

– डॉ. मु. ब. शहा

© राष्ट्र सेवा दल

प्रथम आवृत्ति :
१२ नवंबर २००२

प्रकाशक :
राष्ट्र सेवा दल वाङ्मय विभाग
साने गुरुजी स्मारक
सिंहगड रोड
पुणे ४११ ०३०

अक्षरयोजना व मुद्रण :
साधना प्रेस
४३१, शनिवार पेठ
पुणे ४११ ०३०

मुखपृष्ठ :
शेखर गोडबोले

छायाचित्र सौजन्य :
नारायण धुमाळ, भाऊ कदम

मुल्य : रु. १००/-

प्रतिज्ञा – स्वतंत्रता के पूर्व

मैं प्रतिज्ञा करता हूं कि

"मैं न्याय्य और शांतिपूर्ण मार्ग से हिंदी राष्ट्र की स्वतंत्रता के लिए यथासंभव कोशिश करूंगा। मैं यह मानता हूं कि हिंदुस्थान में रहनेवाले सभी जाति, धर्म और पंथों के लोगों का सामाजिक दर्जा समान है। उन सब में बंधुभाव, प्रेम और एक राष्ट्रीयत्व की भावना का निरंतर विकास हो इसलिए मैं सदैव प्रयत्न रत रहूंगा।
एक स्वयंसेवक के नाते काम करते हुए मैं सदैव शांतिपूर्ण व्यवहार करूंगा। मैं राष्ट्र सेवा दल के नियमों का पालन करूंगा और अपने अधिकारियों के आदेशानुसार बर्ताव करूंगा।"

प्रतिज्ञा – स्वतंत्रता के बाद

मैं प्रतिज्ञा करता हूं कि

"भारत को जनतंत्रात्मक समाजवादी राष्ट्र बनाने की मैं हरसंभव कोशिश करूंगा।
मेरी यह मान्यता है कि भारत में रहनेवाले सभी जाति-धर्मों के लोगों का सामाजिक दर्जा समान है। उनमें बंधुभाव और प्रेम का निरंतर विकास होता रहे इसके लिए निरंतर प्रयत्न करता रहूंगा। मैं राष्ट्र सेवा दल के नियमों का और अधिकारियों के आदेश का पालन करूंगा।

प्रस्तावना

राष्ट्र सेवा दल के ख्यातिप्राप्त अध्यापक एवं समाजवादी तत्त्ववेत्ता धुलिया के निवासी प्रा.डॉ.मु.ब.शहा द्वारा लिखित 'राष्ट्र सेवा दल इतिहास एवं कार्य' पुस्तक का विमोचन हीरक महोत्सव में होने जा रहा है। मुझे इस बात की बेहद प्रसन्नता हो रही है।

राष्ट्र सेवा दल समाजवादी प्रगतिशील संगठन के रूप में वैशिष्ट्यपूर्ण है ही। परंतु समताधिष्ठित समाज-निर्मिति का सपना सँजोनेवाले, बेजोड, अनुपमेय संगठन के रूप में भी वह पूरे देश में नाम कमा चुका है। राष्ट्र सेवा दल की स्थापना सन १९४१ में हुई। स्वतंत्रता लडाई के 'चले जाओ' आंदोलन में राष्ट्र सेवा दल ने गौरवास्पद अहम भूमिका निभाई। राष्ट्र सेवा दल का उद्दिष्ट है कि 'हो कहीं भी अन्याय, पडोस में या कि दुनिया के बाजार में, जाएँगे हम दौडकर, डटकर मुकाबला करने।' श्रद्धेय एस.एम.जोशी ने अपने उज्वल चरित्र एवं विचारों की स्पष्टता के बलबूते पर सेवा दल का उचित पथप्रदर्शन किया। राष्ट्र सेवा दल की वजह से हजारों सैनिक आजादी के आंदोलन से जुडे रहे। इतना ही नहीं तो वे सांप्रदायिकता के तथा जातिअंधता के भी शिकंजे में नहीं फँसे। आज भी राष्ट्र सेवा दल अपने पंचसूत्रों के आधार पर जमातवाद, दहशतवाद, वैश्विकरण के खिलाफ रचनात्मक संघर्ष के लिए कार्यरत है।

सन १९४७ में राष्ट्र सेवा दल को काँग्रेस पार्टी से बाहर निकलना पडा। जिन महान नेताओं का आदर्श सामने रखा था, वे ही बार-बार विभाजित होते रहे। इतना ही नहीं सेवा दल स्वयं को जिस समाजवादी आंदोलन का हिस्सा मानता है, उसकी स्थिति साम्प्रत कैसी है, यह सभी जानते हैं। राष्ट्र सेवा दल ऐसे तीन कसौटी के प्रसंगों में से कुंदन-सा निखरकर, अखंडित रहकर बाहर निकला। इस घटना के बावजूद राष्ट्र सेवादल में कभी भी विभाजन नहीं हुआ, ना ही अलगाववाद का विचार किसी के मन को छू पाया। बल्कि आज भी देशभर में फैले हुए सभी समाजवादी तथा पुरोगामियों के दिलो-दिमाग में सेवा दल के बारे में आदर की भावना है।

राष्ट्र सेवा दल की एक और विशेषता यह है कि उसने आजादी के आंदोलन के बाद समाज परिवर्तन के कार्य पर तत्काल जोर देना शुरू किया।

स्वातंत्र्योत्तर काल में म.फुले तथा डॉ.बाबासाहब आंबेडकर के समाजपरिवर्तन के काम के बारे में जिन्हें सबसे पहले अहसास हुआ, उनमें राष्ट्र सेवा दल को सम्मिलित करना होगा। आज भी कई वाम पंथियों को वर्ण-व्यवस्था की असलीयत का पता नहीं चला। पर राष्ट्र सेवा दल ने जाति-निर्मूलन के लिए अपने-तरीके से कोशिश की। मैंने स्वयं पुणे के अवस्थीवाडा शाखा में २८ नवम्बर १९४६ को म.फुले की पुण्यतिथि मनाई थी, यह बात मुझे अच्छी तरह याद है। दूसरी बात कि राष्ट्र सेवा दल की वजह से सामाजिक-विषमता के खिलाफ लडने की ताकत सैनिकों को प्राप्त हुई। इस वजह से वे म.फुले तथा आंबेडकर के विचारों तक पहुँच पाए। डॉ.राममनोहर लोहिया की जाति-नीति की वजह से भी सैनिकों के विचारों में प्रगल्भता आ पाई।

राष्ट्र सेवा दल केवल सत्तापरिवर्तन के लिए उत्सुक नहीं है। उसका उद्देश्य व्यवस्था परिवर्तन है। भारत की राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक विषमता को खदेडकर समाजवाद पर आधारित सामाजिक व्यवस्था का निर्माण किस प्रकार हो सकता है, इस संबंध में राष्ट्र सेवा दल के सैनिकों ने सपना देखा है और उसे साकार करने की निरंतर जद्दोजहद चलती रही है। राष्ट्र सेवा दल के इतिहास को उजागर करने की दृष्टि से डॉ.मु.ब.शहा की यह किताब बहुत उपयोगी सिद्ध होगी। राष्ट्र सेवा दल के कार्य का और ज्यादा विस्तार हो, इसके लिए जानबूझकर यह किताब हिंदी में प्रकाशित की जा रही है। पुस्तक-लेखन के लिए मेरे मित्र डॉ.मु.ब.शहा ने जो अथक मेहनत की, उसके लिए मैं उनका कृतज्ञ हूँ।

भाई वैद्य

१२ नवंबर २००२ — अध्यक्ष – राष्ट्र सेवा दल

प्रकाशक की ओर से

राष्ट्र सेवा दल के वाङ्मय विभागद्वारा 'राष्ट्र सेवा दल इतिहास और कार्य' यह किताब हीरक महोत्सव के अवसर पर प्रकाशित हो रही है। ज्येष्ठ सेवा दल सैनिक तथा हिंदी के जानेमाने लेखक डॉ.मु.ब.शहा ने इस किताब का लेखन किया है यह बेहद प्रसन्नता की बात है।

समताधिष्ठित समाजनिर्मिति का उद्दिष्ट रखनेवाले राष्ट्र सेवा दल जैसे संगठन के कार्यकर्ताओं का वैचारिक विश्व समृद्ध करने के लिए वाङ्मयनिर्मिति करना जरूरी है। यह किताब वह जरूरत पूरी करेगीही। लेकिन अपनी गौरवास्पद विरासत का अभिमान मन में रखते हुए भी साठ साल में हमारी खामियाँ क्या थीं, किस क्षेत्र में हम कमजोर साबित हुए तथा इन कमियों को दूर करने के लिए संगठित प्रयास की दिशा क्या हो? इस तरह का विश्लेषणात्मक विचार करने के लिए सेवा दल सैनिक किताब पढकर प्रवृत्त होंगे यह मेरा विश्वास है।

इस पुस्तक को सफलतापूर्वक वास्तविक रूप देने में स्वयं लेखक, महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा सभा के कार्याध्यक्ष, ज्येष्ठ प्राध्यापक सु. मो. शाह, अर्थपूर्ण मुखपृष्ठ बनानेवाले शेखर गोडबोले, साधना प्रेस, इन सभी ने अपना-अपना सहयोग दिया। उनका मैं आभारी हूँ।

इस पुस्तक की कल्पना सेवा दल अध्यक्ष भाई वैद्यजी की थी। उन्होंने हर स्तर तर उसके लिए मार्गदर्शन दिया। उनका भी मैं आभारी हूँ।

सेवा दल विचारों को जनमानस में प्रसारित करने और सेवा दल कार्यकर्ताओं का वैचारिक प्रशिक्षण करने हेतु और भी पुस्तक-पुस्तिकाएँ वाङ्मय विभाग प्रकाशित करेगा। इस बारे में आपके सुझावों का स्वागत होगा।

सुभाष वारे

१२ नवंबर २००२ प्रमुख, वाङ्मय विभाग, राष्ट्र सेवा दल

अपनी ओर से

'राष्ट्र सेवा दल का हीरक महोत्सव होने जा रहा है। मैं चाहता हूं कि सेवादल का इतिहास तुम लिख दो। लिखोगे?' राष्ट्र सेवादल के वर्तमान अध्यक्ष और प्रख्यात समाजवादी नेता मा. श्री भाई वैद्यजी ने एक समारोह में मुझसे यह पूछा।

मैंने 'हाँ' कहा।

अगर इतिहास का अर्थ – 'इति + ह + आस = ऐसा ऐसा हुआ' यही है, तो यह लेखन राष्ट्र सेवा दल से संबंधित मुख्य मुख्य घटनाओं का कालक्रमानुसार लेखाजोखा है।

विभिन्न प्रेरणाओं, प्रसंगों और घटना चक्रों के भीतर से गुजरते हुए अपनी साठ साल की जिंदगी पूरी करनेवाले एक प्राणवान संगठन की यह गाथा अक्षरबद्ध करना अपने आपमें एक रोमांचक अनुभव था। यह केवल एक संगठन का नहीं, एक परमत्यागी, उर्जस्वल और जुझारू पीढी का अदम्य आकांक्षाओं का भी इतिहास है।

संभव है कुछ घटनाएं, कुछ नाम छूट गए हों और उस कारण किसी किसी को यह इतिहास इतिहास ही न लगे। मैं उनका क्षमाप्रार्थी हूं।

राष्ट्र सेवा दल के प्रथम बौद्धिक प्रमुख और मार्गदर्शक आदरणीय गुरुवर्य प्रा. ग. प्र. प्रधानजी का मैं अत्यंत कृतज्ञ हूं। इस लेखन के लिए मैंने बार बार उन्हें तकलीफ दी। यह उनकी भलमनसाहत थी कि अपनी अपार व्यस्तता में से भी समय निकालकर वे मेरा मार्गदर्शन करते रहे।

मेरे जीवन व्यवहार और लेखन व्यवहार में मेरे अभिन्न मित्र प्रा. डॉ. पीतांबर सरोदे और प्रा. डॉ. विश्वास पाटील का सहयोग रहता ही है। इस ग्रंथ में भी है, उनके प्रति कृतज्ञता।

मा. श्री भाई वैद्यजी और विभिन्न संदर्भ सामग्री मुझतक पहुंचानेवाले सेवादल के सभी मित्रोंका हृदय से आभारी हूँ। लेखन का मुख्य आधार राष्ट्र सेवा दल द्वारा प्रकाशित दलपत्रिकाएं, विभिन्न स्मरणिकाएं तथा पुस्तकें हैं।

इत्यलम्।

१२ नवंबर २००२ **– डॉ. मु. ब. शहा**

६१ सुयोगनगर, धूलिया (महाराष्ट्र) - ४२४००२.

अनुक्रम...

१. इतिहास के पन्नों से १

२. सेवादल के बुनियादी सिद्धांत २९

३. संगठन – कदम दर कदम ४०

४. राष्ट्र सेवा दल का संस्कृति समृद्ध उल्लास -- कलापथक ७६

५. ग्रामीण पुनर्रचना का अभिनव प्रयोग –
साने गुरुजी सेवा पथक ९५

६. विचार-यात्रा १०७

७. महिलाओं के उत्थान के लिए १२४

८. 'आंतरभारती' १३३

९. छात्रभारती १४५

१०. अंतर्प्रांतीय विभाग – अंतर्राष्ट्रीय विभाग १५३

११. भविष्य की ओर १६३

■ पूर्ण समय कार्यकर्ता यादी १७५

■ राष्ट्र सेवा दल का झंडा १७९

॥अध्याय पहला॥

इतिहास के पन्नों से

इतिहास से प्रेरणा लेकर किसी भी राष्ट्र की तरुणाई बुनाती है, उस राष्ट्र का वर्तमान और भविष्य! अंग्रेजो के गुलाम भारत के पास अपना एक तेजोदित इतिहास था। इसी इतिहास से प्रेरणा लेकर यहाँके युवक अंग्रेज सत्ता के खिलाफ लडने के लिए मैदान में उतरे। १८५७ में मंगल पांडे के बलिदान से एक चिंगारी उठी और देखते देखते पूरे देश में बलिदानियों के शोले भडक उठे। देश में और देश के बाहर भी वे जाँबाज उठकर खडे हो गये जिन्हें न लाठी-गोली रोक सकती थी. न फाँसी के फंदे, न जेल की ऊँची, ऊँची पथरीली दीवारें।

एक ओर न्या.रानडे, फिरोजशहा मेहता, रोमेशदत्त, दादाभाई नौरोजी, गोपाल कृष्ण गोखले, पं.मदन मोहन मालवीय, पं.मोतीलाल नेहरू जैसे नरम दल के असंख्य कार्यकर्ता थे, तो दूसरी ओर वीर सावरकर, बिपिनचंद्र पाल, अरविंद घोष, लाला लजपतराय, सुब्रह्मण्यम् नायर, लोकमान्य तिलक जैसे गरम दल के सैकडों युवकों ने देश के लिए अपनी जान की बाजी लगा दी थी।

१८८५ में राष्ट्रीय काँग्रेस की स्थापना हुई और फिर १९२०, १९३०, १९३२, १९४०, १९४२ में आंदोलन की तेज लपटें उठती रहीं। लोकमान्य तिलक ने स्वराज, स्वदेशी, बहिष्कार और राष्ट्रीय शिक्षा की चतु:सूत्री कि, तो महात्मा गांधीजी ने रचनात्मक कार्यों पर जोर देते हुए एक चौदह सूत्री कार्यक्रम देश के सामने रखा। ऐसा नहीं था कि सारे देश की तरुणाई इन कार्यक्रमों में कूद पडी थी। पर कुछ निर्भय युवक और कुछ सेवाभावी कार्यकर्ताओं ने अवश्य अपना सब कुछ त्यागकर इस 'बलिपंथ'

के यात्री बनना तय किया था। उनकी प्रेरणा अवश्य युवा समाज तक पहुँच रही थी। ये युवा किसी एक विशाल संगठन के मातहत काम नहीं करते थे। उनकी अपनी स्वयंप्रेरणा थी और छोटे-छोटे गुट थे।

वैसे भारत में स्वयंसेवी संगठनों का इतिहास बहुत पुराना है नहीं। १९२३ में पहला सुगठित अखिल भारतीय स्वयंसेवी संगठन बना। उसके पहले जो छोटे-बडे संगठन थे, उनका कोई एक निश्चित स्वरूप नहीं था।

सही माने में 'युवा आंदोलन' जैसी किसी संकल्पना से लोगों का कोई परिचय नहीं था। समय समय पर अलग अलग प्रांतों में कुछ प्राकृतिक या मनुष्यनिर्मित उत्पात होते थे। उनके निवारणार्थ कुछ तात्कालिक संगठन खडे हो जाते थे। काम होते ही वे भी अलोप हो जाते। जैसे, बंगाल के विभाजन के समय बंगाल में, १९१८ में खेडा जिले में पडे भयंकर अकाल के समय गुजरात में, नागपुर झंडा सत्याग्रह के समय नागपुरमें, युवाओं के स्वयंसेवी सगंठन बने और बाद में विलिन हो गए।

धार्मिकता के कारण संगठन खडे हो जाते, पर उनका कार्यकाल उस धार्मिक कृत्य की पूर्तता तक ही होता था। किसी एक विचार या सिद्धांत को समर्पित युवा-संगठनों का दौर १९वी सदी में शुरू हुआ।

समाजवादी युवा संगठन की शुरुआत १९वी सदी के अंत में हुई। १८८६ में बेल्जियम में उसका प्रारंभ हुआ, युवा सैनिकों में तानाशाही के खिलाफ प्रचार करना ही इस संगठन का प्रमुख काम था। आगे चलकर स्वीडन (१८९५), स्वित्झर्लंड (१९००), इटली (१९०१), नॉर्वे (१९०२), स्पेन (१९०३), द.जर्मनी (१९०४), ऑस्ट्रिया, हंगेरी (१८९४), उत्तर जर्मनी (१८०४-५) में समाजवादी युवकों के गुट स्थापित हुए। १९०७ के बाद समाजवादी युवा संगठनोंकी एक अंतर्राष्ट्रीय संस्था स्थापित हुई।

१९१७ में बोल्शेव्हिक क्रांति हुई और तानाशाही के अत्याचार तथा पूंजीवाद के शोषण के खिलाफ लडनेवाली अजेय ताकत के रूप में समाजवादी युवकों की ओर सारी दुनिया देखने लगी। युवकों की इस सत्ता ने बाद के काल में आश्चर्यजनक कारनामें किए।

छात्रों के आंदोलन के कारण अमरिका के अध्यक्ष को अपना जापान-दौरा रद्द करना पडा। अपने बौद्धधर्मीय विरोधकों पर अत्याचार करनेवाले दिएम सरकार के खिलाफ छात्रों ने कमर कस ली। दक्षिण कोरिया में सिंगमन

ह्यो के खिलाफ जो उठाव हुआ उसकी प्रेरणा छात्रों की थी। दक्षिण कोरिया की राजनीति पर सबसे ज्यादह दबाव युवा संगठनोंका रहा। ब्रह्मदेश में सरकार के खिलाफ छात्रों ने कई वर्षों तक संघर्ष जारी रखा। फिडल कास्ट्रो की ओर से अमरिकी युवा लड रहे थे। फ्रांस के विश्वविद्यालयों में शिक्षा पद्धति में सुधार हो इसलिए छात्रों ने संघर्ष छेडा। काले और गोरे लोगों को समान अधिकार मिले इसलिए अमेरिकन युवा रास्तों पर उतर आए।

विकसित और अविकसित राष्ट्रों में युवाओं के आंदोलनों के ऐसे दौर आज भी जारी है। इनमें से अधिकांश आंदोलनों मे हिंसा का आधार लिया गया। पर भारत में जब हिंदुस्थानी सेवादल की नींव पड रही थी तब माहौल अलग था।

अंग्रेजों की निरंकुश सत्ता के खिलाफ असंतोष के स्वर उठ रहे थे। मंगल पांडे से लेकर भगतसिंग, राजगुरु, आजाद तक के युवकों की एक पीढी थी जो अपनी जान की पर्वाह किए बगैर स्वतंत्रता के आंदोलन में कुद पडी थी। स्कूल-कालिज की पढाई छोडकर किशोर, युवक, युवतियां एक ऐसे अहिंसक आंदोलन को चला रहे थे जो इसके पहले देश में उपलब्ध नहीं था। इसी आंदोलन की दो धाराएं बनीं। एक, वह जो अंततः इस निर्णय पर पहुंची थी कि गोली का जबाब गोली ही है। दूसरी वह जिसे मार्टिन ल्यूथर किंग ने "कन्स्ट्रक्टिव ड्रॉप आऊटस्' कहा था।

हिंदुस्थानी सेवादल

किसी एक विचार और आचार से संबंधित पूरा राष्ट्रव्यापी कोई युवा संगठन तब देश में नहीं था। युवकों में उत्साह था, उमंग थी। वे देश के लिए कुछ करना भी चाहते थे, पर सही राह नहीं मिल रही थी। १९२३ में कर्नाटक के कोकोनाडा में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। इस अधिवेशन में प्रख्यात समाजसेवी डॉ.ना.सु. हर्डीकर उपस्थित थे। १९२२ के नागपुर के झंडा सत्याग्रह में उन्होंने यह देखा कि देश के अलग अलग प्रांतों से युवक-युवतियों के झूंड सत्याग्रह में हिस्सा लेने चले आ रहे हैं। सब के मन में देश की आजादी की ललक थी। राष्ट्रका झंडा सभी के लिए आदर और सम्मान की वस्तु थी। पर उस सम्मान की अभिव्यक्ति में न कोई अनुशासन था, न कोई पद्धति। अब आवश्यकता थी युवाओं

के उस उफनते उत्साह को एक सूत्र में बांधने की। अपने मित्रों से उन्होंने दीर्घ विचार-विमर्श किया और कोकानाडा के काँग्रेस अधिवेशन में 'हिंदुस्थानी सेवादल' की नींव रखी।

डॉ.हर्डीकर बडे कर्मठ कार्यकर्ता थे। इसमें दो मत नहीं होने चाहिए कि वे राष्ट्रवादी युवा संगठन के आद्यप्रणेता तथा संस्थापक है। युवकों में होनेवाली देशप्रेम की भावना को डॉ.हर्डीकर के कारण एक सुयोग्य दिशा मिली। पं.जवाहरलाल नेहरू 'हिंदुस्थानी सेवादल' के पहले अध्यक्ष बने और सचिव पद की जिम्मेदारी डॉ.ना.सु.हर्डीकरजी ने संभाली।

सही दिशामें बढते कदम

डॉ.हर्डीकर को इसका भान था कि उन्हें राष्ट्र की स्वतंत्रता के लिए जूझनेवाला, मजबूत मन और मजबूत कलाईवाला एक अनुशासनबद्ध युवा संगठन खडा करना है। उनके सारे प्रयत्न उसी दिशामें थे और वह दिशा बिलकुल सही थी। जहाँ जहाँ भी काँग्रेस के अधिवेशन होते वहाँ वहाँ यह संगठन व्यवस्था और सेवा कार्यमें जूट जाता। लगभग हर प्रांतमें संगठन के शिबिर लगते और उसमें हिस्सा लेनेवालोंकी तादाद काफी होती। डॉ.हर्डीकर को इसलिए यह जरूरत महसूस हुई कि संगठन के लिए अपना सारा समय देनेवाले कार्यकर्ताओंकी संगठक के नाते नियुक्ति की जाय। झंडावंदन और झंडे की रक्षा करनेवाली एक विशिष्ट पद्धति उन्होंने निर्माण की। उस कारण राष्ट्रका झंडा राष्ट्र की एक अमूल्य निधि होती है, इसका भान युवाओंमें विकसित होने लगा।

'स्कॉऊट ॲन्ड गाईड' संस्था की स्थापना बेडेन पॉवेल ने सन १९०९ में की। उसकी साख लगभग सारी दुनियाभर थी। डॉ.हर्डीकर यह चाहते थे कि 'हिंदुस्थानी सेवादल' स्काऊट से अलग अपनी पहचान रखे। उन्होंने 'व्हॉलेंटियर' नामक अंग्रेजी मासिक पत्रिका शुरू की, तथा किशोरों के लिए एक अध्ययन-क्रम भी बनाया। 'सेवादल परिषद' में, जो काँग्रेस अधिवेशन की समाप्ति के बाद तुरंत उसी स्थानपर हुआ करती थी, सेवादल के स्वरूप और कार्यपर काफी बहस होती।

१९२५ में कानपुर अधिवेशनमें श्री.प्यारेलाल पार्षद का सर्वाधिक प्रसिद्ध गीत 'झंडा ऊंचा रहे हमारा' गूंज उठा। यह गूंज पूरे देशमें फैली।

१९२६ में 'हिंदुस्तानी सेवादल'ने अपना संविधान तैयार किया। १९२७ से यह संगठन अपने लिए स्वतंत्र रूपमें निधी इकट्ठा करने लगा। अब कई प्रांतोंमें उसका कार्य फैल चुका था। महाराष्ट्र में उसकी कई शाखाएं खुलीं। कर्नाटक के बागलकोट में भी एक शाखा शुरू हुई।

१९२३ से १९३० के दरमियान 'हिंदुस्थानी सेवादल'ने पूरे राष्ट्रका ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लिया। यह सच है कि वह काँग्रेस का अधिकृत संगठन नहीं था, उल्टे काँग्रेसमें ही एक वर्ग ऐसा था जो 'हिंदुस्थानी सेवादल'की कार्यपद्धति से नाराज था। उन्हें यह संगठन अर्धसैनिक संगठन लगता था और काँग्रेसद्वारा स्वीकृत अहिंसा तथा सत्याग्रह के तत्त्व उससे बाधित होते ऐसी उनकी मान्यता थी। फिर भी काँग्रेस के नेताओंमें से कई उच्चपदस्थ नेताओंका 'हिंदुस्थानी सेवादल' को नैतिक समर्थन मिलता रहा। स्वयं गांधीजी और पं.नेहरू यह चाहते थे कि राष्ट्र कार्य के लिए युवाओंका एक अनुशासनबद्ध दल हो।

'हिंदुस्थानी सेवादल' अपना उद्देश्य जाहिर कर चुका था। "स्वराज्य प्राप्ति के लिए शांतिपूर्ण और न्याय्य मार्गसे प्रयत्नवाले लोगोंको शिक्षा देना और उन्हें त्याग तथा समर्पण के लिए सिद्ध करना।"

सेवादल ठीक इसी राहपर आगे बढ रहा था। और अब सरकार की नजर भी उसपर टिकी थी। मुख्यतः वह एक स्वयंसेवक दल था, पर उसका गणवेष, कवायद, लाठी और अनुशासनबद्धता ने उसके प्रति जनतामें सम्मान की भावना निर्माण कर थी। अब काँग्रेस के नेता भी यह चाहने लगे थे कि सेवादल उनके नियंत्रणमें रहे तो अच्छा। अंततः १९३१ के कराची अधिवेशनमें वर्किंग कमिटीने एक प्रस्ताव पारित कर 'हिंदुस्थानी सेवादल' को अपने कार्यक्रमोंका एक हिस्सा घोषित किया। अब उसका नाम बना– 'काँग्रेस सेवादल।' इस रूपांतर को पं.नेहरू की मान्यता थी।

श्री भाऊसाहब रानडे

प्रारंभसे ही सेवादल के संगठन और विकास में भाऊसाहब रानडे की एक महत्त्वपूर्ण भूमिका थी। प्रांतिक काँग्रेस के आदेशानुसार जब हर प्रांतमें 'काँग्रेस सेवादल' की शाखाएँ शुरू हुईं, तो महाराष्ट्र प्रांतिक काँग्रेस सेवादल' के प्रमुख श्री.भाऊसाहब रानडे ही बने। वे तब प्रांतिक काँग्रेस

कमेटी के सचिव भी थे। १५ दिसंबर १९३१ से काँग्रेस सेवादल का पहला प्रांत शिबिर शुरू हुआ। भाऊसाहब रानडे और राघुअण्णा लिमये इस शिविर के प्रमुख थे। शिविरका उद्घाटन सरदार वल्लभभाई पटेल ने किया। कुल ५५ युवक जिनमें ५ महिलाएँ भी थीं, शिविर में सहभागी हुये थे।

१९३२ में देशमें स्वतंत्रता आंदोलन की लहर चल पडी थी। सरकार की हर संभव कोशिश थी कि इस उठती लहर को दबा दिया जाय। संगठनों, समाचार-पत्रोंपर पाबंदी लायी गई। शिबिर वगैरा बंद कर दिये गये। काँग्रेस सेवादल को भी गैर कानूनी करार कर दिया गया। लगभग १९३७ तक उसपर यह पाबंदी लागू रही। दरमियान उत्तर प्रदेश में "कौमी सेवादल" और गुजरातमें 'काँग्रेस सेवादल' के नामसे युवकोंको इकट्ठा करने की कोशिश की गयी।

अस्थायी दल

१९३६ में पं.जवाहरलाल नेहरू महाराष्ट्रमें आये थे। उनकी स्वागत संबंधी व्यवस्था ठीक हो इसलिए एक अस्थायी दल तैयार किया गया। उसका नाम रखा गया... 'राष्ट्र सेवा दल'। सही माने में यही राष्ट्र सेवा दलकी शुरुआत थी। पंडितजी के सारे कार्यक्रमोंकी व्यवस्था इस दलने सुचारु ढंग से की। १९३४ के दिसंबर में काँग्रेस का अधिवेशन महाराष्ट्र के जळगाव जिलेके फैजपूरनामक छोटे-से देहात में हुआ। काँग्रेस पहली बार सही मानेमें देहातमें पहुंच रही थी। वहांकी सारी व्यवस्था के लिए जो दल बनाया गया, उसका नाम 'राष्ट्र सेवादल'ही था, और युवकोंमें बहुत प्रिय होनेवाले श्री रावसाहब पटवर्धन उसके प्रमुख थे।

पर जब काँग्रेस का मंत्रीमंडल बना और संगठनोंपर लगी पाबंदियां हटीं, तो इस 'राष्ट्र सेवादल' को पुनश्च 'काँग्रेस सेवादल' बनाया गया। हेतु स्पष्ट था, 'राष्ट्र सेवा दल' की स्वतंत्र सत्ता न रहे।

१९२५ में डॉ.हेडगेवारने "राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ' की स्थापना की थी। 'हिंदुओंका एक प्रबल संगठन खडा रहे' यही संघ की स्थापना का मुख्य उद्देश था। डॉ.हेडगेवार लोकमान्य तिलक के विचारोंके प्रभाव में थे, और गांधीजी के मार्गसे स्वतंत्रता मिलेगी इसपर उन्हे कोई भरोसा नहीं था। संघ की अपनी एक विशिष्ट कार्यप्रणाली थी जो सेवादल जैसे अंजातीय संगठनों

की कार्यपद्धतिसे मेल नहीं खाती थी। देशमें एक ओर जाति के नामपर ध्रुवीकरण होता रहा तो दूसरी ओर जातिधर्म निरपेक्ष संगठनों की अधिक आवश्यकता आज की स्थितिमें है, ऐसा काँग्रेस नेताओंसहित अन्य कइयोंको महसूस होता रहा। संघ के कार्यक्रमोंमें युवकोंको आकर्षित करनेवाले साहसी कार्यक्रमोंकी अधिकता थी। इसलिए युवकोंका उस दिशामें मूडना स्वाभाविक था।

वैसे युवावर्ग को अपनी ओर खिंचनेका एक तंत्र कम्युनिस्टोंने बहुत पहलेसे विकसित किया था। १९१७ में जब बोलाशेव्हिकोने रूसपर अपना अधिकार जमाया तबसे या उसके पूर्व से वे इस तंत्रका उपयोग बडी चालाकीसे युवकोंको अपनी ओर आकर्षित करनेके लिए किया करते थे। दुनियाभर के अर्धसैनिकी संगठन किसी न किसी रूपमें इसी तंत्रका उपयोग अपनी सदस्य संख्या बढाने के लिए करते रहे हैं। भारतमें भी ऐसे युवा-संगठनोंकी कमी नहीं। युवाओंका जोश और उनकी ध्येयवादिता को एक विशाल और सर्वसमावेश सपना देना और उस स्वप्नपूर्तीके लिए उन्हें निरंतर प्रेरित करना आसान काम नहीं है। हम यह न भूले कि सत्तापर होने के बाद और न होने के बाद युवकोंके प्रति कम्युनिस्टोंके दृष्टिकोण में जमीन और आसमाँका फर्क नजर आता है। वे जब सत्तामें होते हैं तब युवकोंका उपयोग एक साधन के रूपमें करनेसे बाज नहीं आते। कम्युनिस्टों के समानान्तर चलनेवाले अन्य संगठन भी इसी राहपर चलनेवाले थे।

नवनिर्माण की आवश्यकता

देश की तरुणाई के सामने तब सबसे अहम् सवाल भलेही आजादी का हो, पर जाति-पाँति, धर्म, वर्ण तथा अज्ञान के कारण जो असंख्य दरारें समाजजीवन में पडती जा रहा थी उन्हें मिटानेका प्रश्न भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं था। समाज को एक ऐसे युवा संगठन की जरूरत थी। जो पूरी निष्ठा के साथ इस नवनिर्माण में लग जाय।

गांधीजीने यह कहा था कि स्वराजमें स्वतंत्रता प्राप्ति के साथ साथ जो विधायक कार्य होंगे, उनमेंसे ही राष्ट्र का निर्माण होगा। (Fulfilment of constructive work is Swaraj) सेवा दल में प्रारंभसेही विधायक

कामोंके प्रति युवकोंमें लगन जगाने का काम चल रहा था। जिन जिन कारणोंसे समाज में फूट पडती थी, आदमी आदमी से दूर जाता था, उन सभी कारणोंके साथ संघर्ष करने की सीख सैनिकोंको मिल रही थी।

श्री एस.एम. जोशी तब जेलमें थे। पर बाहर होनेवाले कार्यकर्ताओंमें बहुत सजगता थी। वे चैनसे बैठनेवालोंमे थे नहीं। १९४० मेंही श्री नानासाहब गोरे के घरपर एक बैठक हुई। उस बैठक में श्री नानासाहब गोरे, शिरूभाऊ लिमये, श्री वि.म.हर्डीकर और श्री ग.प्र.प्रधान उपस्थित थे। चर्चामें नानासाहब ने कहा कि 'हमें केवल प्रतिक्रियात्मक भूमिका नहीं लेनी है। हम एक ऐसी सकारात्मक भूमिका लेंगे जो युवकोंको आकर्षित करेगी और उन्हें नवनिर्माण के साथ जोड भी देगी। जिसतरह श्री ना.सु.हर्डीकर के काँग्रेस दल में युवक आते थे, उस तरह सेवादलमें भी आने चाहिए और हमें उन्हें सुसंस्कारित कर देशकार्य में लगा देना चाहिए।'

श्री.नानासाहब की सोच बिलकुल सही थी। चर्चामें आगे यह भी मुद्दा उभरा कि युवकोंको केवल एक दर्शक की तरह सामने बैठाकर व्याख्यानोंकी खुराक नहीं पिलानी है। हम उनके साथ खुली हवामें खेले, कुदे। उन्हें गीत सिखाए, खुद भी सीखे। और अगर चर्चाही करनी है तो स्वतंत्रता आंदोलन के विविध रूपोंके बारेमें चर्चा करें।

भविष्यकालीन सेवादल के स्वरूप का ढाँचा इस पहली बैठकमेंही तैयार हो गया था। किसी एक पार्टी, कोई एक सीमित विचारधारा या किसीभी प्रकार की सत्ताकांक्षा के लिए सेवादल नहीं बना। वह बना देशके नवनिर्माण के लिए। उसका जन्म भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन की कोख से हो रहा था। वह केवल युवाओंका एक संगठन बनकर न रहे, समाजपरिवर्तन का मुक्त विद्यापीठ बने यह सोचकर उसके संस्थापकोंने जी-जानसे उसके विकास के लिए कोशिश की। बहुत पारंपरिक होनेवाले प्रस्थापित समाजमें एक नवनिर्माण की आवश्यकता थी। हिंदु राष्ट्रवादी संगठनोंकी यह कोशिश थी कि समाज परंपरागत रूढियोंमें बंधा हुआ रहे। वह युगोंसे चली आयी, समाजव्यवस्था को ही ठीक माने, तथा धर्म की मर्यादाओंका पालन करे। पर दूसरी ओर एक वह संगठन आकार ले रहा था, जिसने हर कीमतपर नये समाज की रचना का बीडा उठा लिया था।

राष्ट्र सेवादल – स्थापना

१९४० के रामगढ अधिवेशनमें पंडितजीने भारत के स्वतंत्रता की माँग की। यह तय हुआ कि अंग्रेज सरकार के सारे अध्यादेशोंका अहिंसक मार्गसे विरोध किया जाय। वैयक्तिक सत्याग्रह का दौर शुरू हुआ। सबसे पहले सत्याग्रही बने विनोबाजी। पं.जवाहरलाल नेहरू, वल्लभभाई पटेल, मौलाना आजाद सहित कई नेताओंने सत्याग्रहमें हिस्सा लिया। पूरे देशभरमें लगभग २५,००० लोग इस आंदोलनमें उतरे और उन्हें जेल में ठूंसा गया।

जेलके बाहर जो नेता थे वे यह देख रहे थे कि समाजमें धीरे धीरे जातिवादी संगठनोंका जोर बढता जा रहा है। उन्हें तीव्रतासे यह महसूस होने लगा कि सेवा दल की पुनर्रचना की जाय। पूना के श्री.शिरूभाऊ लिमये इस कामके लिए आगे बढे। श्री.नानासाहब गोरे, शिरूभाऊ लिमये और डॉ.वि.म.हर्डीकर इन तीनोंने एक परिपत्रक निकालकर जेल के बाहर जो कार्यकर्ता थे उन्हें पूनामें इकट्ठा किया।

२४ मई से ३ जून १९४१ तक लगभग २० कार्यकर्ताओंका एक शिर्विर पूनामें संपन्न हुआ। श्री.शिरुभाऊ लिमये इस शिबिर के प्रमुख थे। काफी सोच-विचार के बाद यह तय हुवा कि पुराने सेवादल की पुनर्रचना की जाय, और जो नया संगठन बनेगा उसका नाम रखा जाय– 'राष्ट्र सेवादल'। शिविर में उपस्थित कुछ युवकोंने राष्ट्र सेवा दल के कार्य के लिए अपना पूरा जीवन समर्पित कर देने की प्रतिज्ञा ली। इन युवकोंमें थे– सर्वश्री रं.नी.अंबिके, नाना डेंगळे, मांडव गणे, चिंतू करंदीकर, आचार्य केलकर, और दाबके गुरुजी।

आज की राष्ट्र सेवादल की विशाल इमारत की नींवमें इन युवकोंके त्याग और सेवा की अनमोल कहानी दबी पडी हुई हैं। श्री.एस.एम.जोशी जेलसे रिहा होकर अभी अभी बाहर आये थे। उनपर राष्ट्र सेवादलके प्रमुखत्वका भार सौंपा गया। ४ जून १९४१ को 'राष्ट्र सेवादल' की पुनर्रचना सिद्ध हुई और महाराष्ट्रमेंही नही पूरे देशभरमें युवा संगठन का एक नूतन पर्व शुरू हुआ।

केवल स्वयंसेवकोंका संगठन नही– शिक्षात्मक संगठन

पुराने अनुभवी कार्यकर्ताओंने यह तय किया कि राष्ट्र सेवादल को केवल स्वयंसेवकोंका एक दल नहीं रहने देना है। समाज कई बातोंसे वंचित

था। उसतक शिक्षाकी, संस्कार की असंख्य बातें पहुंचानी थीं। एक सीमित दृष्टिकोण रखकेर यह कार्य संभव नहीं था। स्वयं श्री.एस.एम.जोशी यह चाहते थे कि 'राष्ट्र सेवा दल एक शिक्षात्मक संगठन बने। बिना दीवारोंका एक ऐसा व्यासपीठ, जो देशके हर नागरिक को सुज्ञ बनाकर उसे देशके साथ जोड दे।' अतः अब सेवादल केवल युवकों से लिप्तही नहीं रहा। उसका दायरा बढकर देशके हर स्त्री-पुरुष, छोटे-बडे के साथ जुड गया। वह मात्र किसी सांप्रदायिक संगठन के मुकाबले में खडा संगठन भी नहीं था। इससे तो उसके एक चौखटेमें बंद हो जाने का खतरा अधिक था। उसके पास एक विशाल दृष्टिकोण था, और भविष्यमें यह दृष्टिकोणही उसका सबसे बडा संबल सिद्ध होनेवाला था।

काँग्रेसने अंग्रेजोंके खिलाफ जंग छेड रखी थी। उसके नेताओंमें सभी जाति-धर्मोंके और सभी प्रांतोंके लोग थे। गांधीजी के कारण काँग्रेसमें और पूरे देशमें भी जाति-धर्म निरपेक्ष राष्ट्रवाद की लहर दौड रही थी। स्वतंत्रता महत्त्वपूर्ण है, पर अगर स्वतंत्रता की लडाई लडनी है, तो वह इस जाति-धर्म निरपेक्ष राष्ट्रवाद की नींव पर ही लडी जाएगी, इसका निश्चय नेतागण कर चुके थे। भीतरी तौरपर देशमें कहां कहां टूटन है और किन कारणोंसे है इसे वे ठीक ठीक जानते थे। इसलिए सेवादल को संगठित करनेवाले नेताओंने यह सोचा कि इसका सैनिक राष्ट्रनिष्ठ, कार्यक्षम और अनुशासनबद्ध तो हो ही, पर वह सभी प्रकारके भेदभाव से मुक्त भी हो। उसका मन इस दिशामें सतत अग्रसर रहे इसलिए उसपर संस्कार करने हैं, उसे शिक्षा देनी है और उसका शरीर बलिष्ठ बने इसलिये बचपनसेहि उसे शरीर-श्रम के साथ जोड देना है। मन, कर्म और वचनसे राष्ट्र के लिए समर्पित बालकों, युवाओं और नागरिकोंकी एक विशाल वाहिनी सेवादल के रूपमें खडी रहे, यह उनकी आकांक्षा थी।

अगर यह कार्य करना है तो संगठन को राजनीतिक पार्टियोंसे अलग रखना आवश्यक था। वह अगर स्वतंत्र, स्वायत्त और स्वयंपूर्ण होगा, तोही वह सुसंस्कारित कार्यकर्ताओं की निर्मितिका केंद्र बन सकता था। कार्यकर्ताकी राजनीतिक सोच अवश्य ही विस्तृत हो। वह अपने आपको काँग्रेस से या समाजवादी दलसे जोड सकता है, पर संगठन के तौरपर उसे राष्ट्र सेवादलद्वारा निर्धारित नीति-नियमोंकाभी पालन करना पडेगा, इसके बारेमें नेतृत्व सजग था।

प्रांतिक काँग्रेस कमेटीने सेवादलकी इन मान्यताओंको अपनी सम्मति प्रदान की। यह तय हुआ कि प्रांतिक काँग्रेस एक नियंत्रण मंडल बनाये और राष्ट्र सेवादल का सारा काम उसके जिम्मे सौंपे। सेवादल के रोजमर्रा के कामकाज की देखभाल करने और उसे सुव्यवस्थित रूप देनेके लिए एक दलप्रमुख भी नियुक्त किया जाय।

स्वतंत्रता आंदोलनमें सैकडों युवक-युवतियोंने स्कूल और कालिजकी शिक्षा का बहिष्कार किया था। लोकमान्य तिलक ने राष्ट्रीय शिक्षा की हिमायत की और युवाओंसे यह अपील की कि, वे विदेशी शिक्षा ग्रहण न करें। परिणाम स्वरूप स्थान स्थानपर राष्ट्रीय पाठशालाएं शुरू हुईं। उच्च शिक्षा देनेवाली संस्थाए भी बनीं। पर इस कार्य को अधिक सफलता मिली नहीं। स्कूलों और संस्थांओंपर बंदी लायी गयी। शिक्षा देनेका कामही रुक गया। बादमें अभिभावक भी अपने बच्चोंको उन स्कूलोंमें भेजनेके लिए आनाकानी करने लगे।

शाखा-तंत्र

सेवा दलने इस स्थितिसे सीख ग्रहण की। उसने यह तय किया कि स्कूल शिक्षाको जोडकरही राष्ट्रीय संस्कार किये जाएंगे। स्कूलसे छूटतेही बच्चे शामको सेवा दल शाखाओंपर हाजिर हो जाते। यह शाखा-तंत्र बच्चोंमें और युवकोंमें भी अधिक प्रिय हुआ। दिनभर अपनी स्कूल कालिजकी पढाई पूरी कर किशोर और युवा शाखाओंपर इकट्ठा होते। खुले मैदानमें जी भरकर खेलते-कूदते। उसके साथसाथ बौद्धिक और सांस्कृतिक कार्यक्रमोंका भी आयोजन होता। उपस्थित सैनिकों की समझ के दायरे बढते जाते। वे खुद धीरेधीरे कई कार्यक्रमोंमें हिस्सा लेते। चर्चा, वाद, विवाद में अपना मत प्रदर्शित करते। ज्येष्ठोंसे और अनुभवी नेताओंसे विचार-विमर्श होता रहता और हर सैनिक इसका अनुभव करता कि उसमें शारीरिक, और मानसिक बदलाव आ रहा है। सेवा दल का यह शाखा-तंत्र बहुतही सफल रहा। सैनिक-दस्ता और शाखा यह व्यवस्था आज भी अक्षुण्ण रूपमें जारी है। सेवा दलको जन जन तक पहुंचाने का काम इन शाखाओंनेही किया। उसके विशाल 'नेटवर्क' के तानेबाने शाखाओं के कारण बहुत मुस्तैदीसे बुने गये।

संविधान समिति

सेवा दलके प्रशंसक थे, वैसे कुछ निंदक भी थे। उनके कारण काँग्रेसमेंभी सेवादल की कार्यपद्धतिको लेकर कुछ गलतफहमियाँ फैली थीं। उन्हें दूर करनेके हिसाबसे एक संविधान समिति गठति की गयी। श्री.रावसाहब पटवर्धन, मामासाहब देवगिरीकर और एस.एम.जोशी इस समितिके सदस्य थे। यह समिति जो संविधान बनाएगी तदनुसार काम चलता है या नहीं, इसे देखनेकी जिम्मेदारी प्रांतिक काँग्रेस कमेटीने पांच सदस्योंके नियंत्रण-मंडल पर डाली। ये पांच सदस्य थे डॉ.अ.वि.केतकर, (अहमदनगर), डॉ.द.ब.खाडिलकर (नासिक), श्री.रा.म.गिरमे (श्रीरामपूर), आचार्य भिसे (बोर्डी), और श्री.त्र्यं. र. देवगिरीकर (पुणे)। दलप्रमुख इस मंडल के निमंत्रक तथा पदसिद्ध सदस्य थे। जो इस समितिके सदस्य होंगे वे काँग्रेसमें किसी भी पदको ग्रहण नही करेंगे यह भी तय हुआ। ८ फरवरी १९४२ को कार्यकर्ताओंकी सभामें इस समिति को (नियंत्रण मंडल) मान्यता प्रदान की गयी। मार्चमें नियंत्रण मंडल की बैठक हुई और दलप्रमुख के नाते श्री.एस.एम.जोशी नियुक्त किए गये। श्री.वि.म.हर्डीकर, प्रमुख शिक्षक, श्री.र.नी.अंबिके, दोयम शिक्षक, श्री.भाऊसाहब रानडे, प्रमुख संगठक और श्री.शिरुभाऊ लिमये दोयम संगठक के नाते नियुक्त किये गये।

प्रांतिक काँग्रेस कमेटी ने एक प्रस्ताव पारीत कर सभी काँग्रेस कमिटियों और कार्यकर्ताओंको यह सूचना दी कि, वे राष्ट्र सेवादल को हर प्रकारकी सहायता करे, और हर कार्यमें राष्ट्र सेवादल को सहभागी कर ले।

सेवा दल इस समय तक काँग्रेसमान्य दल था, और काँग्रेस उसे अपना एक अभिन्न अंग मानती थी।

पहला प्रांत शिविर

सेवा दल ने अपना एक स्वतंत्र अध्ययन-क्रम तैयार किया था। उसके अधिकारियोंको यह अध्ययनक्रम पूरा करना पडता था। अप्रैल १९४२में पूनामें दस दिनका एक अधिकारी शिविर संपन्न हुआ। उसमें लगभग ३५ चुने हुए कार्यकर्ता सम्मिलित हुए थे। इसके बाद मई १९४२ में १५० कार्यकर्ताओंका एक शिविर पुणे के काँग्रेस भवनमें आयोजित किया गया। प्रांत के लगभग सभी जिलोंके प्रतिनिधि इस शिविरमें उपस्थित थे। सही

मानेमें यह पहला प्रांत शिविर था। मार्च १९४२ में सर स्टॅफर्ड क्रिप्स की भारतविषयक योजना जनता ठुकरा चुकी थी। देशमें अंग्रेजोंके खिलाफ हवा गर्म थी। उधर रासबिहारी बोस जपानमें 'भारतीय स्वतंत्रता संघ' की स्थापना कर रहे थे। देशमें और देशके बाहर भी असंतोष की आग भडक उठी थी। ऐसी स्थितिमें इन सारे शिविरार्थियोंने बडे साहस और सूझबूझ के साथ शिविरका संचालन किया। प्रसिद्ध समाजवादी नेता श्री.युसूफ मेहरअली ने इन शिविरार्थियोंको देशकी स्थितिसे अवगत कराया। ऐसी स्थितिमें संगठनकी आवश्यकता और महत्त्व क्या है, इसपर जोर देते हुए उन्होंने कुछ चुनिंदा कार्यकर्ताओंको भूमिगत क्रांतिका तंत्र भी समझा दिया। शिबिर का उद्घाटन किया था क्रांतिकारी पृथ्वीसिंहने, और समापन हुआ भूतपूर्व मुख्यमंत्री श्री.बालासाहब खेर के हाथों।

शिविर की समाप्ति के बाद इन कार्यकर्ताओंने हर जिलेका दौरा किया। वे छोटी छोटी सभाओंमें लोगोंसे बात करते, उन्हें देशकी वर्तमान स्थिति और इस स्थितिमें एक नागरिक के नाते अपनी जिम्मेदारी क्या है, इसके बारेमें मार्गदर्शन करते। इनमेंसे कई कार्यकर्ता इतने कर्मठ थे कि वे मिलोंतक साईकलपर और जरूरत पडनेपर पैदल चलकर भी अपना स्वीकृत कार्य पूरा करही डालते थे।

समय बडा विचित्र था। यूरपमें जर्मनीका सर्वेसर्वा हिटलर और इटली का मुसोलिनी एक के बाद एक देश पादाक्रांत करते जा रहे थे। इधर सत्तापिपासू जापान अपने हाथ-पैर फैला रहा था। सारी दुनियापर विश्वयुद्ध के बादल मंडरा रहे थे। हिंदुस्थानके नेताओंको इस बातका डर था कि अगर युद्ध लादा गया तो अंग्रेज सरकार स्वरक्षाका हक भी छीन लेगी। गुलामी से जान लेवा संघर्ष करनेका यही मौका है। जो कुछ करना है, इसी समय करना है।

राष्ट्र सेवा दल का बिरवा काटकूट की ऐसी स्थितिमें रोपा गया। इस देशपर प्रेम करनेवाले और उसके लिए जानतक देनेमें कतई न हिचकिचानेवाले युवकोंने उसे अपने खून, आँसू और पसीनेसे सींचा। संघर्ष और सेवा दोनोंका दाय उसे अपने उन पुरखोंसे मिला है।

१९४१ मेंही पूनामें सेवादल की पहली शाखा सदाशिव पेठमें 'पंत की गोठ' पर खुली। इस पहली शाखा के नायक थे नाना डेंगळे, और पहले

सैनिकोंमें थे सर्वश्री वसंत बापट, वासू देशपांडे और ग.प्र.प्रधान। श्री.एस.एम. जोशी और नानासाहब गोरे इन सैनिकोंको स्वतंत्रता के लिए संघर्ष किन किन मार्गों से किया जा सकता है, इसे समझाते थे।

१९४२ के पहले प्रांत शिविर में श्री.आपटे गुरुजी, अण्णासाहब सहस्रबुद्धे, आचार्य जावडेकर मार्गदर्शन के लिये आते थे। इस शिविरमें यह तय हुवा कि सेवा दल सैनिक खुले आम आंदोलनमें हिस्सा लेंगे। आगे चलकर अगस्त में 'चले जाव' आंदोलन शुरू हुवा और अधिकांश कार्यकर्ता उसमें शामील हो गये। आज के श्रेष्ठ अभिनेता डॉ.श्रीराम लागू इस पहले प्रांत शिविरमें एक सैनिक के नाते उपस्थित थे, इसे बहुत कम लोग जानते हैं।

अब सेवादल का लक्ष्य था देशकी स्वतंत्रता। काम करनेकी उसकी दिशा भी निश्चित हो चुकी थी।

'चले जाव' आंदोलनमें

८ अगस्त १९४२ को राष्ट्रीय काँग्रेसने 'चले जाव' का प्रस्ताव पारित किया। उसी दिन आधी रातके बाद पूरे देशमें नेताओं की गिरप्तारी हुई। जनता क्षुब्ध होकर रास्तोंपर उतर आयी। लोगोंने स्कूल, कालिजपर बहिष्कार डाला, मजदूर हडतालपर उतर आये। लोगोंने क्रोधमें सरकारी खजानोंपर डाके डाले। यातायात व्यवस्था उद्ध्वस्त कर दी। ट्रेन की पटरियाँ उखाड डालीं। रेल्वे स्टेशन जला डाले। गत किसी भी आंदोलनसे यह आंदोलन कई गुना ज्यादह व्यापक और उग्र था। इसी कालमें बंगालके मिदनापुर जिलेमें, उत्तर प्रदेशके बालिया और आजमगड में, बिहार के भागलपुर और पूर्णिया जिलेमें तथा महाराष्ट्र के सातारा में 'प्रति सरकार' स्थापित की गयी।

वैसे एक संस्थाके नाते राष्ट्र सेवादल सविनय कानून भंग करनेके आंदोलन में था नहीं। वह एक स्वायत्त संस्था थी, इसलिए उसपर सरकारद्वारा पाबंदी भी नहीं लादी गयी।

पर सेवा दलके सैनिकोंका मुख्य उद्देश था, राष्ट्र की सेवा करना। उस समय राष्ट्रीय संघर्ष के लिए अनुशासनबद्ध समाजसेवी सैनिकोंकी सर्वाधिक आवश्यकता थी। यही ध्येय सामने रखकर सेवादल के छोटे-

बडे कार्यकर्ता काम कर रहे थे। अब जब देशमें चारों ओरसे तूफान उठ रहा था, भला वे चूप कैसे बैठ सकते थे? जैसे ही सरकार ने गिरप्तारी शुरू की सेवा दलके साहसी युवा नेता भूमिगत हो गये। जो पकडे गये उन्हें जेलमें ठूंसा गया।

सेवादल-प्रमुख एस.एम.जोशी ने तय किया कि न पुलिस के हाथ लगेंगे, न जेलमें बंद होंगे। जनतामें रहकर जागृतिका काम करेंगे। अपनी पहली पहचान मिटाकर अब वे 'इमाम अली' बन गये। वे बडी नफीस उर्दू बोलना जानते थे। उन्हें उस भेसमें पहचानना आसान नहीं था।

तंजावर तक जाकर एस.एम.ने जनतामें स्वतंत्रताका अलख जगानेका काम किया। वे महात्मा गांधी के इस विचार से पूरी तरह सहमत थे कि "अहिंसा के साम्राज्य में हर एक सच्चे विचार का महत्त्व होता है, और हर एक सच्ची आवाज भी पूरी-पूरी कीमत रखती है।" जंग जरूर चल रही थी, पर जंग का रास्ता अहिंसा के मैदान से होकर गुजर रहा था। एस.एम.ने इन दिनोंमें भी सेवा दलके कई कार्यकर्ताओंसे मुलाकात की। उन्हें कार्यकी प्रेरणा दी। आपाधापी के उन दिनोंमें भी जन-जागरण का सेवादल का कार्य निरंतर जारी था, और यह कई स्तरोंपर था।

सुविख्यात समाजवादी नेता अच्युतराव पटवर्धन सारे भारतमें फैले भूमिगत आंदोलन का नेतृत्व कर रहे थे। वे 'साहब' के नाते सर्वत्र जाने जाते। महाराष्ट्र में इस आंदोलन को गति देनेका काम क्रांतिकारियोंमें वर्षोंतक रहे, सेवा दल के सैनिक श्री.शिरूभाऊ लिमये ने किया। एस.एम. उन्हें हर संभव मदद कर रहे थे। सेवादलके श्री.ना.ग.गोरे उस समय हैदराबाद के निजाम की जेलमें थे। जेलसे मुक्त होनेके बाद वे भी इस आंदोलन के साथ जुडे गये।

सेवादल के सैकडों युवा कार्यकर्ताओंने इस कालमें अपनी जान हथेलीपर लेकर काम किया। पुलिस को चकमा देकर कई कार्यकर्ता ग्रामीण इलाकोंमें चले गये। लोगोंको जागृत करनेके साथसाथ उन्होंने सरकार को पशोपेशमें डालनेवाले कई साहसपूर्ण कारनामे किये। पकडे जानेपर कठोर सजाएं भुगतीं पर न सरकार से माफी माँगी, न अपने अंगीकृत कार्यसे पीछे हटे।

सेवादल के संस्कार इन कार्यकर्ताओंकी मानो घुटीमें मिल चुके थे।

वेदोंसे श्रेष्ठ – वंदे मातरम्!

सेवादल सैनिकोंके लिये उस कालमें सबसे बडा मंत्र था– 'वंदे मातरम्!' बंगाल के श्रेष्ठ लेखक श्री.बंकिमचंद्र चट्टोपाध्यायने इसे इ.स.१८७२ में लिखा था। इ.स.१८८६ में पहली बार कलकत्ता के काँग्रेस-अधिवेशन में स्वयं रवींद्रनाथ टागोरने इसे गाया और पूरे देशभर में उसकी कीर्ति फैल गयी। फिर 'वंदे मातरम्' एक गीत नहीं रहा। वह एक आंदोलन, एक मृत्युंजय मंत्र बन गया। सेवा दल सैनिकों के लिए उसकी महत्ता वेदोंसेभी कई गुना ज्यादह थी।

इ.स.१९०५ में बंगाल के विभाजन के खिलाफ जनमत तैयार करनेमें इस गीत की इतनी अहम भूमिका रही कि तत्कालीन राज्यपाल फुल्लर को इसपर बंदी लादनी पडी। यह तो ज्वालामुखी को मुट्ठीमें बंद करनेका प्रयास था। देखते देखते इस निर्णय के विरुद्ध सारे देशमें आग भडक उठी। अब तो हर जुलूस में, हर सभा के पहले और बादमेंभी 'वंदे मातरम्' गानेकी प्रथा चल पडी। एक गीत एक महाबलशाली साम्राज्य सत्ता के खिलाफ, एक चतुरंग सेनासे अधिक ताकतवर बनकर लड रहा था। वह सत्ता न उसे मिटा पा रही थी, न हटा पा रही थी। १९१५ से हर काँग्रेस अधिवेशनमें पं.विष्णु दिगंबर पलुस्कर का 'काफी' राग में बंदिस्त यह गीत गाया जाने लगा। १९३८ में हैदराबाद के निजाम ने भी इस गीतपर बंदी लादनेकी कोशिश की। पर उसे भी कोई सफलता नहीं मिल सकी। स्वामी रामानंद तीर्थने निजाम के इस हुक्म का कडा विरोध किया।

सेवादल सैनिकोंके लिए 'वंदे मातरम्' केवल एक गीत, एक नारा नहीं था। वह उनके जीवन का अभिन्न अंग बन गया था। अपने देश को अपनी माँसेभी ऊंचा दर्जा देनेवाले ये सैनिक जब जब इसका उच्चारण करते तब तब कर्तव्य की भावनासे सराबोर हो जाते। अपनी शाखाओंपर उन्हें हर क्षण देशके लिए जीने और मरनेकी प्रेरणा मिलती थी। यह गीत उस प्रेरणा को कभी भी मंद नहीं पडने देता।

आज भी सेवादल की शाखाओंपर सेवादल के सैनिक बडी तन्मयतासे श्रेष्ठ कवि वसंत बापट के गीतोंको गाते रहते हैं।

जगि घुमवा रे, दुमदुमवा रे भारत गौरव गान
या रक्ताला, या मातीचा मृत्युंजय अभिमान
उदात्त उज्वल सुंदर मंगल अमुचा देश महान
हा भारत देश महान।

कवि श्री.वसंत बापट जब ये गीत लिख रहे थे, तब उनकी उमर यही कोई २०-२२ वर्ष की रही होगी। पर उन्हें और उनके सहयोगियोंको इसका श्रेय जाता है कि उन्होंने स्वतंत्रता आंदोलन से जुडे सेवादल सैनिकोंमें देशके प्रति एक अपार लगन जगानेका काम किया। सेवादल के बौद्धिकोंमें और व्याख्यानोंमें स्वतंत्रता, समता और बंधुता का जो संदेश दिया जाता था, ठीक वही संदेश श्री.वसंत बापटजीके गीतोंके माध्यमसे सैनिकोंतक परिणामकारक ढंगसे जा रहा था।

'वंदे मातरम्' को पूरा देश जितनी तन्मयतासे गाता था, महाराष्ट्रमें तब उतनी ही तन्मयतासे सेवा दलके सैनिक श्री.बापटजी के गीतोंको गाते थे। और इन गीतोंकी मुख्य प्रेरणा थी– पू.साने गुरुजी! गुरुजी के जीवन की करुणा और वीरता बापटजी की कवितामें साक्षात् उतरकर आ गयी थी। 'वंदे मातरम्' के रूपमें सेवा दलके सैनिक केवल एक गीत ही नहीं गाते थे, वे उसमें झलकती 'भारत माता' की मूर्तिकी मानो अभ्यर्थना करते थे।

जय सुभाष! जय सुभाष!!

युवकोंमें तब सर्वाधिक प्रिय थे सुभाषचंद्र बोस, सावरकर, भगतसिंग, जवाहरलाल और जयप्रकाश नारायण। इन सबमें सिरमौर थे– सुभाष बाबू! उनकी और आजाद हिंद सेनाकी कथाएं घर घर में कही, सुनी जाती थीं। "भारत को स्वतंत्रता प्राप्त करा देना यही मेरे जीवनका सर्वश्रेष्ठ ध्येय है, और मेरी एकमात्र आकांक्षा है कि गुलामी की जंजीरें तोडकर मेरा देश आजाद बने।" आजाद हिंद रेडिओसे नवंबर १९४१ में किया हुवा उनका यह भाषण हर युवा मनमें घर कर गया। सुभाष बाबू के 'आजाद हिंद रेडियो' का संचालन करनेकी जिम्मेदारी युवकोंनेही अपने कंधोंपर ली थी। २५ अगस्त १९४३ को सिंगापुर में उन्होंने 'आजाद हिंद सरकार' की स्थापना की और २०,००० सैनिकोंकी 'आजाद फौज' संगठित हुई। उनके भारत से पलायन से लेकर १९ मार्च १९४४ को भारत-ब्रह्मदेश की सीमापर राष्ट्रध्वज लहराने तक की हर घटनाको इस देशके युवकोंने बडी हसरत भरी निगाहोंसे देखा था। वे सारे देशकी आजादीके लिए लड रहे थे, इसलिए सारे देशकी निगाहें उनकी ओर लगी थीं। उनके और उनके जाँबाज सिपाहियोंके अपरंपार त्याग के बारेमें किसी के भी मनमें कोई शक नहीं था। सुभाषबाबू का नारा 'जय हिंद' राष्ट्रीय नारा बन गया।

राष्ट्र सेवादल के सैनिकोंपर सुभाषबाबू और आजाद हिंद की कथाओंका काफी असर था। कविश्रेष्ठ वसंत बापट का गीत सेवादल की शाखाओंपर सैनिक मुक्त कंठसे गाते थे।

"जय सुभाष, जय सुभाष,
मंत्र हाच आजला
घोष हाच गाजला।
भारतात दशदिशात नाद हा निनादला"

चलता हुआ लावा – साने गुरुजी

महाराष्ट्र के प्रेरणा-पुरुषोंके शीर्षस्थ नामोंमें एक नाम है पू.साने गुरुजी का। महाराष्ट्र उन्हें 'माँ' मानता है। मातृत्व का जैसा सर्वस्पर्शी अविष्कार सूरदासमें मिलता है, वैसाही सर्वस्पर्शी आविष्कार साने गुरुजी के जीवन और साहित्यमें भी मिलता है। वे राष्ट्र सेवादल के शलाका पुरुष थे। महाराष्ट्र की युवा पीढी तब भी और आज भी गुरुजीके जीवन तथा विचारोंसे प्रेरणा ग्रहण करती है। स्वभाव से अत्यंत विनम्र और छुईमुई की तरह सदा अपने आपमें बंद रहनेवाले गुरुजी जब भी किसी अन्याय के खिलाफ उठ खडे होते तब साक्षात् 'जलता हुवा लावा' बन जाते। उनमें एक ऐसी आग धधक उठती जो फौलाद को पानी की तरह गला देनेकी क्षमता रखती थी। लोकनायक जयप्रकाश नारायणने १९४२ के आंदोलनमें गुरुजी को सुना और वे चकित रह गए। बहुत साधारण-से दिखनेवाले इस आदमीमें इतनी आग! इतना तेज! इतना धैर्य!

गुरुजी न सेवादल के संस्थापकोंमें थे, न उसके नियामक मंडल में! परंतु वे 'सेवादल को अपनी जान मानते थे। समाजवादी समाजव्यवस्था के लिए निरंतर प्रयत्नरत गुरुजीका यह विश्वास था कि इस न्यायपूर्ण समाजव्यवस्था को स्थापित करनेमें हरावल का दस्ता किसी राजनीतिक पार्टीका नहीं, वरन् सेवादलकाही रहेगा। सेवादल की हर गतिविधिपर उनकी नजर रहा करती थी। उनकी प्रेरणासे सैकडों युवक-युवतियां सेवादल की शाखाओंपर आने लगे। १९४२ के आंदोलनमें वे गुरुजीही थे जो गांव गांव जाकर क्रांतिका अलख जगाते थे। उनकी प्रेरणासे १०-१२ सालके किशोर तक आंदोलनमें कूद पडे। शिरिषकुमार, लालदास, शशीधर जैसोंने अपनी बलि तक चढायी थी।

९ अगस्त का जुनून सारे देशकी जनता के सिरपर चढकर बोल रहा था। छोटे लडके तक उस रंगमें पूरी तरह रंग गये थे। शहर नंदुरबारमें स्कूल के बच्चोंका नेतृत्व करता था किशोर शिरिषकुमार। उसके पिता पुष्पेंद्रभाई और मां सविताबेन राष्ट्रीय विचारों के थे। गांधीजी उनके जीवन की प्रेरणा थे। शिरिषकुमार को देशप्रेमका दाय अपने घरसेही मिला था। ९ अगस्त को गांधीजी को पकडा गया तो शिरिषने और उसके दोस्तोंने शहरमें एक जुलूस निकाला। पुलिसने शिरिष को पकड कर लॉकअपमें बंद कर दिया। पिताने चाहा कि उसे जमानत पर छुडा ले। पर शिरिषनेही निर्धारपूर्वक 'ना' कहा। बच्चोंने पुलिस कचहरीमें धूम मचायी। अंततः शामको सभी को छोड दिया गया।

अगले पूरे माहभर शहरमें सरकार विरोधी गतिविधियां चलती रहीं। पोस्टर्स छपते रहे। छोटे बडे जुलूस निकले। 'भारत छोडो', 'चले जाव', 'भारत माता की जय', 'जय हिंद' के नारोंसे पूरा शहर गूंजता रहा।

यह तय हुआ कि ९ सितंबर को एक बडा जुलूस निकालकर सरकारी कचहरीपर तिरंगा लहराएंगे। शिरिषकुमार इस जुलूस का नेतृत्व कर रहा था। बच्चे स्कूलमें इकट्ठा हुए, स्कूल की इमारतपर तिरंगा लहराया और 'महात्मा गांधी की जय' के नारे लगाते हुए चल पडे। जगह जगह पर जुलूस में छोटे-बडे शरीक हो रहे थे। उसका आकार और उत्साह दोनों बढते जा रहे थे। सरकारी कचहरी पर तिरंगा फहराकर जुलूस माणिक चौक की ओर मुडा।

नहीं नमशे, नही नमशे – निशान भूमि भारतम्

जुलूस मस्तीमें यह गीत गाता हुआ आगे बढ रहा था। माणिक चौक में पुलिस लाठी, काठी, बंदूकोंसे लैस होकर खडी थी। शिरिषकुमार और उसके साथी माणिक चौक में भी तिरंगा फहराना चाहते थे। और पुलिस उसके लिए 'ना' कह रही थी। उसका कहना था कि, 'जुलूस खत्म करो और घर जाओ, वरना सर तोड देंगे।' भीडका उत्साह बढ रहा था। आखिर उसे काबूमें करने के लिए पुलिसने लाठी चलाना शुरू कर दिया। चारों ओर भगदड मच गयी। पर शिरिषकुमार और उसके साथी हाथमें तिरंगा लेकर मोर्चेपर डटे थे। पुलिस उनपर काबू पा नहीं रही थी। पुलिस अफसरने शिरिषकुमार को बार बार झंडा देने के लिए कहा। वह बिना डरे हाथमें झंडा उठाकर, 'जय हिंद' के नारे लगा रहा था। लडके एक हाथसे दूसरे हाथमें झंडा सौंपते। पुलिस उसे पाने

की जी तोड कोशिश कर रहे थे पर वह बच्चोंकी अजेय उमंगकी तरह इस हाथसे उस हाथमें आजाद लहरा रहा था। बौखलाई हुई पुलिसने आव न देखा ताव, सीधे फायरिंग शुरू कर दिया। भीड तितर बितर हो गयी। शिरिषकुमार को दो गोलियां लगीं, घनश्याम, लालदास, धनसुखलाल और शशीधर केतकर भी पुलिस की गोलीके शिकार बने।

पूरे महाराष्ट्र में इस हत्याकांड से खलबली मच गयी। १५-१६ सालके उन किशोरोंकी निर्घृण हत्यासे सारा समाज कांप उठा। साने गुरुजीने अब हर गांव, हर शहरमें जाकर इन शहीदोंके बलिदान की कथा कहनेकी ठान ली। उनके रूपमें एक चलता फिरता लावा अब सारे महाराष्ट्रमें घूम रहा था। वे जहाँ जहाँ भी जाते हजारों की भीड इकट्ठा हो जाती। हुतात्माओंकी कहानी सुनाते सुनाते उनका गला रुंध जाता। सारी सभा एक चित्रके समान स्तब्ध बैठी रहती।

गुरुजीके कारण नंदुरबारके बाल शहीदोंकी कथा पूरे देशभर में फैल गयी। ७ मार्च १९४३ को गुरुजी नंदुरबार गये। शिरिषकुमार के और उसके हुतात्मा साथियोंके घर जाकर सभी से मिले। जहां गोलीकांड हुआ था वहाँ जाकर वहांकी मिट्टी अपने माथेपर लगाई। जहां जहां भी वे जाते, हजारों लोग उनके साथ हो लेते।

शिरिषकुमार सेवादलका सैनिक था। उसके निर्भय बलिदान ने सेवादलके सारे सैनिकोंको बेहद प्रभावित किया। गुरुजी के कारण उसकी बलिदानी गाथा महाराष्ट्र के हर आदमी के दिलपर अमिट अक्षरोंमें अंकित हो गयी।

९ सितंबर १९४५ को गुरुजी पुनश्च नंदुरबार गये। उस दिन शामको नंदुरबारमें प्रचंड सभा हुई। गुरुजीने हुतात्माओंको अभिवादन किया।

"उनकी याद में
जिन्होंने अपने खून से
हिंदुस्तान के बाग को सींचा।"

यह गौरवभरी पद्य-पंक्ति उत्कीर्ण किये हुए रजत-पदक, शहीदोंके परिवारवालों को गुरुजी के हाथों सम्मानपूर्वक अर्पित किये गये।

एक 'हुतात्मा स्मारक समिति' की स्थापना की गयी, जिसके प्रथम अध्यक्ष थे श्री.जवेरीकांत ठाकोरकाका; अन्य सदस्योंमें 'खानदेश के गांधी'

माने जानेवाले श्री.बाबूभाई मेहता, श्री.द.रा.उपासनी, श्री.साने गुरुजी तथा अन्य दो सदस्य थे।

हुतात्मा स्मारक समिति 'शहीद स्मृति' के नामसे आज भी कार्यरत है। सेवादल के निष्ठावान सैनिक डॉ.पीतांबर सरोदेजी के अथक प्रयत्नोंके कारण हुतात्माओं की यादें आज भी धूमिल नहीं पडीं।

गुरुजी की प्रेरणाका वह अजस्र प्रवाह आज भी अक्षुण्ण रूपसे बढ रहा है। हर वर्ष ९ सितंबर को शहीदोंको वंदन करने के लिए सारे देशसे लोग यहाँ आते रहते हैं। राजनीति, साहित्य, कला, शिक्षा, समाजकारण के दिग्गज नेता प्रमुख अतिथिके नाते इस समारोहमें उपस्थित रहते हैं।

हुतात्माओंका गुण-गौरव गुरुजी के जीवन की एक प्रमुख प्रेरणा थी। जब भी वे उनके बारेमें बोलने लगते तब ऐसा लगता कि एक अग्निकुंड धधक रहा है। उनके उन प्रेरणादायी भाषणोंमें मानो पूरे देशके दिलकी धडकन सुनाई देती थी। अणु जैसा यह एक छोटासा आदमी जब देशभक्तोंकी और देशकी कहानी कहने लगता तो देखते देखते आसमान की ऊँचाई तक पहुंच जाता। उनके हर शब्द से मानो लावा फूट पडता। वे एक प्रचंड ज्वालामुखी के समान लगते।

सेवादल के तद्युगीन कार्यकर्ताओंपर गुरुजीके इस रूपका भी अमीट प्रभाव पडा।

मंदिर के पट खोलो

४ नवंबर १९४६ में एक सैलाब आया। गुरुजी यह चाहते थे कि पंढरपुर का प्रसिद्ध विट्ठल मंदिर हरिजनों के लिए खुला किया जाय। परंपरावादियोंके लिए यह नितांत असंभव बात थी। कई वर्षोंसे इस मंदिर के द्वार हरिजनों के लिए बंद थे। गुरुजीने तय किया, अगर मंदिर हरिजनों के लिए खुला नहीं होता है तो वे प्राणांतिक अनशन पर उतर जाएंगे। जंगल की आग की तरह यह बात सर्वत्र फैल गयी। सारे महाराष्ट्रमें बावेला मच गया। गुरुजी के अनशन की बात सुनकर सेनापति बापट, एस.एम.जोशी, अच्युतराव पटवर्धन, मधु लिमये, शिरुभाऊ लिमये उनसे मिलने उंबरगाव गये। अनशन को उनका समर्थन था, पर वे यह चाहते थे कि ऐसा अनशन शुरू करनेसे पहले जनताको अनशन के पीछेकी भूमिका समझा दे। गुरुजीको

यह विचार ठीक लगा। अनशन छह माह आगे ढकेला गया और सभी कार्यकर्ता गुरुजीकी मांग कितनी जायज है, इसे जनताको समझाने के लिए मैदान में उतर पडे।

सनातनी और रूढिप्रिय लोगोंका विरोध दिन ब दिन अधिक कडा होता गया। मंदिर के पुजारी (बडवे) अपनी अडियल भूमिका त्यागनेके लिए तैयार नहीं थे। सबसे बडी बात तो यह थी कि स्वयं गांधीजीने तब अनशन को अनावश्यक तथा असमर्थनीय ठहराते हुए, गुरुजीको अपने निर्णयसे पीछे हटनेके लिए कहा।

गुरुजीपर यह कुठाराघात था। हरिजनोंकी भलाई के लिए १९३२ में गांधीजीने इसी तरह अनशन किया था। तब भी पूरे देशका दौरा कर उन्होंने अपनी भूमिका समझा दी थी। गुरुजी यह समझ नहीं पा रहे थे कि गांधीजी इस बार उनके निर्णयका विरोध क्यों कर रहे हैं? पर फूलोंसेभी ज्यादह मृदु होनेवाले गुरुजी, समय आनेपर वज्रसेभी अधिक कठोर बन जाते थे। उन्होंने तय किया कि अपने परम श्रद्धेय आराध्य देवताकी आज्ञा भी नहीं मानेंगे। उनकी आत्मा उनसे कहती थी कि 'जो भी कुछ कर रहे हो बिल्कुल न्याय्य है।'

गुरुजी का तूफानी दौरा शुरू हुआ। सेनापति बापट, एस.एम.जोशी वगैरा उनके साथ थे। सारे महाराष्ट्र में फैले सेवादल के छोटे बडे कार्यकर्ता अब इस जन-जागरणमें डूब गये। जगह जगह छोटी-बडी सभाएं होतीं। स्पृश्य-अस्पृश्योंके सहभोजन, सम्मेलन आयोजित किये जाते। चर्चाएं होतीं। सारे वातावरणमें एक सरगर्मी थी।

महाराष्ट्र शाहीर

तभी प्रा.वसंत बापट, लीलाधर हेगडे, राजा मंगळवेढेकर, राघुअण्णा लिमये, भालचंद्र माडगुळकर आदि कलाकारोंका 'महाराष्ट्र शाहीर' कलापथक इस आंदोलन के साथ जुड गया। चार पांच माह तक सारे महाराष्ट्र में प्रचार की धूम रही। लोग स्थान-स्थानपर बडे उत्साहसे गुरुजी का स्वागत करते थे। शाहीरोंके गीतोंसे सारा वातावरण गूंज उठता। गुरुजी के भाषण उनके दिल और दिमाग को छू जाते। हजारों सालोंसे मनपर जमी हुई काई की परतें टूटने लगीं। गुरुजी धर्मसंकल्पना की एक नयी व्याख्या कर रहे थे। लोगों को वह व्याख्या अधिक सुसंगत और न्यायपूर्ण लग रही

थी। पूरे महाराष्ट्र में लगभग १०० से अधिक मंदिर हरिजनोंके लिए खुले हो गये। पंढरपुर के पुजारियोंने देखा कि जनमत उनके पक्षमें पहले जैसा नहीं रहा, वह बडी तेजीसे गुरुजी के पक्षमें जा रहा है। पर उन्होंने अपनी जिद नहीं छोडी।

उधर मुंबई असेंब्लीमें हरिजनोंके मंदिर प्रवेश का कानून बन रहा था। सत्ताधारी काँग्रेस यह चाहती थी कि हरिजनोंके लिए मंदिर खुले करनेका श्रेय बजाय गुरुजी के उसे मिले।

पुजारियोंने एक गांधीभक्त को पकडा और उसके मार्फत गांधीजी तक गुरुजी के अनशन का विपर्यस्त वृत्तांत पहुंचाया। गांधीजी का अनशन रोक देनेसंबंधी तार आकर धमका! दूसरा कोई भी होता तो मैदान छोड देता पर गुरुजीने गांधीजीकी आज्ञा माननेसे इन्कार कर दिया। उन्होंने गांधीजी को एक लंबी चिट्ठी लिखकर सारी स्थिति स्पष्ट की।

"बापू, मेरे निर्णयमें होनेवाली सत्यता और पवित्रता अब प्रायोपवेशन की कसौटीपर ही खरी उतर सकेगी। मुझे क्षमा कीजिए, मैं आपकी आज्ञा का पालन नहीं कर सकता। अब मैंने अपने आपको ईश्वर के हवाले कर दिया है।"

गुरुजी का उपोषण शुरू हुआ। पूरे महाराष्ट्र में सनसनी फैल गयी। युवकोंके झूंड के झूंड गुरुजी को समर्थन देनेके लिए पंढरपुर में आ धमके थे। श्री.जयप्रकाशजीने मुंबईसे एक परिपत्रक निकाल कर गुरुजी को अपना समर्थन दिया। हरिभाऊ फाटक, अण्णासाहब सहस्रबुद्धे, गांधीजीसे मिलने दिल्ली रवाना हो गये। पंढरपुर में महाराष्ट्रके श्रेष्ठ साहित्यकार, कलाकार, समाजसेवियोंका जमघट लग गया। मध्यवर्ती कानून मंडल के रचीकर श्री.दादासाहब मावळंकर सपरिवार पंढरपुर आये। पुजारियोंने मंदिरमें उनका स्वागत करना चहा, पर उन्होंने बहुत दृढता से कहा, "आप लोग जबतक हरिजनोंको मंदिर में आने नहीं देते तब तक मैं भी अंदर प्रवेश नहीं करूंगा। अगर स्वागतही करना है तो पहले साने गुरुजी का कीजिए।" वापस लौटकर श्री.मावळंकरजीने एक विस्तृत तार गांधीजी को भेजा। फिर खुद उन्होंने गांधीजीकी सूचनापर मध्यस्थता की और दस दिनोंतक चला हुआ गुरुजीका अनशन १० मई १९४७ को रात ८-३५ को टूटा।

युगोंसे बंद मंदिर के द्वार हरिजनों के लिए खुले हो गये। विनोबाजीने एक विस्तृत पत्र लिखकर गुरुजीका अभिनंदन किया। पूरे महाराष्ट्र में खुशी की लहर दौड गयी। इस सारे आंदोलनमें सेवादल के सैनिकोंकी बडी अहम भूमिका रही। जातिभेद विरहित समतापूर्ण समाज की स्थापना कितना दुष्कर कार्य है इसका प्रत्यक्ष अनुभव वे कर रहे थे। ऐसे कार्योंमें जो मानसिक और नैतिक दृढता चाहिए उसका वस्तुपाठ उन्हें मिल रहा था।

सरकार की ज्यादती

१९४९ में और एक घटना हुई। २६ अक्तूबर को एक फतवा निकालकर सरकारने स्कूल के अध्यापकों और छात्रोंपर किसी भी राजनीतिक कारवाइयोंमें हिस्सा लेने, किसी राजनीतिक पार्टीका सदस्य बनने, तथा किसी भी राजनीतिक चुनाव में हिस्सा लेने या प्रचार वगैरा करनेपर बंदी लादी। सरकार की दृष्टिमें अपरिपक्व छात्रोंका इस तरह राजनीतिमें हिस्सा लेना देश के हितमें बाधक था। देश आजाद था पर सरकार की सोच दकियानुसी थी। यह फतवा सीधे सीधे राष्ट्र सेवादल जैसी स्वयंसेवी संस्थाओंपर आघात था। सरकार इन संस्थाओं को मानो जड मूलसेही उखाडना चाहती थी। गुरुजी को सेवादल का भविष्य बिल्कुल साफ साफ दिखाई देने लगा। ३ दिसंबर १९४९ के 'साधना' साप्ताहिक में एक तेज तर्रार लेख लिखकर गुरुजीने न केवल इस फतवेका विरोध किया, वरन् अगर फतवा वापस न लिया गया तो आमरण अनशन करनेका वज्रनिर्धार भी प्रगट किया।

गुरुजीने इस लेखमें लिखा था। कि १९४२ के आंदोलनमें स्कूल, कालिज के इन लडकोंनेही राष्ट्र सेवादल के माध्यमसे काफी काम किया था। महाराष्ट्र में तब लगभग ६०-७० हजार सेवादल सैनिक थे। पूरे देशमें सेवादल फैलनेकी पूरी संभावना थी। सेवादल ने हमेशाही अपने स्वतंत्रता की रक्षा की है। वह कभी किसी पार्टीका या सत्ताका दास नहीं बना। अब जब उसने यह तय किया कि आनेवाले चुनाव में समाजवादी पार्टीकी मदद करेंगे तो सरकारने बहाना ढूंढा और स्कूलोंमें फतवे भेज दिये।"

राष्ट्र सेवा दल पर इसके पहले भी बंदी लादी गयी थी। शाखाओंपर लाठी-काठी, लेजिम खेलनेकी मनाई की गयी। शिवाजी पार्कपर बच्चे इकट्ठा

हुए तो उन्हें रोका गया। इन सारे बंधनोंमें रहकर भी राष्ट्र सेवा दलने नवमहाराष्ट्र निर्मितिका अपना काम जारी रखा। अस्पृश्यता निवारण का सर्वाधिक काम सेवादलने किया। संडास सफाई, रास्ते बुहारना, उन्हें ठीक करना, दोनों ओर पेड लगाना ये काम सेवादल सैनिकोंने किये। ये अंधेरी रातोंमें दिये जलाते हैं, तृषार्तों के लिए पीनेके पानी की व्यवस्था करते हैं, महामारीमें मदद करते हैं, आँधी-तूफान में, आगजनीमें लोगोंकी मदद करने सबसे पहले दौडकर आते हैं। येही वे सैनिक हैं जो निरंतर सर्वधर्म समता का प्रचार करते रहे। सेवादल की शाखाओंपर हिंदू, मुसलमान, ज्यू, पारसी, ख्रिश्चन सारे आते हैं।

विनोबाजीने सेवादल का काम देखा तो बहुतही प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा, 'गांव गांव जाइये। पवाडोंको, गीतोंको गाइये। जनता के साथ रहिये।'... मैं यह नहीं कहता कि सेवादल सर्वथा निर्दोष है। संगठन है, उसकी कुछ न कुछ कमजोरियाँ होंगी ही। पर उसकी ध्येयवादिता, जाति-धर्म निरपेक्ष राष्ट्र निर्माण करनेकी उसकी ललक, उसके लिये उसने किया हुवा त्याग इसके बारेमें सोचेंगे या नहीं?

सब धर्मोंका हिंदुस्थान

न मैं समाजवादी पार्टीका मेंबर हूं, न मेरी राष्ट्र सेवादल के नियामक मंडल में कोई जगह है। फिर भी मैं इस संगठनकी ओरसे इसलिये खडा हूं कि 'यह मेरा प्राण है।' जब और लोग 'हिंदुओंका हिंदुस्थान' नारा लगाते है, तब सेवादलका नारा होता है, 'सब धर्मोंका हिंदुस्थान!' इसलिए मुझे मनही मन लगता है कि यह तो ईश्वर का काम करनेवाला संगठन है। इस दमघोटू वातावरण में बच्चोंको, युवक-युवतिओंको जातिधर्म निरपेक्ष दृष्टि देनेवाला सेवादल जैसा दूसरा कौन-सा संगठन है?

सोलह साल के नीचे के लडके राजकीय सभाओंमें न जाय तो वे क्या करे? गंदी फिल्मे देखें, धर्मांधोंकी सभाओंमें दर्शक बनें, तो क्या ठीक होगा? मैं यह चाहता हूं कि ये बच्चे जीवनको उसके सभी अंगोंसे देखें, समझें! वे रोजमर्राकी जिंदगीमें होनेवाला राजनीतिका चेहरा भी पहचानें। यह जान लें कि शक्कर क्यों नहीं मिलती? अनाज में रेत की मिलावट क्यों होती है? पोस्टकार्ड, लिफाफे महंगे क्यों? लाखों लोग फूटपाथ पर क्यों सोते

हैं? स्कूलकी फीस नौ रुपये तक क्यों बढती है? इन सारी बातोंके पीछे राजनीति नहीं है, तो और क्या है?

इतिहास के निर्माता बच्चे हैं!

भारत का सारा इतिहास तो बच्चोंके द्वाराही निर्माण हुआ है। ध्रुव, प्रह्लाद, चिलया, रोहिदास, सत्यकाम, अभिमन्यु, अष्टावक्र, सारे किशोरही थे। शंकराचार्य, रामदास, ज्ञानदेव, श्री शिवछत्रपति, बाजीराव, जनकोजी, विश्वासराव, माधवराव, सारे आयुमें छोटेही थे। खुदीराम, शिरिषकुमार, हुबली का हुतात्मा नारायण कितने नाम गिनाऊं?

बाल शब्दका अर्थ है जिसके पास बल होता है वह! बच्चोंको नवराष्ट्र निर्मितिकी यह शिक्षा बचपनसेही मिलनी चाहिए। अगर संकुचित विचारोंकी संस्थांएं इन बच्चोंपर संकुचित संस्कार करती हैं, तो हमें राष्ट्र सेवा दल जैसी अंधेरेमें ज्योति जगानेवाली संस्था की रक्षा करनी चाहिए। संस्कृति फुरसत के समयमें निर्माण होती है, जो संस्कृतिका सच्चा उपासक है, वह सबसे पहले सभी की जीवनावश्यक जरूरतें पूरी करनेकी कोशिश करता है। क्योंकि उससे निजात मिले तो वह संस्कृति निर्माण के कार्यमें जुटे न? जवाहरलालजीने कहा था, 'जबतक हजारों लोग भूखे हैं, तबतक संस्कृति की बातें करने का कोई अर्थ नहीं।' गांधीजीने कहा था, 'जबतक सबके पेटमें मेहनत से कमाया हुआ अनाज नहीं पहुंचता तबतक 'राम नाम' का जाप पढाकर क्या फायदा?'

अगर यह सबकुछ करना है तो अहिंसात्मक पद्धतिसे समाजवाद की स्थापना करनी होगी। बच्चोंका, छात्रोंका इस समाजवादी दृष्टिसे परिचय होना चाहिए। सच्चा सांस्कृतिक कार्य यही है। सेवा और नवसमाज निर्मितिका विचार सर्वदूर फैलाना राष्ट्र सेवादल का ईश्वरदत्त कार्य है, ऐसा मैं मानता हूं।

मेरी दृष्टि में

सरकारने तत्त्वोंका मुलम्मा चढाकर जो फतवा निकाला है वह धोखाधडी है। मेरी दृष्टि सरकारकी तरह केवल चुनाव पर टिकी नहीं है। मैं चाहता हूं सभी को स्वतंत्रता मिले। पर दो सार्वभौम बंधनोंका पालन

अवश्य किया जाय। एक बंधन यह रहेगा कि यहाँ रहनेवाले सभी जातिधर्मोंके लोगोंको समान हक मिलें और ये पैंतीस करोड लोग मेरे देशके नागरिक हैं ऐसा सभी मानते रहें। दूसरा, लोकतंत्र अवश्यही रहे, पर उसमें किसी भी, प्रकार की हिंसा न रहे। इन दो मर्यादाओंका पालन करनेवाले संगठनपर या पार्टीपर कोई पाबंदी न लगे। राष्ट्र सेवादल इन दोनों मर्यादाओंका सही-सही पालन करनेवाला संगठन है।

वह सही मानेमें सांस्कृतिक संगठन है। जातिभेद से परे और निष्ठाओंसे संपन्न! उसका यह स्वरूप मानवता के लिए सर्वथा पोषक है। मेरा यह मत है कि छात्र चाहे किसी भी उमर का हो, उसे राजकीय जलसोंमें जानेकी इजाजत होनी चाहिए। मैं इन छात्रों और अध्यापकोंकी आत्म स्वतंत्रता के लिए २४ दिसंबर से आमरण अनशनपर उतरूंगा।"

गुरुजीके प्रभाव के कारण कालांतरसे यह 'काला कानून' निरस्त किया गया।

यही कारण था कि उनके चारों ओर हमेशा युवकोंका जमघट लगा रहता। सेवादल के सभी ज्येष्ठ कार्यकर्ता गुरुजीके साथ रहे हैं। वे उन्हीं से प्रेरणा पाते रहे। 'शाम के पत्र' नामक लगभग २०० पृष्ठोंकी पुस्तक गुरुजीने मानो सेवादलके लिए लिखी लगती है।

आचार्य स.ज.भागवतने एक स्थानपर गुरुजीके बारेमें जो लिखा वह शत प्रतिशत सच है– "देशाभिमान की भावनासे युवकोंके मनोंको अभिभूत कर देनेमें उनका कोई सानी नहीं। उनके सान्निध्यमें आनेवाले किसीभी व्यक्तिके हृदयमें ध्येयवाद, त्याग और सेवा की भावनाओंका प्रादुर्भाव सहज हो जाता है। रूखे और पंडिताईसे परिपूर्ण दिलोंमें तब वे भावनाओंका तूफान ला सकते हैं। उनके इस कार्य के कारण ही महाराष्ट्र में एक नया युग शुरु हुआ।"

गुरुजी में संतोंका और भक्तोंका एक मिलाजुला तेज था। एक भक्त के रूपमें वे अत्यंत विनम्र, पूर्णतः गर्वरहित, और सभी की सेवामें रत रहनेवाले थे। "हौं सब पतितन को टिकौ" यह भाव हमेशा उनके मनमें जाग्रत रहता था और इसी कारण वे भीड-भाडसे सदा अपने आपको बचाए रखते थे। विनम्र और संकोची इतने कि दो दो दिनोंतक अनाज का एक दाना पेटमें न गया, तो भी न किसीसे कुछ कहते न भोजन करते। लेकिन

वे ही गुरुजी जब मंचपर आते और देशसेवा तथा देशभक्तों की बातें चलती तो क्षणक्षण बदलते जाते। उस छोटी-सी काया में मानो सौ सौ पनवपुत्रोंका बल लहराने लगता। उनके सीधे सादे शब्दोंमें अंगारे धधकने लगते और देखते देखते सारा माहौल बदल जाता।

संघर्ष करने और झेलनेकी उनकी आत्मिक ताकत जबरदस्त थी। उनके जैसे नितांत करुणामय भक्त में झलकता हुआ 'संत' का यह तेजस्वी रूप, तबके तरुणोंके लिये सर्वाधिक प्रेरणादायक था।

■

॥ अध्याय दूसरा ॥

सेवादल के बुनियादी सिद्धांत

राष्ट्र की स्वतंत्रता के लिये कटिबद्ध सेवादलने सोच समझकर जिन सिद्धांतोंको अपनाया था, वे सिद्धांत ही उसके विकास की नींव बन गये। एक धारणा उसके मनमें निश्चित थी कि स्वतंत्रता और समता पर अधिष्ठित राष्ट्रवाद ही इस देशको समर्थ बना सकता है। किसी एक धर्मपर आधारित राजसत्ता या शासन सभी को समान न्याय नहीं दे सकता,यह तो स्पष्टही था। विभिन्न जाति, धर्मों एवं पंथोंमें बँटी हुई यहांकी जनता को सच्ची स्वतंत्रता तभी मिल सकती थी जब वह अपने अधिकारों के दायरेमें अपने कर्तव्योंकी पूर्तता करे। इसके लिए सेवादलने एक पंचसूत्री बनाई। उसके सारे कार्यक्रम इन पांच सूत्रोंसे निबद्ध है। ये पांच सूत्र, सिद्धांत या तत्त्व हैं – १. विज्ञाननिष्ठा, २. धर्मनिरपेक्षता, ३. राष्ट्रवाद, ४. जनसत्ता, ५. समाजवाद.

विज्ञाननिष्ठा

विज्ञान, जीवनकी ओर देखने और परखनेकी तार्किक दृष्टि है। मनुष्य प्रकृति और उसके व्यापारोंको प्रत्यक्ष देखता तथा अनुभूत करता है, पर उसे हर प्राकृतिक घटना के पीछे का कार्यकारणभाव समझमें आताही है, ऐसा नहीं। उल्टे सदियोंसे उसके मनपर अंधश्रद्धाओं और अतार्किकताओं की ऐसी परतें पडी हैं जिन्हें भेदकर सत्यका प्रकाश देखना उसके लिए संभव नहीं होता। विज्ञान वह विशेष ज्ञान है जो दो मुख्य बातें प्रस्थापित करता है। एक– सृष्टिकी हर घटनाके पीछे एक कारण है, और दूसरे– अनुमान तथा प्रयोग के आधारपर ये कारण क्या हैं, इसे जाना जा सकता है।

हम लोगोंके जीवनमें विज्ञान तो होता है, पर वैज्ञानिक दृष्टि नहीं होती। एक वैज्ञानिक के रूपमें अपनी प्रयोगशालामें काम करनेवाला कोई व्यक्ति घर आकर यह विश्वास कर ले कि पत्थर की कोई मूरत दूध पीती है, तो यह निश्चित है कि उसके पास वैज्ञानिक दृष्टि नहीं है।

विज्ञान की भूमिका सत्यशोधन की है। वह धर्मशास्त्रोंके समान यह नहीं मानता कि इस सृष्टिकी निर्मिति के पीछे किसी ईश्वरी सत्ता की मर्जी है, या पाप और पुण्य के क्षय या वृद्धिसे स्वर्ग या नरक की प्राप्ति होती है। विज्ञान अपने आपमें न-नैतिक होता है। मनुष्य की बुद्धि यह तय करती है कि क्या नैतिक है, क्या अनैतिक!

सेवादल के सैनिकोंमें इस विवेकबुद्धिका विकास हो, इसलिए विज्ञाननिष्ठा महत्त्वपूर्ण मानी गयी।

विज्ञान-निष्ठा का एक दूसरा भी पक्ष है। महायुद्ध अब होते नहीं पर सारी दुनिया छोटे-छोटे युद्धोंसे त्रस्त है और कई बार वह एक विश्वयुद्ध के द्वारपर खडी है, ऐसा आभास होने लगता है। अमरिका, रूस, फ्रान्स, ब्रिटन, चीन, भारत और पाकिस्तान के पास अण्वस्त्र तो है ही, अन्य छोटे बडे देश भी इस स्पर्धामें पीछे नहीं। हिरोशिमा और नागासाकी के बाद अण्वस्त्रोंका उपयोग दो राष्ट्रोंके संघर्ष में कहीं पर भी न हुआ हो, पर बार बार अक्रामक वृत्ति के राष्ट्र उस कगारपर पहुंच जाते हैं, यह हमने अभी अभी भारत-पाक संघर्ष के समय देखा है।

इसलिए अब केवल विज्ञान की इस भयावह शक्तिसे डरकर काम नहीं चलेगा। वैज्ञानिक निष्ठा अब इतनी व्यापक और समझदार होनी चाहिए कि कोई भी राष्ट्र विज्ञान के गलत उपयोग के बारेमें सोचे तक नहीं। पहले कभी नहीं थी इतनी आज सामंजस्यता की आवश्यकता महसूस हो रही है। निर्णय लेना राजनीतिओंका काम है, यह सच है; पर वे निर्णय सारी जनता के हितमें है या नहीं, यह तय करनेका काम समझदार जनताका है।

सेवादलने नागरिकोंमें यह समझदारी बढे इसकी सोच-समझकर कोशिश की है। सेवादल की दृष्टिमें विज्ञानयुग समूह-कर्तृत्व का युग है। इस सामूहिकता का आधार होता है– अनुशासन! अगर अनुशासन हुआ तो किसी भी सामूहिक कार्य में गति उत्पन्न हो सकती है। सेवादल यह चाहता है कि विज्ञान का आधार लेकर सारा समाज गतिमान बने। सत्य और सख्य

ये दो उसके साध्य रहेंगे। सख्यसे रहेंगे तो सारे जीएंगे। न तो सर्वनाश निश्चित है।

धर्मनिरपेक्षता

धर्म सारे जीवन की नियामक शक्ति है। दुनियामें ऐसा एक भी राष्ट्र नहीं जो पूरी तरह धर्म-निरपेक्ष हो। भारत जैसे धार्मिक देशमें तो धर्म-निरपेक्षता सचमुच एक बहुत बडी कसौटी है। यहाँ का जन-जीवन वस्तुतः काफी हदतक स्थिर और अपरिवर्तनीय रहा है। सारे सामाजिक एवं राजकीय व्यवहारोंपर धर्मकी जबरदस्त पकड रही, इसलिए यहां हमेशा ग्रंथ-प्रामाण्य का या शब्द-प्रामाण्यका बोलबाला रहा। धर्म और धर्मकी व्यवस्थाको कोई प्रश्न पूछ नहीं सकता था। चाहे वह कितनी ही अतार्किक तथा अन्याय मूलक लगे, उसके खिलाफ बगावत हो नहीं सकती थी। आधुनिक भारतमें यह स्थिति इसलिए बदलनी जरूरी थी कि किसी एक धर्मको सर्वोच्च सत्ता माननेपर अन्योंके साथ न्याय होनेकी संभावना रंचमात्र बचती नहीं। धर्म और ईश्वर के नामपर कुछ लोग युगोयुगोंतक मनुष्य-समाज का शोषण करते आये हैं। अगर इस प्रक्रिया को रोकना है तो धर्मसंबंधी समस्त पारंपारिक मान्यताओंको बदलना होगा।

यह मान्यता शत प्रतिशत सही है कि जबतक पूरा समाजशास्त्र मनुष्य की शक्तिपर भरोसा नहीं करेगा तब तक किसी न किसी रूपमें धर्म का प्रभाव बना ही रहेगा। इसलिए डॉ.बाबासाहब आंबेडकरने कहा था कि 'समाज विज्ञान के क्षेत्रसे अभिनिवेश और भावनाविवशता इन दोनोंको पूरी तरह हटा दीजिए। सामाजिक न्याय प्राप्त होनेकी संभावना तभी बन सकती है।'

भारत में आज भी जो सामाजिक विषमता दिखाई देती है, उसके मूलमें है– जातिसंस्था! जातिव्यवस्था केवल श्रमविभाग नहीं, वह जन्मके आधारपर मनुष्योंका वह विभाजन है, जिसके पार्श्वमें धर्म खडा है। यह धर्म समाज-व्यवस्था के क्षेत्रमें हस्तक्षेप न करे, इतनाही धर्मनिरपेक्षता चाहती है।

धर्मनिरपेक्षता का अर्थ धर्मका विरोध नहीं। धर्मनिरपेक्षता का अर्थ है सभी धर्मोंका समान स्तरपर सम्मान और सभी धर्मियोंकी अपने अपने धर्मके पालन की सहूलियत। मनुष्य मनुष्य के साथ मनुष्य जैसा बर्ताव करे इतनाही धर्मनिरपेक्षता चाहती है। मनुष्य का मनुष्य के साथ कैसा

व्यवहार हो, यह हमारे यहां पहले धर्म तय करता था अब भारत का संविधान उसे तय करता है।

सेवादल के हर सैनिक के मनपर बचपनसे ही इसके संस्कार होने चाहिए कि मानवता ही सबसे बडा धर्म है, और वही सबसे बडी नीति भी है। धर्मनिरपेक्षता ऐहिक जीवनमें उत्कर्ष, समृद्धि और वैभव चाहती है। उसका मनुष्य के कर्तृत्वपर पूरा भरोसा रहता है। इस समाजमें धर्मनिरपेक्षता और सामाजिक न्याय कैसे ला सकेंगे, इसका जवाब बहुत वर्षों पहले गौतम बुद्धसे मिल चुका है। "विश्वास का बीज मैं बोता हूं, उसे अच्छे कामोंका खाद तथा पानी डालो, चतुरता तथा विनयशीलता का हल चलाओ, अपने मस्तिष्कसे मार्गदर्शन लो। मैं न्याय का कानून की तरह उपयोग करूंगा, परिश्रम मेरे बैल होंगे और आसक्तिसे मुक्त होना मेरा ध्येय होगा।" धर्मनिरपेक्षता का तत्त्व सेवादल सैनिक क्यों अपनाएं, इसकी स्पष्ट झलक उपयुक्त विवेचन में मिलती है।

मानवी जीवन के कई अंग आजतक धर्मगुरु, धर्मशास्त्र और धर्म परंपराओंकी गिरफ्त में थे। विज्ञानवादी दृष्टिकोण के कारण अब वे धीरे धीरे मुक्त हो रहे हैं। खेती, उद्योग, व्यापार, यातायात, भवन तथा सडक निर्माण, संगीत, नृत्य, नाट्य, शिल्प, साहित्य ये सारे धर्मनिरपेक्षता के क्षेत्र है। जन्म, मृत्यु जैसी प्राकृतिक घटनाएं हैं, वैसे मंगनी, विवाह, वसीयत ये भी पूरी तरह लौकिक घटनाएं हैं। परिवार नियोजन से धर्म या धर्मगुरुका कोई वास्ता नहीं। वह सर्वथा धर्मनिरपेक्ष मामला है।

शासनसंस्था हमेशा धर्मनिरपेक्ष ही रहनी चाहिए। तब कहीं वह सारी जनताके मूलभूत अधिकारोंकी रक्षा कर सकेगी और सभी नागरिकोंके हितोंकी रक्षा तभी संभव है, जब शासन संविधान और कानून को प्रधानता देकर राजकारोबार चलाता है।

ईश्वर तथा इन्सान का रिश्ता कैसा हो, इसके बारेमें कोई भी निर्णय लेनेका काम शासनसंस्था का है नहीं और शासन कैसे काम करे उसके बारेमें धर्मसंस्था कोई निर्देश न दे, यही धर्मनिरपेक्षताका अर्थ है।

धर्मनिरपेक्षता की अवधारणा व्यक्ति या समाज से ज्यादह राजसत्ता के लिए होती है। राजसत्ता न हिंदू होती है, न मुसलमान, न ख्रिश्चन, न और कोई। वह हर धर्मके व्यक्ति के लिए समान अर्थ रखती है।

धर्मनिरपेक्षता शासन को हिंदू या मुसलमान या इसाई बननेसे रोकती है, व्यक्तिको नहीं।

सेवादलने सत्ताकेंद्रोंतक धर्मनिरपेक्षता का यह अर्थ पहुंचानेकी सर्वाधिक कोशिश की।

राष्ट्रवाद

आधुनिक कालमें घटित कई उदात्त कार्योंकी मुख्य प्रेरणा राष्ट्रवाद रही है। विभिन्न देशोंमें स्वतंत्रता के लिए या जनतंत्रकी स्थापनाके लिए हजारों लोगोंने अपनी बलि चढा दी। जान हथेलीपर लेकर लोग विदेशी सत्ता के खिलाफ लडते रहे। अठारहवीं सदी के अंतमें हुआ अमरिका का स्वतंत्रता संग्राम, यूरप में हुई फ्रेंच राज्यक्रांति, नेपोलियन के आक्रमणोंका छोटे छोटे युरोपीय राष्ट्रोंने दिया हुआ करारा जबाब, ग्रीस और बाल्कन राष्ट्रोंकी तुर्कस्थान के सुलतान के खिलाफ जंग, विभाजित जर्मनी का एक समर्थ राष्ट्रमें रूपांतरित होना, इत्यादि घटनाओंके कारण 'राष्ट्र' एक सर्वाधिक प्रेरणादायी स्थान है यह सिद्ध हो गया।

इसी राष्ट्रवाद के सहारे इतना बडा विशाल भारतीय समाज एक होकर ब्रिटिश राजसत्ताके खिलाफ खडा हो सका। स्वतंत्रता आंदोलन के पहले पूरे भारतमें आसेतू हिमाचल किसी एक राजाका राज नहीं था। छोटे-बडे राजा थे, और उनकी मर्यादाएं थीं। एक राष्ट्र के रूपमें किसी राजाने पूरे हिंदुस्थान के बारेमें सोचा हो, ऐसा नहीं लगता।

सत्रहवीं सदीके अंतमें पाश्चात्त्य दुनियामें राष्ट्रवाद को नये अर्थ, नये संदर्भ प्राप्त होते गये। बीसवीं सदीमें उन अर्थोंका अधिक विस्तार हुआ। एकही राष्ट्र की सीमामें रहनेवाले विभिन्न भाषा-भाषी समाजको स्वतंत्रता देनेका तत्त्व सामने आया। झेकोस्लोव्हाकिया जैसे कुछ नये राष्ट्रोंकी निर्मिति इसी तत्त्व के अनुसार हुई। पर भारत जैसे देशके लिये स्वयंनिर्णयका यह तत्त्व मारक सिद्ध हो सकता है।

राष्ट्र का सीधा अर्थ है– 'एक विशिष्ट भूप्रदेश में रहनेवाले जनसमूहके ऐहिक व्यवहारोंका नियमन करनेवाला राजनीतिक सार्वभौम संगठन याने राष्ट्र।' मनुष्य समाज में रहता है, समाजमें ही जीता है। यह समाज एक धर्म, एक भाषा, एक परंपराका पालन करनेवाला होगा ऐसा

नहीं। एक राष्ट्रमें कई धर्मोंको माननेवाले, कई भाषाओंको बोलनेवाले तथा कई परंपराओंका पालन करनेवाले लोग रह सकते हैं। फर्क इतनाही है कि वे सभी अर्थमें 'राष्ट्र' को अपना माने। अपना देश, अपने बलबूतेपर अपनी इच्छा के अनुसार चलानेकी सामूहिक क्षमता उनमें हो। ऐसी सामूहिक भावनाही राष्ट्रवादकी सही आधारशिला होती है। अंग्रेज भारतमें बेपार करनेके लिए आये थे। बेहिसाब मुनाफा कमाना यही उनका मुख्य उद्देश्य था। यहां उन्होंने जो राजव्यवस्था निर्माण की वह सभी अर्थोंमें उनके उद्देश्य की पूर्ति करनेवाली ही थी। उनके कारण देशमें नये उद्योग शुरू हुए, रेल चली, पोस्ट ऑफिस बने, एक न्यायव्यवस्था निर्माण हुई, तथा शिक्षा के द्वार सभी जातिधर्मोंके लिए खुल गये।

इस नूतन शिक्षा को ग्रहण करनेवाले कुछ भारतीयोंकी समझमें यह बात आ गयी कि राजकारोबार में जनता भी सहभागी हो सकती है। जनतंत्र में जनता सार्वभौम है और अगर वह चाहे तो मतदान के बलपर सरकार भी बदल सकती है। हमें सरकार चलानेमें सहभागी कीजिये और बराबरी का हक दीजिए, यह माँग तूल पकडती गयी। स्वतंत्रता आंदोलन की एक मुख्य प्रेरणा यह मांग भी थी।

१५ अगस्त १९४७ को स्वतंत्रता मिली। २६ जनवरी १९५० को देशका कारोबार चलानेवाला संविधान बना। यह कारोबार न्याय, स्वतंत्रता, समता और बंधुता के आधारपर चलेगा यह भी तय हुआ। परन्तु केवल उत्तम संविधान बनानेसे देशका कारोबार ठीक ढंगसे नहीं चलता। उस संविधानको माननेवाले और तदनुरूप बर्ताव करनेवाले जागरूक नागरिक ही शासनपर अपना अंकुश रख सकते हैं।

सेवादलने यह कोशिश की कि, उसकी शाखाओंपर आनेवाले सैनिक भावी जीवनमें एक जिम्मेदार नागरिक बने। राष्ट्र का राजनीतिक संगठन हमेशा भविष्योन्मुखी होना चाहिए। वह अगर अतीत में रमनेवाला होगा तो राष्ट्र को उचित दिशामें आगे बढा नहीं पाएगा। इसमें दो मत नहीं होने चाहिए कि अपने राष्ट्र को मजबूत बनानेके लिए हर नागरिक तन तोड कोशिश करे। जब यहांके नागरिक स्त्री-पुरुष इसका अनुभव करेंगे कि उन्हें राजकारोबार में समान अधिकार और समान स्थान है, तो वे दिलो जानसे राष्ट्रोत्थान के कार्यमें जूट जायेंगे। उन्हें इसका भी भरोसा

होना चाहिए कि जात-पात, धर्म, वर्ण, वंश, लिंग आदिके आधारपर उनके साथ किसी प्रकारका पक्षपात नहीं होगा। इसलिए राष्ट्र का मुख्य आधार न धर्म होगा, न प्राचीन परंपराएं होंगी। स्वतंत्रता और समता ही उसके मुख्य आधार होंगे।

जनतंत्र

जो शासनपद्धति जनता की सम्मत्तिपर आधारित है और जिसमें आचार, विचार, उच्चार तथा संगठन की स्वतंत्रता है, उसे जनतंत्र कहते हैं। अब्राहम लिंकन ने ठीक कहा था– 'जनता का, जनता के लिये, जनताद्वारा चलाया जानेवाला राज याने जनतंत्र।' यह संज्ञा हमारे यहाँ ग्रीस से आयी। 'डेमॉस' याने लोग और 'क्रेटास' याने राज। उसीसे शब्द बना 'डेमॉक्रसी' याने जनतंत्र।

दुनिया तानाशाही के अत्याचारोंको भुगत चुकी है। कई दोषोंके बावजूद कारोबार की जनतंत्रात्मक पद्धतीही अधिक उपयुक्त है, इसे वह जानती है। बालिग मताधिकारके आधारपर चुनी गई सरकार अगर ठीक काम नहीं करती तो उसे पांच सालोंके बाद बदला जा सकता है। इस अर्थमें राजसत्ता मुट्ठीभर लोगोंके या किसी तानाशाह के अधिकार में नहीं होती, वह बहुसंख्यांक जनता के अधिकार में होती है।

जनतंत्रमें सभी को न्याय मिले, कोई किसीपर अत्याचार या जुल्म न करे, यह आकांक्षा रहती है। जनतंत्रमें आपको जो ठीक लगे उसे करने या बोलनेकी स्वतंत्रता अवश्य होती है, पर इन अधिकारोंका उपयोग संयम और शांतिसे करे, यह भी अपेक्षित होता है। सेवादल अपने सैनिकोंपर यह संस्कार करता है कि जनतंत्र कोई केवल एक शासनपद्धति ही नहीं है। संगठित सामाजिक जीवनकी आवश्यकता और व्यक्तिस्वतंत्रता की तीव्र भावना को ध्यानमें रखकर बनाई गयी वह एक जीवन पद्धति है। हर सैनिक इस जीवनपद्धति की विशेषताओंको समझ ले और आत्मसात करे।

एक नागरिक के नाते कोई भी शासकोंकी रीतिनीतिकी खुलेआम आलोचना या सराहना कर सकता है। अपने ही सरकार के खिलाफ आंदोलन कर सकता है। अपनी इच्छानुसार राजनीतिक संगठन बना सकता है या

किसी भी राजनीतिक संगठन का सदस्य बन सकता है। हर नागरिकको मिले ये और इन जैसे अन्य मूलभूत अधिकार ही जनतंत्र की सबसे बडी विशेषता है। हमें इन अधिकारोंका विवेकपूर्वक उपयोग करने आना चाहिए।

जनतंत्रमें सभी को समान मौके मिलते हैं। कानून के सामनेभी सभी समान होते हैं। जनतंत्र के कारण ही जनतामें स्वावलंबन, स्वाभिमान और सहयोग की भावना का निर्माण होता है।

जैसे लोग वैसी उनकी सरकार, यह सच है। सुयोग्य जनतंत्र के लिए लोगोंको प्रशिक्षित करना पडता है। वे अधिक सुज्ञ, विचारवान बने इसलिए कोशिश करनी चाहिए। अगर ऐसा नहीं होता है तो मौका परस्त, स्वार्थी राजनीतिज्ञ उसका लाभ उठाते हैं। चुनाव के द्वारा जनताका शासनपर नियंत्रण रहता है, यह सही है। पर आजकी चुनाव प्रक्रियामें जो अनंत दोष घुस आये हैं, उन्हें प्रयत्नपूर्वक दूर करना ही इष्ट होगा।

जबतक लोगोंमें स्वतंत्र विचारशक्ती और अपने सवाल खुद हल करनेकी क्षमता है, तबतक जनतंत्र को कोई खतरा नहीं होता। लेकिन उसका भविष्य निर्भर होता है, इस बातपर कि हर आदमी दूसरे आदमी के साथ कैसा बर्ताव करता है? अगर वह उसे अपने जैसा ही मानता है तो आंतरिक तौरपर जनतंत्र सुदृढ बनता जाता है। 'जिओ और जीने दो' यह उसकी नीति होनी चाहिए। हमें जैसे स्वतंत्र जीवन जीनेका अधिकार है, वैसे औरोंको भी है, इसका भान हर नागरिक को होना चाहिए। यह भान ही उसे यह सीखाता है कि धर्म, जाति, भाषा या प्रांत के बारेमें अति आग्रही भूमिका समाज के हितमें नहीं होती। हम अपनी बात शांतिसे कहे, दूसरोंकी शांतिसे सुने। उत्तर ठीक लगा तो अपनी गलत बातोंका त्याग करना भी सीखे। जनतंत्र तभी टिकेगा जब हम समता और स्वतंत्रता इन दोनों शब्दोंके ठीक ठीक अर्थ समझ लेंगे। सेवादल अपने कार्यक्रमोंके माध्यमसे सैनिकोंको एक उत्तम नागरिक बननेकी प्रेरणा निरंतर देता रहा है।

समाजवाद

समाजवादी विचारोंका उद्‌भव अंग्लैडमें हुआ, क्योंकि औद्योगिक क्रांतिकी शुरुआत वहीं से हुई थी। जैसे जैसे कारखाने बढते गये, वैसे वैसे

मज़दूरोंकी संख्या भी बढ़ी और सवाल भी बढे। पूंजीपतियोंके शोषण के विरुद्ध मजदूरोंके संगठन खडे होते गये। आर.एच.टॉनी ने इ.स.१९२१ में लिखा हुआ, 'दि ॲक्विझिटिव्ह सोसायटी' ग्रंथ अंग्लैंड के समाजवाद का मुख्य आधार माना जाता है।

दूसरे महायुद्ध के बाद जिन स्वतंत्र राष्ट्रोंने जनतंत्रात्मक समाजवाद का स्वीकार किया उनमें एक प्रमुख राष्ट्र भारत भी है। वह दुनियाका सबसे बडा जनतंत्रात्मक राष्ट्र है, और जनतंत्रका उद्देश्य जैसा कि नार्मन थॉमस कहता है. 'समाजवाद की स्थापना करना है।'

साम्यवादने जिन जिन राष्ट्रोंमें समाजवादी आंदोलन शुरू था, वहाँ वहाँ घुसपैठ करनेकी कोशिश की पर उसे अधिक यश नहीं मिला। साम्यवाद अपनी कार्यपूर्तिमें हिंसक मार्गोंका समर्थन करता है, यह बात मानवी मूल्योंको प्रधानता देनेवाले विचारकोंको ठीक नहीं लगी। स्कॅन्डेनेव्हिया, न्यूझिलंड, ऑस्ट्रेलिया, भारत जैसे देश समाजजीवन में नैतिक मूल्योंको प्रधानता देनेवाले जनतंत्रवादी देश है। इसलिए इनमें जनतंत्रात्मक समाजवाद पलता और बढता रहा।

समाजवाद का सीधा सरल अर्थ है– हर प्रकार के शोषणसे मुक्ति। पूंजीवाद के कारण समाज में जो विषमता निर्माण होती है, उसे समाजवाद नकारता है। यह विषमता तात्काल दूर नहीं होगी। उसके लिए योजनाबद्ध कार्यक्रम चाहिये। समाज और सरकार ऐसी व्यवस्था करें, जिसमें हर कोई कमसे कम प्राथमिक शिक्षा प्राप्त कर सके। हर एक को काम और उस काम की योग्य मजदूरी मिले। सभी की प्रारंभीक जरूरतें पूरी की जायें। समाज का कोई एक वर्ग अन्योंका शोषण कर धनवान न बने।

१९३२ के सविनय कानूनभंग के आंदोलन के बाद काँग्रेस की राजनीतिमें फर्क आया। १९३४ में कांग्रेस के अंतर्गत कांग्रेस समाजवादी पार्टीकी स्थापना हुई और उसने अपना ध्येय घोषित किया। 'भारत की संपूर्ण स्वतंत्रता हमारा उद्दिष्ट है। संपूर्ण स्वतंत्रता का अर्थ है ब्रिटिश साम्राज्य के शिकंजेसे भारत की मुक्तता और समाजवादी समाज की स्थापना।'

सेवादलने इस उद्देश्य की पूर्तता के लिए सबसे ज्यादह कोशिश की। राजनीतिके रंग बदलते गये और समाजवादी पार्टीभी समझौतावादी राजनीतिकी चंगुलमें फँसकर अपनी रीति-नीति खो बैठी। पर सभी प्रकारकी

घृणित राजनीतिसे दूर रहकर सेवादलने उन कार्यकर्ताओंका निर्माण जारी रखा जो समाजवादी क्रांतिके लिये अपना जीवन समर्पित कर सकें।

विकेंद्रीकरण, सत्याग्रह, शांतिमय संघर्ष और साधनशुचिता इन गांधीजी के सूत्रोंपर समाजवादियोंका भरोसा था। कुछ कालतक गांधीजी का सैद्धांतिक विरोध करनेवाले जयप्रकाशजी भी अंतमें इन सूत्रोंमें विश्वास करने लगे थे।

सेवादल के मुख्योंमें होनेवाले श्री.एस.एम.जोशी और श्री.नानासाहब गोरे ही भारतमें समाजवादी आंदोलन के अध्वर्यु थे।

सेवादल इन पांच सिद्धांतोंको आधार बनाकर विकसित होता रहा। किसी भी स्वस्थ समाज के लिये इन पांचों सिद्धांतोंकी आवश्यकता होती है। यह सच है कि इन सिद्धांतोंके सहारे जीना आसान नहीं। खासकर आजकी भयंकर स्वार्थ-परायण दुनियामें तो लोग ऐसी जीवन-शैलीके बारेमें सोच भी नहीं सकते। सर्वत्र फैला हुआ भ्रष्टाचार, गुंडई, और अनीतिने लगता है, मनुष्य की सद्सदविवेक बुद्धीको ही कुंठित कर दिया है। जीवन मूल्योंकी दीक्षा देनेलायक रहा नहीं। राजनीतिमें इतनी गिरावट आ गयी है कि उसके उन्नत होनेके आसार दूर दूर तक दिखाई नहीं देते। पूरा जनतंत्र मानो गुंडोंकी गिरफ्तमें फँस गया है। ऐसी स्थितिमें सेवादल के ये पंचसूत्रही ऐसे हैं जो एक नयी लोकनीतिका निर्माण कर, जनतंत्र को बचा सकेंगे। इस सच्चाईसे कोई इन्कार नहीं करेगा कि न्याय, स्वतंत्रता, समता और अपनेपनकी बुनियाद परही एक नये भारतका निर्माण किया जा सकता है। वह एक एकात्म, सुदृढ और सम्पन्न राष्ट्र तभी बन सकेगा, जब वह इन मूल्योंको प्रत्यक्षतः अपने जीवनमें उतारनेवाले नागरिकोंका निर्माण करेगा। सेवादल इस उदार, सहिष्णु और सर्वसमावेशक नागरिकता के निर्माण की शाला है। ये पाचों बुनियादी सिद्धांत एक-दूसरेसे अलग नहीं किये जा सकते। वे एकरूप हैं और उन्हें उस रूपमें अपनाते हैं तो ही उसका फल पा सकते हैं।

मुझे इस संदर्भमें श्री.यदुनाथ थत्तेजी का कथन सर्वथा योग्य लगता है। वे लिखते हैं....

"इन संस्कारोंसे संस्कारित व्यक्ति किसी भी क्षेत्रमें काम करता हो, वह अपने बर्तावसे अपना विशिष्टत्व दिखा देगा। सेवादल पाठशाला में हुए संस्कार तभी सही माने जाएंगे जब उनके प्रकाशमें नयी रचना करने हेतु

वह प्रवृत्त होगा। अच्छा बोलनेमें किसी के बापका कोई जाता नहीं, इसलिए बडे बडे नारे लगते हैं, लेकिन उनके अनुसार रचना करने के लिये कदम उठानेपर लोगोंको नानी याद आने लगाती है और वे रचनाकर्मी के विरोधमें अडंगे लगाते हैं। ऐसे वक्त संघर्ष टाला नहीं जा सकता। संघर्ष से मुख मोडना कायरता है। संघर्ष शांतिपूर्ण होगा। जो लोग अपनी बातको सही करनेकी हिम्मत नहीं कर पाते, उनमें हिम्मत पैदा करना संघर्ष का उद्देश्य है।"

इसलिए सेवादल के सिद्धांतोंको मानना याने सिद्धांतों और मूल्योंके लिये संघर्ष करना या संघर्ष के लिए तत्पर रहना ही है। ये मूल्य व्यक्तिगत होते हैं और अपने व्यापक रूपमें सामाजिक भी। अब इनकी स्थापना के लिए जो संघर्ष करना पडेगा वह किसी विदेशी सत्ता के साथ नहीं, वरन स्वजनों के साथही होगा। सेवादल के हर कार्यकर्ता की वहांपर कसौटी लगेगी। यह अनुभव है कि जो परायों के साथ बहादुरी से लडते हैं, वे स्वजनोंसे संघर्ष करनेमें हिचकिचाते हैं, या पीछे हट जाते हैं।

■

॥ अध्याय तीसरा ॥

संगठन – कदम दर कदम

१९४२ के आंदोलनमें सारे महाराष्ट्रसे सेवादल के कार्यकर्ता उतरे थे। अनुभवी और युवाओंका सहभाग तो था ही, पर १२-१३ सालके किशोर-किशोरियाँ भी बडी निर्भयतापूर्वक आंदोलनमें हिस्सा ले रही थी। ये सारे किशोर और युवा कार्यकर्ता अब बहुत बडी संख्यामें सेवादल की शाखाओंपर इकट्ठा हो रहे थे। संगठन का बल बढता जा रहा था और अनुभवी कार्यकर्ता उसे एक सही दिशा देनेमें लगे थे। साने गुरुजी, एस.एम.जोशी, शिरुभाऊ लिमये, ना.ग.गोरे सहित कई ज्येष्ठ कार्यकर्ताओं की धीरे धीरे रिहाई शुरू हुई। १९४३-४४ तक लगभग सभी कार्यकर्ता जेलसे बाहर आ गए।

अब सेवादल के शिविरों का एक सिलसिला शुरू हो गया। वैचारिक, भावनिक और संगठनात्मक दृष्टिसे उसे एक सूत्रमें बांधनेकी जरूरत महसूस होने लगी।

शाखाओंपर आनेवाले छोटे-बडे सैनिकों को एक सुव्यवस्थित शिक्षा देनी थी, संस्कार देने थे। वे राष्ट्र के साथ निरंतर जुडे रहे, उनके कार्योंमें विधायकता हो इसका भी भान रखना था। एक संगठन के स्तरपर सेवादल सक्षम बने और एक व्यक्तिके स्तरपर सेवादल सैनिक समर्थ हो, ऐसा सभी चाहते थे।

सेवादल की शाखाएं उसकी उर्जा–वाहिनी थी। वहांसे एक अनुशासनबद्ध, देशप्रेमी, तथा समतावादी नागरिक की निर्मिति होनी थी। इसलिए सेवादलने सर्वाधिक ध्यान शाखा कार्यपर दिया। उस समय यह कई मानेमें जरूरी भी था। लेकिन वह केवल एक दिशामें ही आगे नहीं बढा। अपने ऐतिहासिक विकास क्रम में उसने एक संगठन के स्तरपर मजबूत बननेकी जितनी कोशिश की उतनीही

कोशिश सांस्कृतिक तथा वैचारिक स्तरपर अपने आपको समृद्ध बनानेके लिए भी की। हम क्रमशः विकास की इन धाराओंको देखेंगे।

१९४४, औंध शिविर

अधिकांश कार्यकर्ता अब जेलसे बाहर थे। ४२ के आंदोलन का अनुभव उन्हें हो चुका था। १९४४ के मईमें औंध में एक शिविर का आयोजन हुआ। प्रमुख थे डॉ.र.नि.अंबिके। लगभग ७०० कार्यकर्ताओंका प्रशिक्षण इस शिविरमें किया गया। औंध संस्थान के अधिपति श्री.पंत देशप्रेमी तो थे ही, राष्ट्र सेवा दल की देशसेवा से भी परिचित थे। उन्होंने शिविर के लिए जगह तो दी ही, अन्य सहायता भी की। क्रांतिकारी नाना पाटील का इस शिविर में होना एक महत्त्वपूर्ण बात थी। आगे चलकर काम करनेवाले युवा कार्यकर्ताओंका एक दल इसी शिविरमें तैयार हुआ। कई तरह के नये मैदानी खेल सिखाए गए। शिविरार्थियोंको उनसे काफी लाभ हुआ। श्री.कोल्हटकर मास्टरजी ने उपस्थित सैनिकोंको राष्ट्रवाद की ऐसी असरदार दीक्षा दी कि वे उसे आजीवन भूल न पाए। राष्ट्रगीत, राष्ट्रध्वज और गांधी टोपी ये तीनों राष्ट्रीय भावना के प्रतीक हैं, इसकी शिक्षा लोगोंको देनेका कार्य भी इसी शिविरसे शुरू हुआ।

ये जिंदगी है कौम की

१९४५ के मई में सभी जिलोंमें शिविरोंका आयोजन हुआ। सुभाषबाबू की 'आजाद हिंद सेना' १९४४ में ही इम्फाल पहुंच चुकी थी, पर इम्फाल जीतना उसे संभव नहीं हुआ। देहली के लाल किलेमें अब आजाद हिंद सेना पर मुकदमा चल रहा था। चारों ओर सुभाषबाबू और उनकी सेना की बहादुरी के चर्चे थे। सेवादल सुभाषबाबूके राष्ट्रवाद की परंपरा को ही आगे बढा रहा था। शाखाओंपर कवि वसंत बापट के गीत गाए जाते और आजाद हिंद सेना का प्रसिद्ध 'मार्च साँग' –

कदम कदम बढाए जा
खुशीके गीत गाए जा
ये जिंदगी है कौम की
तू कौमपे लुटाए जा

जो हर सेवादल-सैनिककी आत्मामें रच-पच गया था। पू.साने गुरुजी के

तूफानी दौरे ने भी महाराष्ट्रके जन-जीवनमें चेतनता की एक लहर फैला दी थी। १९४५ के सारे शिविर इस पार्श्वभूमिपर हो रहे थे। वैसे शिखर बिंदु पर १९४३ से १९४७ तक महाराष्ट्र और महाराष्ट्र के बाहर भी सेवादल बडी तेजीसे फैला।

१९४१ में महाराष्ट्र में सेवादल सैनिकोंकी संख्या ३२०० थी। १९४४ में वह बढकर २२,६०० तक पहुंच गयी। १९४६ में केवल मुंबई में ४००० सैनिक थे और पूरे महाराष्ट्र में ६०,००० की संख्यामें सैनिकोंकी शाखाओंपर उपस्थिति रहा करती थी।

महाराष्ट्र के बाहर बडौदा, इंदौर, उदेपुर, दिल्ली, सिंध, कर्नाटक, आंध्र, मद्रास इत्यादि स्थानोंसे महाराष्ट्र के कार्यकर्ताओंके पास निरंतर यह माँग आ रही थी कि 'हमें यहाँपर सेवादल शुरू करना है, प्रशिक्षित कार्यकर्ता भेजिए।' तद्नुसार श्री. चिंतोपंत करंदीकर सिंधमें, श्री. सुधाकर अप्पा मायदेव मद्रासमें, डॉ. इंदूमती केलकर मध्यप्रदेश तथा उत्तर प्रदेशमें गए।

अभीतक कोई अंतर्प्रांतीय शिविर नहीं हुआ था। पर १९४६ के मई में पुणेमें ऐसा एक शिविर हुआ जिसमें ५५ सैनिक, जिनमें पांच महिलाएं भी उपस्थित रहे।

यह सैलाब अचानक नहीं उमड रहा था। लोग खुली आंखोंसे राष्ट्र सेवादल के कार्यक्रमोंको देख रहे थे। उसके देशप्रेम और देशसेवाके लिए किसीके भी मनमें कोई शक नहीं था। युवाशक्तिका वह सबसे अधिक उर्जस्वल, प्रगतिशील तथा प्रेरणादायी स्वरूप था। जनता के मनमें इस बातका भरोसा था कि सभी विषम स्थितियोंमें हिंदुस्थानियोंकी मदद के लिये तत्परतासे आगे बढनेवाला अगर कोई संगठन है तो वह, सेवादल ही है।

शिवशक्तिका तेजस्वी आविष्कार – सातारा शिविर

१-२ फरवरी १९४६ को सातारा में प्रांत शिविर हुआ। इस शिविर में ११,२०० सैनिक और हितचिंतक उपस्थित थे। यही वह समय था जब सारे महाराष्ट्र के ध्येयवादी युवक-युवतियोंके लिए राष्ट्र सेवादल की यह पहचान पक्की बन गयी, कि यह स्वतंत्रता के संग्राममें पूरी निष्ठा और साहस के साथ उतरनेवाला तथा नयी पीढीपर राष्ट्रवादी विचारोंका संस्कार करनेवाला संगठन है। सातारा १९४२ की क्रांतिमें सिरमौर रहा था। इस जिलेके लगभग ३०० सेवादल सैनिकोंने उस कालमें जेल भुगती थी। और किसी जिलेमें नहीं पर

सातारा जिलेमे तब सेवादल पर बंदी लादी गयी थी। इसलिये वह सबसे अधिक उपयुक्त जगह थी सेवादलके शक्तिप्रदर्शन के लिये।

ग्यारह हजार दो सौ सैनिकोंमें बारह सौ महिलाएं थीं। ३०० सैनिकोंका एक विशाल बँडपथक था। शहरमें जब रूट मार्च निकला तो गणवेशधारी युवाओंकी अनुशासनबद्ध लंबी लंबी कतारें देखकर नागरिक भौचक्के रह गए। इतने लोगोंके निवास और भोजन की व्यवस्था भी बडी कुशलतापूर्वक की गयी थी। पासपडोस के सोलह गांवोंसे भोजनसामग्री मुख्य केंद्रमें आती और वहांसे वितरित की जाती। तंबुओंमे रहनेके लिए जिन्हे जगह नहीं मिल पायी, उन्होंने बिना किसी शिकायत के खुले मैदानमें अपना डेरा जमा लिया। विश्वास, भाईचारा और अनुशासन का बडा अनोखा मेल था इस शिविर में।

आजाद हिंद सेना के मेजर शहानवाझखान मुख्य मेहमान थे। मेलेकी अनुशासनबद्धता और सैनिकोंके उत्साह ने उन्हें बहुत प्रभावित किया।

कांग्रेस के वरिष्ठ नेता भी उपस्थित थे। उनमेंसे कुछ लोगोंको सेवा दल की इस बढती हुई ताकतमें खतरा दिखाई देने लगा। श्री.शंकरराव देवने कहा, 'मैं यह मानता हूं कि सेवादल एक शक्ति है, पर मुझे इसके बारेमें शक है कि यह एक शिवशक्ति बनेगी– और किसी मंगलकार्यके लिए उसका उपयोग होगा।' सेवादल के सैनिक शंकरराव के इस भाषणसे चकित रह गए। उनके कथनका मतलब साफ था। या तो हमारे अधीन रहो या फिर हमसे अलग हो जाओ!! कांग्रेसके नेता जानते थे कि सेवादल अब केवल एक संगठन नहीं रहा, वह आंदोलन बनने जा रहा है, और उसका झुकाव समाजवादी विचारधारा एवं समाजवादी पार्टीकी ओर रहेगा। सेवादल को कभी न कभी अपनी स्वायत्ततासंबंधी निर्णय लेना ही था। काँग्रेस से अलग होकर अपनी राह चिन्हना एक दुष्कर कार्य है यह उसे ज्ञात था। पर उसने हिम्मत नहीं हारी। बडे धीरज और निष्ठाके साथ उसने यह तय किया कि न किसीके अधीन रहेंगे, न अपने सिद्धांतोंका त्याग करेंगे। अपनी निष्ठा के बलपर अकेले ही आगे बढेंगे।

कांग्रेस से अलग

कांग्रेस के जाति-धर्म निरपेक्ष राष्ट्रवादको सेवादल की मान्यता थी। वह प्रांतिक कांग्रेसका नियंत्रण भी मानता था। पर उसकी यह स्पष्ट धारणा थी

कि वह केवल स्वयंसेवकोंका दल नहीं है। उसका स्वरूप शिक्षात्मक है और वह नये समाज की रचना के लिये कटिबद्ध है। इस देशके किशोरों और युवक-युवतियोंपर उचित संस्कार कर वह उन्हें स्वतंत्रताके आंदोलन के साथ जोड देना चाहता था। वह अगर यह न सोचता तो उसके स्थानीय नेताओंकी राजनीतिमें एक हथियार के रूपमें उपयोग होने की संभावना बहुत थी।

श्री.रावसाहब पटवर्धन ने दोनोंके बीच सुलह करवानेकी कोशिश की पर वह सफल न हो सकी, उल्टे उन्हें ही कांग्रेससे इस्तीफा देना पडा।

यथाक्रम प्रांतिक काँग्रेसने राष्ट्र सेवादलसे अपने आपको अलग कर लिया और नियंत्रण-मंडल को निरस्त कर दिया। इस सारी स्थिति पर सोच विचार करने के लिए जून १९४७ में हडपसर में कार्यकर्ताओंकी एक बैठक बुलाई गयी। लगभग ३५० कार्यकर्ता उपस्थित थे। पू.साने गुरुजी, आचार्य जावडेकर, आचार्य भागवत, श्री.हरिभाऊ फाटक इत्यादि नेताओंने अपने अपने विचार प्रगट किये। चर्चा-विमर्श के बाद बहुमतसे यह तय हुआ कि राष्ट्र सेवादल अब स्वतंत्र रूपमें कार्य करेगा।

श्री.भाऊसाहब रानडे दलप्रमुख बने। आचार्य जावडेकर, रावसाहब पटवर्धन, अण्णासाहब सहस्रबुद्धे और एस.एम.जोशी इनका एक नियंत्रण-मंडल बना।

१ जुलाई १९४७ से यह नियंत्रण मंडल काम करने लगा। उसने श्री.एस.एम.जोशी की दलप्रमुख के नाते नियुक्ति की। भाऊ रानडे नियंत्रण मंडल में आ गए।

सेवादल की साधना १ जुलाई १९४७ से स्वतंत्र रूपमें शुरू हो गयी।

नवसमाज निर्मिति के तीन सूत्र

धर्मनिरपेक्षता, समाजवाद और आर्थिक तथा सामाजिक समता ये तीन मुख्य सूत्र सेवादलने तय किये। उसकी इस वैचारिक भूमिका को आकार दिया आचार्य जावडेकर, साने गुरुजी और एस.एम.जोशी ने। आचार्य जावडेकरजी की मान्यता बहुत स्पष्ट थी। स्वतंत्रता की आकांक्षा प्रगट करनेवाला भारत का राष्ट्रवाद, अन्य देशोंको गुलाम करनेवाले हिटलर के राष्ट्रवादसे सर्वथा अलग है। अंग्लैंड का राष्ट्रवाद भी विस्तारवादी है, भारत जैसे देशोंको गुलाम बनानेमें उसे कोई शर्म महसूस

नहीं होता। एक ओर फ़ासीवाद है दूसरी ओर साम्राज्यवाद! दोनों में कोई फर्क नहीं। दोनों विकृत है।

भारत का राष्ट्रवाद

भारत का राष्ट्रवाद इन दोनोंसे सर्वथा अलग है। वह अपने देशकी स्वतंत्रता जितनी महत्त्वपूर्ण मानता है, उतनीही दूसरे देशोंकी स्वतंत्रता भी। ब्रिटिशोंने भारत का अमानुष आर्थिक शोषण किया, जालियांवाला बाग जैसे जघन्य कांड किये। हमारी स्थिति भिन्न है। भारत का राष्ट्रवाद सभी भारतीयोंको समान मानता है। वह जाति-धर्म के भेदोंसे परे है। हम उन सभी राष्ट्रोंके साथ कंधेसे कंधा मिलाकर खडे हैं, जो अपनी स्वतंत्रता के लिए संघर्ष कर रहे हैं। भारतीय राष्ट्रवाद, फासीवाद या तानाशाही का स्वरूप अख्तियार कर ही नहीं सकता, क्योंकि वह कुछ निश्चित नैतिक मूल्योंको माननेवाला तथा सामाजिक न्याय के लिये कटिबद्ध है।" सेवादल की कार्यपद्धति की नींवमें यह भूमिका है। आगे चलकर प्रसंगानुरूप उसने इसी भूमिका का विस्तार किया।

१९४६ के मई में अंधेरीमें कार्यकर्ताओंकी एक बैठक हुई थी। उसमें यह तय हुवा था कि, नवसमाज निर्मिति राष्ट्रसेवादल का ध्येय रहेगा और वह आर्थिक तथा सामाजिक न्याय के लिए निरंतर संघर्ष करेगा। आचार्य जावडेकरजी के विवरण में ये मान्यताएं अपने आप समाविष्ट हो गयी थी।

कार्य की त्रिधारा

सेवादल की अध्यक्षता अब श्री एस.एम.जोशी जैसे अत्यंत अनुभवी कार्यकर्ता के जिम्मे थी। स्वतंत्रता आंदोलनमें उन्होंने जो काम किया, उसे पूरा देश जानता था। सातारा के मेले के बाद पुणेमें उन्होंने कुछ चुने हुए कार्यकर्ताओंकी एक बैठक आयोजित की। बैठकमें यह तय हुआ कि सेवादल का काम तीन दिशाओंमें आगे बढे। उसके लिये तीन विभाग बनाए गए।

संगठनविभाग-प्रमुख :– वि. म. हर्डीकर और नाना डेंगळे; शारीरिक शिक्षा विभागप्रमुख :– डॉ. रं. नि. अंबिके; और कलापथक विभाग-प्रमुख :– प्रा. वसंत बापट तथा आवाबेन। बौद्धिकोंकी जिम्मेदारी प्रा.ग.प्र.प्रधान, प्रा.सदानंद वर्दे आदिको सौंपी गयी।

१५ अगस्त १९४७ को भारत आजाद हुआ पर सेवादलके अनुभवी नेता यह जानते थे कि आगे की लडाई और भी विषम है। गुलामी से संघर्ष एक अलग बात है, और समता प्रस्थापित करना एक अलग बात है।

शरणार्थियों की छावनियों में

स्वतंत्रता मिली पर देशकी जनता को उसकी बडी महंगी कीमत चुकानी पडी। सीमापर भयंकर जलवे हुए। हिंदू और मुसलमानोंके बीच न जाने कितनी जानलेवा झडपें हुईं। स्त्रियोंपर, बच्चोंपर अनन्वित अत्याचार हुए। लाखों मकान जलकर राख हो गए। हजारों परिवार हमेशा के लिए उखड गए। देशकी सीमापर सर्वत्र शरणार्थियोंकी छावनियां लगीं। कुरुक्षेत्र में लगी हुई पांच छावनियोंमें सेवादल के प्रौढ कार्यकर्ताओंके साथ कई युवा स्वयंसेवक भी पहुंचे। पुणेमें तथा अन्य स्थानोंपर के सैनिकोंने जनतासे अपील की कि दिवाली की मिठाई पहले शरणार्थी भाई-बहनोंके लिए दीजिए, फिर घरमें रखिये। सुदूर छावनियों में रहनेवाले शरणार्थी भाई बहनोंतक यह मिठाई सेवादल सैनिकोंने पहुंचायी।

हर मोर्चे पर सेवादल

स्थान स्थानपर की सेवादल शाखाओंमें वृद्धि हो रही थी। किशोर, युवाओंके साथ साथ प्रौढोंके लिये तथा महिलाओं के लिए भी स्वतंत्र शाखाएं शुरू हो गयीं। दिनभर मेहनत मजदूरी करनेवाले लोग रात्री शाखाओंपर आने लगे। केवल इक्कट्ठा होने के लिए शाखाएं थी नहीं। सेवा उनकी प्राणवायू थी। इसलिए देशपर, गांवपर, गली में जहां भी कहीं संकट घिरता सेवादल सैनिक वहाँ राहत कार्य के लिए उपस्थित हो जाते। १९४४ में मुंबई में प्रचंड स्फोट हुए। सैनिकोंने रातदिन जागकर लोगोंको मदद पहुंचायी। अकाल हो या तूफान, बाढ हो या सूखा, उत्सव हो मातम, सभी मोर्चोंपर सेवादल के सैनिक हाजिर थे। हिंदू-मुसलमानोंके रंगोंमें शांतिदूत के नाते उन्होंने काम किया। कुर्ला के सेवादल सैनिक प्रभाकर कलुसकर की जान इसी कोशिश में गयी थी।

महिलाएँ भी

इनमेंसे किसी भी काममें महिलाएं पीछे नहीं थीं। जेलसे छूटकर आने के बाद अनुताई लिमये ने महिला शाखाओंका काम शुरू किया। घरका सारा

कामकाज निपटाकर मध्यवयीन महिलाएं भी बडे उत्साहसे शाखाओंपर आती थीं। १९४४ के अंततक केवल महिलाओंकी १४४ शाखाएं महाराष्ट्रमें कार्यरत थीं। १९४६ में यह संख्या बढकर ३७३ बन गयी। लगभग १३ हजार महिला स्वयसंविकाएं अलग अलग शाखाओंमें काम करती थीं। १९४८ तक इस संख्यामें लगातार वृद्धि होती रही।

गांधी हत्या और बंदी

३० जनवरी १९४८ को देहलीमें गांधीजीकी हत्या हुई। कांग्रेस सरकारने कांग्रेस सेवादल को छोडकर शेष सारी स्वयंसेवी संस्थाओंपर बंदी लादी। वस्तुतः सेवादल के नामपर ऐसा एकभी काम, एक भी प्रसंग, एक भी घटना नहीं थी, जिससे उसपर बंदी लादी जाय। पर राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के साथसाथ यह कुल्हडा सेवादल के सिरपर भी पडा। शाखाएं बंद हो गयीं। गणवेश पहनने के लिए तक मनाई की गयी। कवायद कर नहीं सकते थे, खेल खेलने पर भी पाबंदी थी। सेवादलने सरकार का हुकूम माना पर काम करनेके नये रास्ते ढूंढ निकाले। स्थानस्थानपर अध्ययन मंडल सुरू किये गए। कलापथक के माध्यमसे सेवादल की नीति सर्वत्र प्रसारित होती रही। श्रमशिविर तो उसके शक्तिस्थान थे।

हडपसर मेला

सेवादल गतिमान संगठन है। बदलती हुई स्थितियों में अपने आपको ढालना और उस स्थितिसे मेल खाता हुआ कार्यक्रम बनाना वह जानता है। १९५० के सांगली शिविरमें साने गुरुजीने कहा था, "गांव गांव जाकर लोगोंकी सेवा कीजिए। अपने बल पर ही अपना और देशका विकास हो सकता है।" सही मानेमें सेवादल ने ही श्रमशिविरोंकी शृंखला शुरू की। महाराष्ट्र में श्रमसंस्कृतिकी उपासना करनेवाला वह पहला युवा-संगठन था।

४ से ६ नवंबर १९५४ को हडपसर में सारे महाराष्ट्रसे ३००० सैनिक इकट्ठा हो गए। मेले का मुख्य उद्देश्य था सैनिकोंको एक नया कार्यक्रम देना तथा संगठन पर छायी हुई सुस्ती को दूर करना।

हडपसर की 'सुभाष को-ऑप. फार्मिंग सोसायटी' सरकारद्वारा गौरवान्वित सोसायटी थी। उसकी खेती की मेंड तैयार करनी थी। छोटे

बांध बांधने थे। हर रोज तीन घंटे काम होता था। दो हजार सैनिक कुदाल-फावडे लेकर बडे अनुशासन के साथ कामपर आते और जाते। काम की सारी योजना सेवादल के इंजिनियरोंने बनायी थी और सभी छोटे बडे कामोंपर सेवादल के सैनिक ही मुस्तैद थे। केवल महाराष्ट्र में ही नही, पूरे भारतमें ऐसा अनुशासन बद्ध श्रमकार्य कहींपर नहीं हुआ था। श्री. जयप्रकाश नारायण की उपस्थितिने सैनिकोंमें अपार उत्साह भर दिया। हर उपक्रम, हर कार्यक्रम और हर कार्यपर सेवादल की रचनात्मक दृष्टिकी गहरी छाप थी। आचार्य जावडेकर, आचार्य नरेंद्र देव, जयप्रकाश नारायण, एस.एम.जोशी, रावसाहब पटवर्धन, हॅन्स पीटर मुलर की उपस्थितिने इस मेले को चार चांद लगा गिए। सैनिकोंने जो काम किया उसरी पूरी पूरी प्रशंसा सभी ने की।

मुंबई का क्रीडा समारोह

मुंबई में सेवा दल का काम हमेशा जोरों पर रहता था। मुंबई सेवा दल इकाई उस वक्त महाराष्ट्र इकाई से अलग थी। कई सेवा दल शाखाएँ उस वक्त मुंबई में कार्यरत थीं। १९४२ का 'भारत छोडो' आंदोलन तथा आपातकाल विरोधी आंदोलन में मुंबई के सेवा दल सैनिकों का विशेष योगदान था। मुंबई में सेवा दल सैनिकों के परिश्रम से ही "अपना बाजार" जैसी सहकारिता संस्था शुरू हई और इस क्षेत्र में उसने एक अनोखी मिसाल बनाई। सांताक्रूझ का साने गुरुजी आरोग्य मंदिर शिक्षा के क्षेत्र में काम करनेवाले संस्थाओं का मानबिंदु साबित होगा। कलापथक में भी मुंबई सेवा दल का हिस्सा बहुत ज्यादह था।

सेवा दल द्वारा संयोजित सभी उपक्रमों में मुंबई सेवा दल की सक्रिय भागीदारी रहती थी। आज भी किसी भी सेवा दल उपक्रम के लिए चंदा इकट्ठा करने का सवाल आता है, मुंबई सेवा दल हमेशा अग्रसर होता है।

१९५७ से चतुर्वार्षिक योजना बनाकर सेवादल का काम चल रहा था। शाखापर आनेवाले युवक-युवतियोंका तन और मन सुदृढ बने इसलिए विशेष कार्यक्रम बनाए गए थे। खेलोंकी शास्त्रशुद्ध शिक्षा दी जाती थी। तज्ञ शिक्षकोंका मार्गदर्शन सैनिकोंको मिलता था। चार सालमें यह कोशिश की गयी कि युवक-युवतियाँ केवल मनोरंजन के लिए या महज शौकिया स्तर पर

खेल न खेले बल्कि उसमें पारंगत बनने के लिए खेले। चार सालके बाद अब यह देखना था कि उस उद्देश्यमें कितनी सफलता मिली?

२ से ५ नवंबर १९६१ को बंबई के भव्य वल्लभभाई स्टेडियमपर लगभग ढाई हजार सैनिकोंका मेला लगा, जिसमें १२०० स्पर्धक थे। पहले दोनों मेलेसे यह मेला कई अर्थोंमें भिन्न था। एक तो इसका स्वरूप क्रीडा-स्पर्धाका था। नियोजन करनेवालोंमें तज्ज्ञ खिलाडी थे और सारी व्यवस्था किसी भी भव्य क्रीडा समारोह जैसी थी।

वैयक्तिक स्पर्धाके ५९ और सांघिक खेलोंके २० प्रकार थे। ऑलिम्पिक स्पर्धा की तरह विजेता खिलाडियोंका सम्मान किया जाता था। स्वर्ण, रजत और कांस्य पदकोंके साथ संघ के लिये भी कई पारितोषिक रखे गए थे। 'जनरल चॅम्पियनशीप' पुणे को मिली। इस क्रीडा-समारोहसे ही 'सेवादल-ज्योति' का स्वागत करने की प्रथा शुरू हुई। तीन दिनका यह समारोह आनंद, उत्साह और चैतन्यसे भरा हुआ था। सैनिकोंकी और दर्शकोंकी इतनी बडी संख्यामें उपस्थिति होनेके बावजूद कहींपर कोई गडबडी नहीं हुई।

राज्यपाल श्री.श्रीप्रकाश समापन समारोह के मुख्य अतिथि थे। सैनिकोंका संचलन, कवायद, खेल-कौशल्य और अनुशासनबद्धता देखकर वे बहुत प्रसन्न हुए। स्वयं श्री. श्रीप्रकाश कभी 'हिंदुस्थानी सेवादल' में थे। अपने भाषणमें उन्होंने उन दिनोंकी यादें दोहराईं।

दलप्रमुख श्री.भाऊसाहब रानडे अपने पद से निवृत्त हुए और श्री.नानासाहब डेंगले ने दो सालोंके लिये कार्यभार संभाला।

इस स्पर्धाके आयोजन में सेवादल की संगठन कुशलता की कसौटी लगी। आयोजन के किसी भी अंगमें कोई कमी न रहे, इसकी कोशिश की गयी और उसमें सफलता मिली।

१९४८ से १९५५ तक स्कूल और कालिज के युवक-युवतियोंमें सेवादल संबंधी अपार आकर्षण था। स्कूल, कालिज और घरमें भी उन्हें वह स्वतंत्रता नहीं थी, जो सेवा दल के विभिन्न अनुशासनबद्ध कार्यक्रमोंमें मिलती थी। तब तो सेवापथक, कलापथक जैसे कार्यक्रम भी उनके लिये नये थे। १९५०-५२ से स्कूल, कालिजोंमें और राष्ट्रीय सेवायोजना के अंतर्गत वे सारे कार्यक्रम होने लगे जो सेवादलकी शाखाओंपर होते थे। खेलकी सुविधाएं

भी बढने लगीं। परिणाम यह हुआ कि सेवादल की शाखाओंपर युवक-युवतियों की उपस्थिति घटने लगी।

स्वतंत्रता के आंदोलनमें देशके लिये कुछ कर गुजरनेकी जो ललक तबकी युवा पीढीमें थी, वह बादकी पीढीमें नहीं रही।

स्थितियां प्रतिकूल थीं, फिर भी सेवादल का काम रुका नहीं। उसकी स्थापना को २५ वर्ष पूरे हो रहे थे, और अपना रौप्य महोत्सव मनानेकी तैयारी उसने शुरू कर दी थी।

धूलिया में रौप्य महोत्सव

२८ से ३१ अक्तूबर १९६६ को धूलिया के श्री शिवाजी विद्या प्रसारक संस्थाके आर्टस्, कॉमर्स कालिज के भव्य मैदानपर रौप्य महोत्सवी समारोह मनाया गया। वक्तृत्व स्पर्धा, परिसंवाद, हस्तलिखित स्पर्धा आयोजित की गयी थी। कुल तेरह जिलोंने इन स्पर्धाओंमें हिस्सा लिया। क्रीडा स्पर्धाओंमें २७२ सैनिकोंने हिस्सा लिया। सांघिक स्पर्धामें १२६ संघ थे।

अध्ययन मंडल का उद्घाटन श्री नानासाहब गोरेने किया। प्रा. ब. वि. अकोलकर की अध्यक्षतामें शिक्षक सम्मेलन, श्री एस. एम. जोशी कि अध्यक्षतामें युवा सम्मेलन, और श्रीमती शकुंतलाताई परांजपे की अध्यक्षतामें 'महिला सम्मेलन' हुए। कुल ४६५ स्त्री-स्वयंसेविकाओंकी उपस्थिति लक्षणीय थी। इस रौप्य महोत्सव का उद्घाटन बॅ.नाथ पै ने किया। समापन ले. ज. शंकरराव थोरात के शुभ हाथों हुआ। महामानव बाबा आमटे, श्री अण्णासाहब सहस्त्रबुद्धे, सहित कई गण्यमान्य लोग इस समारोहमें उपस्थित थे।

इस रौप्य महोत्सवने सेवादल के कार्योंको फिरसे गति दी।

मानखूर्द

१९७२ में मुंबई के उपनगर मानखूर्द में दि. २८, २९ और ३० दिसंबर को 'आंतरभारती कुमार युवक मीलन' का समारोह सेवादल ने आयोजित किया। संगठन की वर्तमान स्थिति, उसका व्यवस्थापन, उसके कार्यक्रम तथा भविष्यकालीन योजना पर काफी विचारविमर्श हुआ।

मानखूर्दमें महाराष्ट्रसहित जम्मू-कश्मीर, राजस्थान, गुजरात, बंगाल, बिहार, मध्यप्रदेश, आंध्र, म्हैसूर, केरल इन राज्योंके कुल ४२२८ सैनिकोंका सहभाग था। अन्य राज्योंसे ३५० युवक आये थे।

मुंबई के महापौर श्री.रावजीभाई गणात्राने इस समारोह का उद्घाटन किया। अध्यक्ष श्री.एस.एम.जोशीजी थे।

कुल सात विशाल मंडपोंमें छोटे छोटे गुट बनाकर उपस्थित युवा-युवतियोंने वर्तमान दंगई स्थितिपर जानकारोंसे विचारविमर्श किया। २८ दिसंबर को युवक प्रेरणा दिन, २९ दिसंबर को 'आंतरभारती दिन' मनाया गया। साहसपूर्ण कार्य करनेवाले किशोरोंके सम्मान ने समारोह में चार चांद लगा दिया। रातमें जो मनोरंजन के कार्यक्रम होते थे, उसमें मानो पूरे भारतकी तसबीर उतरकर आती थी। 'आंतरभारती' ही इस देशको एक सूत्रमें जोडनेवाली सांस्कृतिक कडी है, इसका तीव्र भान इस समय कार्यकर्ताओंको हुआ। सेवादल के कार्योंकी कक्षा मानखुर्द समारोह के कारण कई गुना ज्यादह विस्तारित हुई।

सदस्यता समारोह – १९७४

सेवादल के संविधान में धीरे धीरे कालानुरूप परिवर्तन हो रहे थे। वह एक स्वयंसेवी संगठन है और उसकी स्वायत्तता अबाधित रहनी चाहिए इसका भान उसके नेताओंको था। उसकी अनुशासनबद्धता किसी एक चालकानुवर्ती संगठन जैसी नहीं थी। एक अनुशासनमें रहकर कोई भी सैनिक कार्यकर्ता अपने विचार या मत निर्भयतापूर्वक सेवादलमें प्रगट कर सकता था, आज भी कर सकता है। १९७० सेही सेवादलने नयी जनतांत्रिक पद्धतिका स्वीकार कर अपने संविधान में उचित परिवर्तन किये थे। नये संविधान के अनुसार कोईभी देशप्रेमी नागरिक या किशोर, किशोरी सेवादल का सैनिक सदस्य बन सकता है। ये सदस्य एक कार्यकारिणी का चुनाव करते हैं और कार्यकारिणी तथा सदस्य मिलकर अध्यक्ष का। अध्यक्ष के लिए जाति-पाँति, धर्म, प्रांत, भाषा आदिका कोई बंधन नहीं है। जनतांत्रिक ढंगसे कोईभी अध्यक्ष बन सकता है।

सदस्य बनानेके लिये स्वीकृति मिलनेपर नये संविधान के अनुसार अध्यक्ष और सचिव ये दो पद निर्माण किये गए। अबतक ये काम दलप्रमुख के जिम्मे रहा करते थे।

राष्ट्र सेवादल के पहले निर्वाचित अध्यक्ष बने श्री.यदुनाथ थत्ते और सचिव श्री.परीट गुरुजी। सेवादल के कार्यक्रमोंमें सदस्योंकी सहभागिता बढे

इसलिए एक सम्मेलन लेना तय हुआ। १९७४ में हडपसरमें सदस्योंका ऐसा एक सम्मेलन आयोजित किया गया। महाराष्ट्र से लगभग १२०० सदस्य इस सम्मेलनमें उपस्थित थे। विविध विषयोंपर के व्याख्यान, चर्चा और परिसंवादोंके साथ साथ संगठन के स्तरपर सेवादलमें क्या परिवर्तन होने चाहिए इसपर भी विचार किया गया।

ऐसी चर्चा जब कि पन्नालालजी सुराणा सेवादलके अध्यक्ष थे तब भी आयोजित की गयी थी। सेवादल के हर अध्यक्षने संगठन में जनतंत्र के मूल्योंकी पूर्णतः रक्षा की। कई बार उन्होंने बडी कडी टीका टिप्पणी का सामना किया पर कभी अपने अधिकारोंका उल्लंघन कर ज्यादतीसे काम नहीं किया।

१९९१ में सेवादलने अपना सुवर्ण महोत्सव मनाया। दलपत्रिका का एक संकल्प सम्मेलन विशेषांक प्रकाशित कर, सेवादलने यह निर्धार प्रगट किया कि सही मानेमें एक समाजवादी प्रबोधिनी का निर्माण करनाहि अब हमारा प्रधान लक्ष्य होना चाहिए। पुणेमें आयोजित विशाल समारोह में सेवादल के अध्यक्ष और नेताओंने यह निर्धार बार बार व्यक्त किया था। सम्मेलन कालमें एक कि.मी. लंबी सडक श्रमदानसे बनायी गयी।

सुवर्ण महोत्सव निमित्त जो निधी समिति बनाई गयी थी, उसके काम की प्रशंसा करनी चाहिए। श्री भाई वैद्यजीकी अध्यक्षतामें बनी इस समिति के कोषाध्यक्ष थे, श्री सुरेश टिळेकर और सचिव थे श्री मधु तळवळकर। समिति की यह विशेषता रही कि निधि इकट्ठा करनेके बहाने उसने लगभग पूरा महाराष्ट्र अपने पैरोंतले रौंद डाला। कुल ५० लाख रु. इकट्ठा करने थे। समितिने ६३,०८,२८१.१५ रुपये इकट्ठा किये और पाई पाईका हिसाब जनताके सामने रखा। किसीभी संगठन के लिये यह सर्वाधिक अभिमान की वस्तु हो सकती है।

स्वर्ण महोत्सव के बाद ढाई सालमें सेवादलने महाराष्ट्र, उत्तर प्रदेश तथा मध्य प्रदेश में कई शिविरोंका आयोजन किया। उसमेंसे लगभग २५ शिविर उत्तर भारत के विभिन्न स्थानोंपर लिये गए।

देशमें हालात ठीक नहीं थे। राजनीति और समाजनीतिमेंभी हैरतअंगेज परिवर्तन आ रहे थे। एक पार्टीका शासन टूटा। दलित राजनीतिके प्रभावसे क्षेत्रीय पार्टियाँ उभरीं। गठबंधन और दलबदलू राजनीतिका दौर चला। आंतकवादने देशमें अपनी जडें जमा लीं। कट्टरतावाद बढा। लायसन्स राज खतम्

हुआ पर गला-काट स्पर्धाने-उद्योग क्षेत्रको हिला दिया। बोफोर्स कांड, ऑपरेशन ब्लॅक थंडर, अडवानीकी रथयात्रा, जैन हवाला कांड, बाबरी मस्जिद का गिरना, मुंबई के बम विस्फोट, वाजपेयीकी लाहौर यात्रा, गुजरात में आया भूचाल ये और इन जैसी कई घटनाओंने देशको बुरी तरह झकझोर दिया।

सेवादल ने इन सारे उत्थान-पतनों के दौरमें उससे जो बन सकता था, किया।

संवाद-यात्रा

१९९२ की अप्रैलमें सेवादल के 'संवाद पथक'ने पंजाब का दौरा किया। उन्हें यह अनुभव हुआ कि सर्वसामान्य जनता किसीभी प्रकारकी आतंकवादी कारवाइयोंके पक्षमें है नहीं। वह अमन चाहती है, भाईचारा चाहती है। पंजाब की जनताने 'सेवादल-पथक' का हार्दिक स्वागत किया।

६ दिसंबर के अयोध्याकांडके बाद ऐसी 'संवाद-यात्रा' समविचारी संगठनोंसे मिलकर पूरे महाराष्ट्र में आयोजित की गयी।

आपद्ग्रस्तों की मदद

समाज और राष्ट्र पर आनेवाली कोई भी आपत्ति हो, सेवा दल के सैनिक बिना भूले, बिना चूके आपद्ग्रस्त स्त्री-पुरुषों की सहायता के लिए दौड पडे हैं। १९४३ में बंगाल में बडा भीषण अकाल पडा। आसमान से पानी की एक बूँद तक धरती पर नहीं उतरी थी। इन अकालग्रस्त स्त्री-पुरुषों और बच्चों को खाद्य-सामग्री, कपडा, दवाइयाँ पहुँचाने की आवश्यकता थी। सेवा दल के २०-२२ स्त्री-पुरुष कार्यकर्ता पूरे एक माह तक अकालग्रस्त इलाके में रहे, और राहत कार्य में उन्होंने पूरा सहयोग दिया।

१९४६ में मुंबई के बंदरगाह में भयानक विस्फोट हुआ। लगभग पाँच-सात कि.मी. के वर्गाकर में भयंकर अफरातफरी मच गई। कई बच्चे और स्त्री-पुरुष घायल हो गए। मुंबई के राष्ट्र सेवा दल के सैनिक इन घायलों की सहायता के लिए सबसे पहले वहाँ पहुँच गए। फिर महाराष्ट्र के विभिन्न क्षेत्रों से मदद लेकर अन्य सैनिक भी पहुँचे।

१९६५ में महाराष्ट्र के सोलापुर जिले में अकाल पडा। सेवा दल के सैनिकों ने दो माह तक (मांगी तालाब, ता. करमाळा, जि.सोलापुर) विभिन्न स्थानों के शिविरों का सफलतापूर्वक संचालन किया।

१९७२-७३-७४ के वर्ष तो महाराष्ट्र के लिए महाअकाल के वर्ष थे। इन तीन सालों में राष्ट्र सेवा दल ने खासकर कॉलेज के छात्रों के लिए भोजनालय चलाए। उन्हें जहाँ तक हो सके परीक्षा फीस भरने में मदद की। मुंबई के सेवा दल साथियों ने इस काम के लिए बहुत बडे पैमाने पर चंदा जुटाया था। १९७४ से १९९१ तक यह काम चलता रहा। एस.एस.सी. की परीक्षा में बैठनेवाले अकालपीडित छात्रों के लिए परीक्षा केंद्र के पास ही निवास, भोजन का प्रबंध किया गया।

१९८१ में मोरवी (गुजरात), १९८९ में बिहार, १९९३ में महाराष्ट्र, १९९४ में गया में आँधी-तूफान और भूकंप से हाहाकार मच गया। १९९९ में उडिसा में भयंकर तूफान आया और खेतों में दूरदूर तक समुंदर का खारा पानी भर गया। इनमें से हर एक स्थान पर सेवा दल के सैनिक मदद-कार्य के लिए उपस्थित थे।

खेतों में भरा हुआ पानी निकालने के लिए नाली खोदना, फिर से पानी खेतों में न घुसे इसलिए बाँध बाँधना, टूटे-फूटे मकानों की मरम्मत करना, नए मकान खडे करना, किसानों को सब्जी तथा चावल उगाने के लिए अच्छे बीज पहुँचना, स्कूलों में फर्निचर देना आदि कई मुश्किल काम सैनिकों ने तत्परतापूर्वक किए।

२००१ में गुजरात में भूकंप आया। कच्छ के यूसुफ मेहेरअली केंद्र के साथ मिलकर राष्ट्र सेवा दल सैनिकों ने तीन गावों में नए मकान बनवाने में किसानों की सहायता की। भद्रेश्वर मंदिर का तथा अन्य एक मंदिर का कलश टूट गया था। बडी सावधानी से उन भग्न कलशों को उतारकर वहाँ दुबारा नये कलशों की स्थापना की गई। गाँव की महिलाओं को बचत करने के उपाय बताएँ गए। किशोर-किशोरियों और अध्यापकों के लिए शिविरों का आयोजन किया गया।

२१ फरवरी-मार्च २००२ को गुजरात में जो घृणास्पद हिंसाचार हुआ तब भी हिंसाचारपीडित परिवारों को सहायता देने के लिए सेवा दल ने हाथ बढाया था। वहाँ की सर्वोदयवादी संस्थाओं को लगभग नगद एक लाख रुपयों की सहायता सेवा दल ने पहुँचाई और कई सैनिक राहत कार्य में हाथ बँटाने के लिए पहुँच गए।

बिहार में अकाल

बिहार के अकाल में भी सेवा दल सैनिकों ने अकालग्रस्तों की काफी मदद की। जाह्नवी थत्तेजी उस वक्त वहाँ मदद कार्य का आयोजन कर रही थी। कपडा, अनाज, दवाइयाँ आदि सामग्री इकट्ठा कर के उसका बँटवारा किया था। सदाकत आश्रम को मदद्कार्य का मुख्य केंद्र बनाया था।

किल्लारी भूचाल

३० सितंबर १९९३ को महाराष्ट्र के लातूर-उस्मानाबाद जिलेके लगभग सौ गांवोंमें भूचाल आया। जन-जीवन और माल-असबाब की काफी हानि हुई। खासकर स्कूली बच्चोंकी हालत बहुत ही दयनीय थी। न स्कूल, न किताबें, न शिक्षक, न अनाज-पानी। राष्ट्र सेवादल के कार्यकर्ताओंने १०३ गांवोंके २६००० छात्रोंको स्लेट, पेन्सिल, कॉपी, जॉमेट्री बॉक्स इत्यादि साहित्य तथा गर्म कपडे पहुंचाए। करीबन दो सौ शिक्षकों को घरेलू सामान दिया। स्कूल की इमारतें खडी करनेमें मदद की। स्कूलोंको ब्लॅकबोर्ड, टेबल, कुर्सी, अलमारी, पानी पीनेकी टंकी आदि सामान दिया। सेवादल के कई कार्यकर्ता समर्पित भावसे उस क्षेत्रमें लगभग छः माहतक रहे। भूचाल अचानक नहीं आता। उसके पीछे होनेवाले वैज्ञानिक कारणोंकी खोज आवश्यक थी। लोगोंके मनपर भूचालसंबंधी अंधश्रद्धाओंका प्रभाव भी काफी था। एक प्रबोधन अभियान चलाकर सेवादलने जनता तक भूचाल की वैज्ञानिक जानकारी पहुंचायी।

कई मकान तबाह हो गए थे। अनाथ बच्चोंकी तादाद काफी थी। इन बच्चें-बच्चियोंका जिम्मा कौन ले, यह सवाल था। सेवादलने सबसे पहले पहल की। उस्मानाबाद जिलेके नलदुर्ग गांवमें इन अनाथ बच्चों के लिए एक छात्रावास शुरू किया गया। वहांकी 'ज्ञानदीप कलोपासक मंडली'ने इस काममें पूरा सहयोग दिया। आज भी वह 'अपना घर' नामक छात्रावास अपना काम सुव्यवस्थित ढंगसे कर रहा है।

रचना के मोर्चे पर भी

सामाजिक पुनर्रचना के हर मोर्चे पर भी सेवा दल कार्यरत रहा। शिक्षा समाज के सबलीकरण का एक प्रमुख साधन है। मुंबई, पुणे, कोल्हापुर, सोलापुर, उस्मानाबाद, बीड, नांदेड, परभणी, हिंगोली, नासिक, नगर, धुळे,

जलगाँव आदि जिलों में कई प्राथमिक, माध्यमिक तथा उच्च माध्यमिक शालाओं का संचालन सेवादल के कार्यकर्ताओं ने सफलतापूर्वक किया है। इन स्कूलों के कारण गाँवों और शहरों का वातावरण स्वच्छ, समतापूर्ण और सौहार्द्र से संपन्न रहने में मदद हुई।

ग्रामीण विकास केंद्र

गांवों के यथोचित विकास के लिए कई गाँवों में ग्रामीण विकास केंद्र की स्थापना की गई। इन केंद्रों के सहारे रायगड, रत्नागिरी, सिंधुदुर्ग, पुणे, बीड, अहमदनगर, उस्मानाबाद आदि जिलों में खेतीसुधार, वनीकरण, जलसंधारण के कार्यक्रम सेवादल द्वारा लगातार चलाए गए। आज भी ये उपक्रम जारी हैं।

सहकारिता आंदोलन

'बिना सहकार, नहीं उद्धार' यह केवल सरकारी नारा नहीं था। गांधीजी के ग्रामस्वराज्य की कुंजी थी—सहकार। राष्ट्र सेवा दल ने विविध क्षेत्रों में सहकारिता के मानदंड प्रस्थापित किए। मुंबई में 'अपना बाजार' जैसी श्रेष्ठ संस्था का संचालन सेवा दल के श्री गजानन खातू करते रहे। कई गृह-निर्माण संस्थाओं का सफल संचालन, कर्ज आबंटन, व्यवस्थापन में सेवा दल के कार्यकर्ता अग्रस्थान पर रहे।

पुणे में एक साग-सब्जी सोसायटी की स्थापना हुई। सहकारी खेती के प्रयोग भी किए गए।

सोलापुर में भी सहकारी खेती के प्रयोगों को सफलता मिली। दारफळ में एक 'अनाज बैंक' खोला गया। जरूरत पडने पर वहाँ से गरीबों को अनाज वितरित किया जाता। एक महिला सहकारी औद्योगिक संस्था की स्थापना भी की गई। कोल्हापुर, उस्मानाबाद, हिंगोली आदि जिलों में सहकारी धानी मिलें चलाई गईं।

शिक्षा मंच

अध्यापक तथा कार्यकर्ताओं के लिए १२-१३ मई १९७६ को पुणे में एक शिक्षा मंच की स्थापना की गई। उद्देश्य था, शिक्षा का न्यायसंगत रूप

प्रस्थापित करना। उसके लिए प्राथमिक तथा माध्यमिक विद्यालय के पाठ्यक्रम, पाठ्यपुस्तकें, सांस्कृतिक कार्यक्रम, कार्यानुभव आदि की पुनर्रचना आवश्यक थी। पाठ्यपुस्तकों में कई द्वेषमूलक बातें तथा विषमतावादी विचारों का बोलबाला था। उन सब को हटाना और उनके स्थान पर नए समतामूलक विचारों की स्थापना करना, एक बहुत बडा काम था। सेवा दल ने शिक्षा मंच के माध्यम से इस काम का बीडा उठाया। श्री ग. वि. अकोलकर, प्रा. ग. प्र. प्रधान, यदुनाथ थत्ते, वासू देशपांडे, पन्नालाल सुराणा तथा अन्य कई अध्यापक कार्यकर्ताओं ने शिक्षामंच को एक व्यवस्थित रूप दिया। शिक्षा मंच के मातहत इतिहाससंबंधी पाठ्यपुस्तकों की गहन चिकित्सा की गई। पूरे महाराष्ट्र में तत्संबंधी चर्चाओं का आयोजन किया गया। शिक्षिकों के लिए शिबिरों की योजना की गई। शमा दलवाई, शैला सातपुते ने पुणे, कुर्डुवाडी, नगर, संगमनेर, नासिक, निफाड, औरंगाबाद, नांदेड आदि केंद्रों में माध्यमिक शिक्षकों के शिविर संपन्न किए।

मुझे एक बात का उल्लेख यहाँ करना आवश्यक लगता है। समाज सेवा के इन विभिन्न कार्यों को अनवरत रूप में करने की ताकत सेवा दल सैनिकों को कहाँ से और कैसी मिलती थी? सबसे पहली बात थी नेता-कार्यकर्ताओं का वैयक्तिक आचार। अत्यंत स्वच्छ और पारदर्शी व्यवहार करनेवाले इन नेताओं के वैयक्तिक आचारण का बहुत बडा प्रभाव सैनिकों पर पडता था।

दूसरी बात थी, जनता के साथ सहभागिता। हर काम में राष्ट्र सेवा दल जनता के सभी स्तरों के लोगों के साथ घुल-मिलकर काम करता था। समाज से उसकी तादात्मता इस कारण तुरंत प्रस्थापित हो जाती थी।

तीसरी बात थी, सार्वजनिक कार्यों में पाई–पाई का हिसाब रखने और समाज के सामने उसे प्रस्तुत करने की नैतिकता।

६७ साल की अपनी लम्बी जिंदगी में कभी किसी ने सेवा दल के कामों नें रुपए-पैसों की अफरातफरी भूलकर भी नहीं की।

इलाहाबाद

१९, २० फरवरी १९९४ को इलाहाबादमें 'राष्ट्र निर्माण अभियान सम्मेलन' संपन्न हुआ। लोगोंमें काफी उत्सुकता थी। सभी कार्यक्रमोंका

नियोजन बडी कुशलताके साथ किया था। श्री.पन्नालाल सुराणा की निगरानी में सेवादल के लगभग सभी ज्येष्ठ कार्यकर्ता इस सम्मेलन में उपस्थित थे। आचार्य नरेंद्र देव के गांवसे 'सेवादल-ज्योति' की दौड परीट गुरुजी के नेतृत्व मे शुरू हुई। ९ फरवरी को सैनिक इसे लेकर चले और १९ फरवरी को सुबह नियत समयपर वे सम्मेलन स्थलपर पहुंचे गए। रास्तेमें डॉ.राममनोहर लोहिया का गांव अकबरपुर पडता था। वहाँ जाकर सैनिकोंने समाजवाद के इस सूरमा सिपाही की स्मृति जगाई। गाँव गाँव में सेवादल का संदेश पहुंचाया।

सम्मेलन का उद्घाटन बिहार के पूर्व मुख्यमंत्री श्री राम सुंदरदास तथा सांसद श्री. जॉर्ज फर्नांडिस ने किया। जूझारू पत्रकार मणीमाला सम्मेलन का एक मुख्य आकर्षण थी। सर्वश्री सुरेंद्र मोहन, प्रा.मधु दंडवते, श्री.रवि राय, प्रा.सदानंद वर्दे, प्रा.ग.प्र.प्रधान, श्री.भाई वैद्य, श्री.पन्नालाल सुराणा, श्री.बा.य.परीटगुरुजी उपस्थित थे।

सेवादल की अब उत्तर भारतमें काफी चर्चा थी। धीरे धीरे उसके कामोंके प्रति लोगोंमें सम्मान बढता जा रहा था। वे यह महसूस करनेभी लगे थे कि ऐसे किसी युवा संगठन की समाज को जरूरत है, जो सभी वर्गों और वर्णोंको एक सूत्रमें बांध सके। सेवादल के मैदानी और बौद्धिक कार्यक्रमोंके प्रति भी युवावर्गमें एक प्रकारकी उत्सुकता थी।

किसी समय सेवादल के पास समाजप्रबोधन करनेवाले अध्ययनशील कार्यकर्ताओंकी एक फौज थी। आज वह नहीं है। उत्तरप्रदेश जैसे विशाल राजमें जनसंपर्क की दृष्टिसे अध्येताओंकी यह कमी जरूर खटकती रही। फिर भी कार्यकर्ताओंने मैदान नहीं छोडा। अपनी ताकतभर वे इस प्रबोधन के कार्य को निभाते रहे।

युवा संकल्प अधिवेशन

१०, ११ जून २००० को सेवादल ने चालीसगाव में महाराष्ट्र व्यापी युवा संकल्प अधिवेशन आयोजित किया अध्यक्ष थे श्री.प्रकाश कांबळे।

युवाओंने अपना एक जाहिरनामा तैयार किया था, जिसमें उन्होंने विकास, शहरीकरण, जमीनसुधार, शिक्षा, युवा-बेरोजगारी, विज्ञान और तंत्रज्ञान, राजनीति, युद्ध और शस्त्रस्पर्धा पर अपने विचार तथा मांगें स्पष्ट रूपमें रखी थीं।

संघर्ष के मोर्चे पर

गोवा मुक्ति संग्राम

ब्रिटिशोंके शिकंजेसे भारत आजाद हुवा, पर भारत के ही गोवा, दिव, दमणपर पुर्तुगाली लोगोंका राज था। वे जनतापर हर प्रकारका जोर-जुल्म करते थे। वहांकी निरीह जनता जहाँतक बने इस जुल्मका मुकाबला करती आ रही थी। प्रख्यात समाजवादी नेता डॉ. राममनोहर लोहिया १९४६ में अपने मित्र डॉ. मेनेंझिस से मिलने गोवा गए। मडगांव के अपने भाषण में उन्होंने कहा कि 'अंग्रेजोंके बाद अब पुर्तुगालियोंको भी यह देश छोडकर चले जाना चाहिए।'

इस कथन का परिणाम डॉ. लोहिया को भुगतना पडा। उन्हें पकडकर पुर्तगाली पुलिसने गोवा से बाहर कर दिया। पर वे कब रुकनेवाले थे? उन्होने ऐलान किया कि मैं ३ माह के बाद फिर गोवा आऊंगा।

२९ सितंबर को वे गोवा में दाखिल हो गए। एक सभा लेकर उन्होंने पुर्तुगाली सत्ता के खिलाफ जंग छेड दी। सरकारने उन्हे पकडकर आग्वाद के किलेमें रखा। बडी कठोर यातनाएं दीं। अंत में ९ अक्तूबर को उन्हें बेलगाँव की सरहद पर लाकर छोड दिया गया।

जंग शुरू

अब पुर्तुगाली सरकार के खिलाफ खुली जंग शुरू हो गयी। २३ जनवरी १९५२ को समाजवादी नेता पीटर अल्वारीस ने मुंबई में एक मिटिंग बुलाई। उपस्थित कार्यकर्ताओंने विचार विमर्श के बाद यह तय किया कि पुर्तुगाली सरकार के विरुद्ध सशस्त्र आंदोलन भी करेंगे और सत्याग्रह भी।

राष्ट्र सेवादल के नेता श्री. नानासाहब गोरे ने यह तय किया कि वे अब इस आंदोलनमें उतरेंगे। १९३०, ३२ और ४२ के आंदोलनों का उन्हें अनुभव था। पुणेमें एक 'गोवा विमोचन सहायक समिति' की स्थापना हुई। नानासाहब ने पूरे महाराष्ट्रमें घूम घूमकर सत्याग्रह के मार्ग से आंदोलन करना कैसे ठीक होगा, यह जनताको समझा दिया। उन्हें सर्वत्र समर्थन मिलता गया और देखते देखते सैकडों सेवादल कार्यकर्ता इस आंदोलन के साथ जुड गए। स्वतंत्र भारतमें

गांधीजी के अहिंसक मार्गसे भारतकेही एक प्रांतकी मुक्ति का आंदोलन खडा हो रहा था।

नानासाहब के साथ वयोवृद्ध नेता सेनापति बापट भी थे। १८ मई १९५५ को उनके दलने गोवा की सरहद पार की। उनके साथ कुल ५४ सत्याग्रही थे। इन सबको पकडकर बहुत बुरी तरह पीटा गया। नानासाहब को इतनी मार पडी कि उन्हें खून की उल्टियां होने लगीं। लूंजपूंज स्थितिमें इन सभी को भारत की सरहद पर छोडा गया।

इधर सत्याग्रहियोंकी पहली टुकडी को जबरदस्त मारपीट होने की बात सर्वत्र फैल चुकी थी। पर शेष सत्याग्रहियोंपर उसका कोई परिणाम नहीं हुआ। दूसरी टुकडी बडे उत्साह के साथ श्री. शिरुभाऊ लिमये के नेतृत्व में चल पडी, जिसमें राष्ट्र सेवादल के वर्तमान अध्यक्ष श्री. भाई वैद्य, बबन खरसाडे, सिंधू चौधरी इत्यादि थे। ७१ लोगोंकी इस टुकडी ने २८ मई १९५५ को लोंढा के रास्ते गोवा में प्रवेश किया। उन्हें भी पुर्तुगाली पुलिसने बहुत बुरी तरह पीटा। शिरुभाऊ की तो हड्डी पसली तोड दी गयी। उन्हें जेलमें ठूसा गया। बाकी सत्याग्रहियोंको जानवरों जैसी मार पडी। इनमें अधिकांश सत्याग्रही सेवादल के सैनिक थे।

आंदोलन रुका नहीं। तेजीसे परवान चढता गया। अब सारे भारत से युवकोंके झूंड आंदोलन में हिस्सा लेने के लिए आने लगे। लगभग सभी राजनीतिक पार्टियोंके लोग भी शामिल हो गए। आंदोलन में कई युवकोंकी बलि चढ गयी। १५ अगस्त १९५५ को प्रचंड सामूहिक सत्याग्रह हुआ। उसपर पुर्तुगाली सैनिकोंने गोलियां चलाईं।

बेलगाँव से प्रा. मधु दंडवतेजी के नेतृत्व में जो सत्याग्रह टुकडी निकली उसमें सेवादल सैनिक चंद्रकांत बोराटे थे, जो बादमें बडे फिल्म स्टार बने। उन्होंने लिखा कि 'धुआँधार बरसते पानी में हम लोग चल रहे थे। मेरे साथ थे निलू फुले, दादा बोरकर, शं. बा. शिंदे, माळवदकर वगैरा। बेलगांव स्टेशनपरही हमें पता चला कि मोरारजी की सरकारने बस, ट्रक या अन्य वाहनोंपर बंदी लादकर सत्याग्रह को रोकनेकी कोशिश की है। अब एक ही रास्ता था – बेलगाँव से सावंतवाडी तक का ७५ मिल का फासला पैदल तय करें। श्री. दंडवतेजी ने वहाँ उपस्थित लगभग डेढ हजार सत्याग्रहियोंसे पूछा 'साथियो, जायेंगे या रुकेंगे?' एक स्वर में सभी ने कहा 'जायेंगे!'

बोराटे उत्तम गायक थे। उन्होंने सेवादल के समरगीत गाना शुरू किया। निलू फुले आदि साथ हो लिये। ७५ मील का फासला इस टुकडी ने गीत गाते गाते पार कर दिया! गोवा में दमनचक्र जारी था। नानासाहब गोरे और शिरुभाऊ लिमये पर लष्कर के कोर्ट में मुकदमा चला। उन्हें दस दस साल की सजा हुई। श्री. मधु लिमये, त्रिदीब चौधरी, जगन्नाथराव जोशी को भी सजाएं हुईं।

अंततः भारत सरकार ने १८ दिसंबर १९६१ को गोवामें सेना भेजकर उसे आजाद किया।

गोवा आंदोलन में सेवादल अपनी पूरी ताकत के साथ उतरा था। उसके लगभग सभी ज्येष्ठ नेताओंने सत्याग्रह में हिस्सा लिया। युवक भी बहुत बडी संख्या में आंदोलन में शामिल हुए। इसका श्रेय श्री. भाई वैद्य को देना होगा। उन्होने बडी कुशलता के साथ आंदोलन को गतिमान रखा था। सेवादल की साख इस कारण काफी बढी।

हमें यह ध्यान में रखना चाहिए कि गोवा मुक्ति संग्राम, या संयुक्त महाराष्ट्र के आंदोलन में सेवादल एक संस्था के रूपमें हिस्सा नहीं ले रहा था। पर उसके अधिकांश कार्यकर्ता और सैनिक स्वयंस्फूर्तिसे इन आंदोलनोंमें हिस्सा ले रहे थे।

हैदराबाद मुक्ति आंदोलन

१९४७ में जब भारत को आजादी हासिल हुई तब भारत में कई संस्थानिकों के संस्थान मौजूद थे। उनमें से बहुत सारे संस्थान बाद में भारतीय प्रजातंत्र में शामिल हुए, लेकिन हैदराबाद संस्थान के अधिपति निजाम ने इसको नकारा था। वे हैदराबाद संस्थान को स्वतंत्र रखता चाहते थे। बाद में निजाम ने पाकिस्तान के साथ भी गुप्त वार्ता शुरू की थी। हैदराबाद संस्थान को भारतीय प्रजातंत्र में शामिल करने के लिए जो आंदोलन हुआ, उसमें गंगाप्रसाद अग्रवाल, चंद्रकांत पाटील, प्रभाकर वाईकर, श्री तथा सौ.विनायकराव चारठाणकर, द.रा.मेढेकर, दत्ता शिऊरकर, काशिनाथ नावंदर, बद्रीनारायणजी, नरहर कुरुंदकर तथा विश्वनाथ कोळगे इन सेवा दल सैनिकों ने सक्रिय भागीदारी की।

मई १९४६ में नांदेड में जो उस वक्त हैदराबाद संस्थान में शामिल था, सेवा दल का इंटर प्रॉविन्शियल कैंप हुआ था। उसमें सेवा दल के सभी शीर्षस्थ नेता मार्गदर्शन के लिए उपस्थित थे।

१९४७ में हैदराबाद स्टेट कॉंग्रेस के अधिवेशन में ३०० से ४०० सेवा दल सैनिकों ने स्वयंसेवक के नाते हिस्सा लिया। अवकाश प्राप्त जिला न्यायाधीश एस.एम.मिसोळकर और विजयेंद्र काबराजी के नेतृत्वमें कई सेवा दल सैनिकों ने हैदराबाद मुक्ति आंदोलन में हिस्सा लिया। पिसोळकरजी को तो दो साल की सजा भी सुनाई गई थी।

भूदान पथक

गांधीजी की हत्या के बाद कुछ काल तक सारा वातावरण बिल्कुल सुन्न था। पर विनोबा जैसे ऋषि उस अंधेरेमेंभी प्रकाश की किरण खोज रहे थे। लगभग दो पौने दो साल तक वे पूरे देश में घूमते रहे। १९५१ में तेलंगना की यात्रा में पोचमपल्ली गाँव में उन्हें सौ एकड जमीन दान में मिली। उनके लिए मानो यह ईश्वरी संकेत था। अगले ७० दिनों में उन्हें लगभग बारह हजार एकड जमीन मिली। और उन्हें राह मिल गयी। विनोबा ने कहा, 'गांधीजी के निर्वाण के बाद अहिंसा के प्रवेश के लिए मैं रास्ता खोज रहा था। भूदान-यज्ञ के रूप में मुझे अहिंसा का साक्षात्कार हुआ।'

भूदान-यज्ञ का आंदोलन धीरे धीरे पूरे देश में फैलता गया। जयप्रकाशजी के मन में इस आंदोलन संबंधी श्रद्धा जगी और उन्होंने जीवनदान का निश्चय जाहिर किया। सन १९५२ के चुनाव में समाजवादी पार्टी बहुत बुरी तरह हारी थी पर सेवादल पर इस हार का वैसे कुछ प्रभाव नहीं पडा। लेकिन जयप्रकाशजी का समाजवादी पार्टी से हटना अवश्य ही कई लोगोंको बेचैन कर गया।

भूदान आंदोलन और विनोबा से प्रभावित कई कार्यकर्ता उनके साथ जुड गए। राष्ट्र सेवादल के भी कई कार्यकर्ताओंने यह तय किया कि वे भूदान की पदयात्राओं में शामिल होंगे।

श्री. अण्णासाहब सहस्रबुद्धे सेवादल के ज्येष्ठ मार्गदर्शक थे। उनकी उमर के इकसठ साल पूरे हुए थे। इस निमित्त पुणे जिले के शिरूर तहसिल में एक पदयात्रा का आयोजन किया गया।

भूदान के लिए एक साल

१९५४ में हडपसर में सेवादल का श्रमशिविर लगा था। श्री. जयप्रकाश नारायण इस शिविर के मुख्य मेहमान थे। अपने भाषण में उन्होंने सेवादल सैनिकोंसे यह अपील की कि वे भूदान आंदोलन के लिए कम से कम एक साल दें। विनोबाजी ने भी संदेश भेजा, 'श्रमदान के कार्य को भूदान से जोड दो।'

लगभग ५० कायकर्ताओंने अपना नाम दर्ज करवाया। १८ दिसंबर १९५४ को इन समयदानी कार्यकर्ताओंका एक दिवसीय शिविर विरार में हुआ। श्री. शंकरराव देव, आप्पासाहब पटवर्धन, रावसाहब पटवर्धन, एस. एम. जोशी और भाऊसाहेब रानडे ने भूदान कार्य की रूपरेखा इन कार्यकर्ताओंको समझा दी।

समाजवाद के लिए सहायक

सेवादल ने विनोबाजी के समस्त सर्वोदयवादी सिद्धांतोंका स्वीकार कर लिया था, ऐसा नहीं। पर भूदान आंदोलन समाजवादी आंदोलन के लिए सहायक है, इसका उसे विश्वास था। वह यह मानता था कि इस आंदोलन के कारण समाजमें समता और बंधुभाव बढेगा। जमीन के असमान वितरण का सवाल हल होने में मदद होगी। समाजवादी मूल्योंकी स्थापना के लिए जगह मिलेगी।

प्रारंभ में श्री. एस. एम. जोशीने इस पथक का नेतृत्व किया। पहले ३-४ माहतक वे लगातार पथक के साथ घूमते रहे। श्री. रावसाहब पटवर्धन, श्री. भाऊसाहब रानडे, डॉ. अंबिके, श्री. नाना डेंगळे ये समय समय पर उपस्थित रहते।

पथक की कार्यपद्धति

भूदान-पथक की एक निश्चित कार्यपद्धति थी। २४ दिसंबर १९५४ में सातारा जिलेके खटाव नामक गाँव से इस पथक ने अपना काम शुरू किया। पथक में लगभग ४० सैनिक थे। सुबह पांच बजे पदयात्रा शुरू होती। गांव के मंदिर या धरमशाला में मुकाम रहता। छोटे बच्चे बडे उत्साह से पथक का स्वागत करते। गाँववालों में भी विनोबा के प्रति आदर की भावना थी, इसलिए स्थान स्थानपर लोग उत्सुकता से इकट्ठा होते। हर घर में भूदान संबंधी पुस्तकें,

फोटोग्राफ तथा अन्य प्रचार सामग्री पहुंचाने का काम गांव के सब बच्चे या युवक करते। पथक के सदस्य इन बच्चोंको खेल वगैरा सिखाते, कहानियां कहते। स्त्रियों की स्वतंत्र सभाएं होतीं। रात में पूरे गांव की सभा में गांव की ही समस्याओंकी चर्चा कर कुछ निर्णय लिये जाते। खासकर हरिजनोंके प्रश्नोंपर हरिजनों के मुहल्लेमें जाकर चर्चा होती। कार्यकर्ता यह कोशिश करते कि सभी सभाओंमें स्त्रियोंकी उपस्थिति रहे। सेवादल के गीत दिनभर गूंजते रहते और गाँववाले उन्हें बेहद पसंद भी करते।

उपलब्धि

३० दिसंबर १९५५ में रत्नागिरी में इस पदयात्रा की समाप्ति हुई। एक पूरा साल कार्यकर्ताओंने इस काम के लिए दिया था। सालमें इस पथक ने कुल ९ जिलोंके ४८१ गांवोंको भेंट दी। ५१९ सभाओंका आयोजन किया। लगभग दो लाख से अधिक लोगोंतक भूदानका संदेश पहुंचाया। २१८६ मील की यात्रा की। इनमेंसे केवल ३१८ मील की यात्रा अपरिहार्य कारणोंसे वाहनोंमें की गयी। कुल मिलाकर २४७ स्त्री-पुरुष इस यात्रा में शामिल हुए। ६७३ दाताओंने लगभग १५४८ एकड जमीन दान में दी। ८०३२ रुपये का साधन दान मिला। २४९ ग्रामदान मिले और २० लोगोंने संपत्तिदानकी घोषणा की। पथक जहाँ जहाँ भी रुकता वहाँ वहाँ श्रमदान कर संडास सफाई, रास्ते तयार करना, छोटे छोटे बांध बांधना, खेतों के मेंड ठीक करना आदी काम किया करता था।

इस पथक में देवराम अंभुरे, राम कडेकर, नाना तारी, बाळ जाधव पूरे सालभर रहे। अन्य कार्यकर्ता अपने समय के अनुसार शामिल होते रहे।

१० जनवरी को मुंबई में इन सारे कार्यकर्ताओंका श्री. रावसाहब पटवर्धनजी के हाथों 'गीता-प्रवचन' की पुस्तक और खादी का वस्त्र देकर सम्मान किया गया। विशेष बात यह थी कि इस तरह की छोटी-बडी यात्राएं महाराष्ट्र के अन्य जिलोंमें भी आयोजित की गयीं।

भूदान आंदोलन के कारण देश के ग्रामीण इलाकों में उमंग और उत्साह का एक नया वातावरण पैदा हुआ था। कानून जो काम इतने वर्षोंतक नहीं कर सका, वह काम सद्भावना कर रही थी। गांधीजी के हृदयपरिवर्तन के सिद्धांत का नूतन प्रत्यय कार्यकर्ताओंको और

जनताकोभी मिल रहा था। यह कोई कम उपलब्धि नहीं थी। हमें एक बात याद रखनी चाहिए। विनोबाजी के लिए 'भूदान' कभी आंदोलन नहीं था। वे उसे 'यज्ञ' मानते थे, एक 'धर्मविचार' समझते थे। उनकी भूमिका 'सर्वेषाम् अविरोधेन' काम करनेकी थी। पर सामाजिक समता के लिए हर प्रश्नके साथ जूझनेवाले सेवादल के लिए भूदान को एक 'धार्मिक कार्य' मानकर प्रचार करना संभव नहीं था। वह उसे सामाजिक परिवर्तन का एक नया प्रयोग मानता था और उसी भावना से उसने विनोबा के इस कार्य की मदद की थी। श्री. भाऊसाहब रानडेजी सहित सेवादल के लगभग सभी ज्येष्ठ कार्यकर्ता किसी न किसी रूपमें भूदान आंदोलनके साथ जुडते रहे।

भूदान आंदोलन संबंधी अंतर्विरोधोंसे समाजवादी परिचित नहीं थे ऐसी बात नहीं। समाजवादियोंके ज्येष्ठ नेता आचार्य नरेंद्र देव प्रारंभ से यह कह रहे थे कि 'भूदान आंदोलन की कुछ मर्यादाएं हैं। यह आमूल परिवर्तन लानेवाला क्रांतिकारक आंदोलन है, इस भ्रममें कोई न रहे तो अच्छा।'

पर समाजवादी पार्टी के और सेवादल के कार्यकर्ताओंके मन में विनोबाजी के प्रति अपार आदर था और वे यह मानते थे कि भूमिहिनोंकी समस्या हल करनेकी कोई सर्वमान्य राह इस आंदोलन से निकल कर आ सकेगी। अगर भूदान में प्राप्त जमीन का ठीक ठाक वितरण हो जाता तो शायद इस समस्या का जवाब भी मिल जाता।

संयुक्त महाराष्ट्र आंदोलन

भाषानिहाय प्रांतरचना का विचार १९१७ में श्री. पट्टाभि सितारामैया ने रखा था। तब किसीने उसकी ओर ध्यान नहीं दिया। पर धीरे धीरे यह विचार जोर पकडता गया। १९१९ में लोकमान्य तिलक ने तथा १९२० के नागपुर अधिवेशनमें गांधीजी ने भी इसे समर्थन दिया। १९३० में सविनय कानूनभंग के आंदोलन के समयसे काँग्रेसमेंभी भाषानिहाय गुटोंका प्राबल्य था।

२८ जनवरी १९४० को मुंबई में 'महाराष्ट्र सभा' की स्थापना हुई। २४ मई १९४० को 'महाराष्ट्र एकता परिषद' की स्थापना होकर म. म. दत्तो वामन पोतदार उसके स्वागताध्यक्ष बने। संयुक्त महाराष्ट्र परिषद यह नाम १९४० से प्रचार में रहा। इस परिषदमें विविध पक्षों के नेता थे।

पंडित नेहरू भाषानिहाय प्रांतरचना के अनुकूल नहीं थे। उन्हे लगता था कि देश के सामने क्राफी अहम सवाल है। उसकी तुलनामें प्रांतरचना की बात कोई माने नहीं रखती। लेकिन अलग अलग प्रांतोंने भाषा के आधार पर अपने स्वतंत्र अस्तित्व की मांग को जारी रखा। अंततः भाषानिहाय प्रांतोंकी पुनर्रचना करनेके लिए केन्द्र सरकारने फाजलअली, कुंझरू और पणिक्कर की एक समिति नियुक्त की। प्रारंभमें संयुक्त महाराष्ट्र आंदोलन का नेतृत्व कांग्रेसके नेता श्री. शंकरराव देव करते थे।

आगे चलकर जब संयुक्त समितिकी स्थापना हुई तो श्री. एस. एम. जोशी उसके मुख्य सचिव नियुक्त किये गए। एस. एम. के आंदोलन में आते ही समाजवादी विचारधारा के कई युवक इस आंदोलन के साथ जुड गए। एस. एम. की भूमिका स्पष्ट थी, 'भाषानिहाय राज्योंकी पुनर्रचना भारतीय जनतंत्र के विघटन के लिए नहीं, उसके सबलीकरण के लिए है। जनतंत्र में राज कारोबार जनता की भाषामें होना चाहिए। वर्तमान मुंबई राज्यकी विधानसभामें गुजराती, मराठी और कन्नड इन तीन भाषाओंके प्रतिनिधि हैं। इसलिए सारा कारोबार अंग्रेजी में चलता है। अगर संयुक्त महाराष्ट्र की निर्मिति हुई तो सारा कारोबार मराठी भाषामें होगा और अंग्रेजी न जाननेवाला किसान प्रतिनिधि भी अपनी बात स्पष्टता से रख सकेगा।... हमारा गुजराती या कन्नड भाषाभाषियोंके साथ कोई संघर्ष नहीं। हम यह चाहते हैं कि इन तीनों राज्योंका कारोबार यहां की जनता की भाषामें चले। तभी जनमानस का प्रतिबिंब राज्य कारोबारमें दिखाई देगा और भारतीय जनतंत्र अधिक मजबूत बनेगा, उसकी एकात्मता सुदृढ बनेगी।'

सामाजिक समता के लिए संघर्ष

संयुक्त महाराष्ट्र का आंदोलन केवल एक भाषा के राज्य की रचना के लिए नहीं था। बहुसंख्य मराठी समाज सत्ता से दूर था और कुछ उच्चवर्णीय तथा अमीर लोगों के हाथों में सारी सत्ता केन्द्रीत हो चुकी थी। एक दृष्टिसे यह आंदोलन उन बहुसंख्य सत्तावंचित लोगोंको फिरसे उनका हक दिलाने के लिए भी था। मराठा समाज ने इसीलिए दिल खोलकर इस आंदोलन में समिति की मदद की।

असीम अत्याचार

पर समिति और जनता को इस आंदोलन में बहुत ही कडा संघर्ष करना पडा। मोरारजी सरकार हर कीमतपर आंदोलन को दबा देना चाहती थी। सारे महाराष्ट्र में सत्याग्रह हो रहे थे। इनमें सेवादल सैनिकोंका बडा उत्साही सहयोग था। सरकारी आंकडे यह बताते हैं कि तब लगभग २३४३ सत्याग्रहियोंको पकडा गया। इनमें सेवादलके कुछ ज्येष्ठ कार्यकर्ताभी थे। १६ जनवरी १९५६ को केन्द्र सरकार ने मुंबई को शेष महाराष्ट्र से अलग करते हुए उसे केन्द्रशासित जाहिर किया। मुंबईमें तूफान मच गया। कामगार मैदानपर विशाल सभा हुई। सरकारने उस सभापर गोली चलाई। कई कार्यकर्ताओंकी और नागरिकोंकी जानें गयीं। अत्याचार की यह हद थी। पर सरकार रुकी नहीं। उसने कई नेताओं को जेलमें ठूंस दिया।

२१ जनवरी १९५६ को संतप्त जनताने दुकानोंको लूटना शुरू किया तो एस. एम. ने उन्हें रोका। एक पुलिस इन्स्पेक्टर अंडवानी जनता की गिरप्त में आ गया। उसकी बलि चढने ही वाली थी, पर एस. एम. उसके सामने ढाल बनकर खडे हो गए। संतप्त लोगोंसे उन्होंने कहा, 'अगर अडवानी को मारना है तो पहले मुझे मारो।' एस. एम. खुद अडवानी को पुलिस व्हॅनतक ले गए। अडवानी की जान बच गयी।

एस. एम. के इस साहसकी सारे देशने मुक्त कंठ से प्रशंसा की। श्री. जयप्रकाशजी ने तार भेजकर उनका अभिनंदन किया। सेवादल के हर सैनिक का मस्तक उस दिन अभिमान और गर्वसे ऊंचा उठा हुआ था। एक आंदोलन में कितनी पवित्रता, कितनी मर्यादा और कैसी नीतिमत्ता चाहिए इसका सर्वोत्तम उदाहरण एस. एम. ने दुनियाके सामने रखा था। अंततः काफी उथलपुथल के बाद १ मई १९६० को संसद के कानून के अनुसार मुंबईसहित महाराष्ट्र राज की निर्मिति हुई।

इस बीच १९५७ में विधानसभाके चुनाव हुए। फिर पंडित जवाहरलाल नेहरू प्रतापगडपर शिवाजी महाराज के पूर्णाकृति बुत का अनावरण करने पधारे, मुंबई कार्पोरेशन के भी चुनाव हुए। इन सभी कामोंमें सेवादल के सैनिकोंकी बहुत बडी संख्यामें उपस्थिति रही।

विशेषतः श्री एस. एम. जोशीजी की इस सारे संघर्षमें जो भूमिका रही वह सेवादल और समाजवादी विचार के लिए अत्यधिक उपयुक्त सिद्ध हुई।

श्री सुरेंद्रनाथ त्रिवेदीने एस. एम. के नेतृत्व के बारे में यह कहा था, "His fight was for a Principle against injustice, arbitrariness and Not the Power." किसी भी सामाजिक या राजनीतिक संघर्ष में नेता की भूमिका कैसी हो, इसका आदर्श उस समय श्री एस. एम. जोशीजीने पूरे भारत के सामने रखा था।

नामांतर आंदोलन

१९७६ में मराठवाडा विद्यापीठ को डॉ. बाबासाहब आंबेडकरजी का नाम दिया जाय इसलिए, कुछ युवा संगठनोंने आंदोलन छेडा। मराठवाडा विद्यापीठ की कार्यकारिणीने सरकार के पास वैसा प्रस्ताव भेजा। दो सालके बाद महाराष्ट्र विधानसभामें नामांतर का प्रस्ताव सर्वसम्मतिसे मंजूर हुआ। पर मराठवाडा में उसकी बडी तीव्र प्रतिक्रिया हुई। कई जगह दलितोंकी बस्तियोंपर हमले हुए। कइयोंके झोपडे जला दिए गए। श्री. एस. एम. जोशी उस समय महाराष्ट्र जनता पार्टी के अध्यक्ष थे। विधानसभामें जो प्रस्ताव पारित हुआ उसे मराठवाडाकी जनता को समझा देना जरूरी था। श्री. पन्नालाल सुराणाजी के साथ मराठवाडा का दौरा किया। पर माहौल बेहद गरम था। उदगीर की सभा में नामांतर विरोधियोंने एस. एम. को चप्पलोंका हार पहनाया। पर शांति के सागर एस. एम. विचलित नहीं हुए। इस हादसे के बावजूद उन्होंने सभा को अपनी भूमिका समझा दी। ६ दिसंबर १९७९ को औरंगाबादमें हुए सत्याग्रह में और उसके पहले के 'लाँगमार्च' में सेवादल शामिल था।

आरक्षण के पक्ष में

अनुसूचित जातियों के लिए आरक्षित जगहों को लेकर १९८० में गुजरात में असंतोष फैला। सेवादल एक संस्था के रूप में सदैव आरक्षण के पक्ष में था। सेवादल के तब के एक महामंत्री डॉ. अरुण लिमये ने आरक्षण के सवालपर एक किताब लिखी और विरोधियोंके सारे आक्षेपोंका उसमें तर्कसम्मत जवाब दिया।

मंडल आयोग को समर्थन

१९९० में तत्कालिन राष्ट्रीय मोर्चा सरकारने मंडल आयोग की सूचना के अनुसार केन्द्रीय सरकारी नौकरियोंमें पिछडी हुई जातियोंके लिए २७%

स्थान आरक्षित रखनेका निर्णय लिया। इस निर्णय के खिलाफ उत्तरभारत, मध्य प्रदेश, गुजरात और अन्य राज्योंमें बलवे हुए। स्वार्थी और दकियानुस लोगोंने कई हिंसात्मक वारदातें कीं। पर सेवादलने मंडल आयोग के पक्ष में पूरे महाराष्ट्र में ढाई सौ से ज्यादह 'समता शिविरों'का आयोजन कर जनजागृतिका कार्य किया। १८८९-९० का साल महात्मा जोतिबा फुले स्मृतिशताब्दी और पू. बाबासाहब आंबेडकरजीके जन्मशताब्दी का वर्ष था।

वंशद्वेषविरोधी अभियान

देशमें या देशके बाहर जहाँ भी कहीं मनुष्य जातिपर किसी आचार-विचार या सत्ता का हमला होता, सेवादल उस हमलेका अपनी ताकत के अनुसार जवाब अवश्य देता। दक्षिण अफ्रीकामें अभी भी वंशभेद का माहौल है। काले रंग की जनता को उनके न्याय्य अधिकार नहीं मिलते। उनपर पशुओंकी तरह जुल्म ढाया जाता। अस्सी प्रतिशत से अधिक होनेवाली वहांकी, अश्वेत जनता को किसी प्रकार के राजनीतिक अधिकार थे नहीं। विषमता का यह गढ तोडनेके लिए १९७२ से वहांकी जनता डॉ. मंडेला के नेतृत्व में संघर्ष कर रही थी। डॉ. मंडेला को १९६२ से ही जेलमें डाला गया था।

राष्ट्र सेवा दल ने १९८६ में मुंबई में एक परिषद लेकर दक्षिण अफ्रिकाकी इस वंशद्वेषी कृतिका घोर निषेध किया। सेवादल ने डॉ. मु. ब. शहा द्वारा इस विषयपर लिखित एक पुस्तिका प्रकाशित की, स्कूलों और कालिजोंमें जाकर सेवादल कार्यकर्ताओंने डॉ. नेल्सन मंडेला को रिहा करने और नस्लवाद को समाप्त करनेकी मांग को समर्थन प्राप्त किया। तब के सेवा दल अध्यक्ष पन्नालालजी सुराणाने इस विषयपर अच्छी अगुवाई की।

कश्मीर संवाद पथक

१९८९ में कश्मीर घाटी में दहशतवादी कार्रवाइयोंका जोर बहुत बढा था। घाटी में रहनेवाले कश्मीरी पंडितोंने बहुत बडी संख्या में स्थलांतर किया। जम्मु-कश्मीर मुक्ति संगठन और अन्य दहशतवादी गुट जानबूझकर हिंदुओंपर अत्याचार कर रहे हैं, ऐसा धुआँधार प्रचार भाजपा कर रही थी। यह जानना जरूरी था कि सच क्या है? श्री. भाई वैद्य, डॉ. ना. य. डोळे, डॉ. वीणा सुराणा, नूरा शेख, जगन फडणीस और अरुणा तिवारी इनका एक

दल एस. एम. जोशीजीके दूसरे स्मृतिदिन के अवसरपर कश्मीर के लिए रवाना हुआ। यह दल कुछ दिन जम्मू में रहा। वहाँकी छावनियोंमें रहनेवाले पंडित स्त्री-पुरुषोंसे उन्होंने मुलाकात-चर्चा की। उन लोगोंके अनुसार उन्हें राज्यपाल जगमोहन ने कहा कि 'हम लोग दहशतवादियोंके खिलाफ जल्द ही कडी कार्रवाई करेंगे। अच्छा होगा कि आप लोग घाटीसे हट जाय।' हम लोग इसिलिए चले आये। हमारे मुस्लिम पडोसियोंके साथ बहुत स्नेहपूर्ण संबंध थे। आज भी हमारे घरोंकी चाबियाँ उनके पास ही हैं।

यह दल आगे चलकर श्रीनगर, अनंतनाग, बारामुल्ला आदि गांवोंमेंभी गया। वहाँके काश्तकार, बेपारी, वकील आदि से उन्होंने बातचीत की। उन लोगों का कहना था कि 'हमें पाकिस्तान में कतई नहीं जाना है। हम भारत में ही रहना चाहते हैं।'

वापस लौटकर दल के सदस्योंने कई सभाएं लीं। हजारों लोगों के सामने कश्मीर समस्या को स्पष्ट किया। यह जरूरी था कि कश्मीरकी जनता के साथ सहयोग बढाया जाय। जुलाई में डॉ. ना. य. डोळे और श्री. पन्नालाल सुराणा तथा अक्तूबरमें श्री. किसनराव महिंद्रकर, पुराणिक एवं जाधव कश्मीर होकर आये।

दरिंदगी की सीमा पर

६ दिसंबर १९९२ को अयोध्यामें बाबरी मस्जिद का गिरना शायद तय ही था, क्योंकि उसकी तैयारी कई दिनोंसे चल रही थी। कट्टरवादियोंकी नस्ल देखते देखते बढती गयी और उनके तेवर में एक दरिंदगी साफ साफ झलकने लगी। इस देश के धर्म-निरपेक्ष संविधान को ताकपर रखकर धर्मांधोंने मस्जिद की ईंट से ईंट बजा दी। यह जुनून अयोध्यातक रुका नहीं। धीरे धीरे उसका जहर शहरों और गांवोंकी नसों में उतरने लगा। फिर लोग जिंदा जला गिए गए; घरोंको आग लगाई गयी, औरतों को बेइज्ज़त किया गया, बच्चोंकी गर्दनें मारी गयीं, बडे-बूढोंके हाथ-पैर छांटे गए। जो कभी न सोचा था वह आँखोंके सामने प्रत्यक्ष हो रहा था। सेवादल जैसे एक स्वयंसेवी संगठन की इतनी ताकत नहीं थी कि पागलपन और वहशीपन का यह अंधादौर वह रोक दे। सेवादल में क्या, किसी भी संगठन में यह बल नहीं था। 'मंदिर वही बनायेंगे' कहनेवालों के सामने 'राम और रहीम एक ही है' कहने और माननेवालोंकी आवाज दब गयी।

सेवादल ने पंजाब में जाकर पंजाबी मानस क्या है, यह जाननेकी कोशिश की थी। ठीक उसी तरह उसने यह जाननेकी भी कोशिश की कि मंदिर और मस्जिद के मामलेमें अयोध्या की आम जनता क्या सोचती है?

अयोध्या संवाद यात्रा

२७ सितंबर २००१ से २ अक्तूबर २००१ तक फैजाबाद-अयोध्या क्षेत्र में पदयात्राओं द्वारा 'अयोध्या संवाद यात्रा' आयोजित की गयी। बस्ती से फैजाबाद तथा अकबरपुर से फैजाबाद दो गुटोंमें ३५ कार्यकर्ताओंने दो यात्राएं कीं। महाराष्ट्र के साथ इसमें उत्तरप्रदेश और बिहार के भी कार्यकर्ता थे। नितांत अपरिचित स्थानोंपर, नितांत अजनबियोंसे बातचीत करने का अनोखा अनुभव कार्यकर्ताओंको मिला।

दरिंदगी की उस सीमापर विचरण करनेवाले इन कार्यकर्ताओंने यह अनुभव किया कि सर्वसामान्य जनता न मंदिर चाहती है न मस्जिद। दोनों रहें और अमन के साथ रहें इतनाही लोग चाहते थे।

कई लोगोंने यह कहा कि 'अच्छा होगा, राष्ट्र सेवा दल ऐसी संवाद-यात्राएं देश के अन्य भागोंमें भी निकालें। **'विकास के लिए शांति'** यह ध्येय रखनेवाले सेवादल की देश के अन्य भागोंमें भी जरूरत है। हिंदू और मुस्लिम दोनों धर्मोंके कई लोगोंसे कार्यकर्ताओंने संपर्क स्थापित किया। कुछ अतिवादी लोगोंको छोड दें तो दोनों धर्मोंके अधिकांश लोग यह चाहते थे कि मंदिर-मस्जिद के नामपर इन्सान का खून न बहे।

२ अक्तूबर गांधी जयंती के दिन फैजाबाद में इस संवाद-यात्रा का समापन हुआ। श्री पन्नालालजी सुराणा, भाई वैद्य, प्रभास जोशी, सुरेंद्र मोहन, ॲड. दिलावर खान मुख्य मेहमान थे।

बाबरी मस्जिद को ढहानेवालोंमें महाराष्ट्र के कार सेवकोंकी संख्या अधिक थी। उसी महाराष्ट्र से सेवादल के सैनिक कार्यकर्ता आए थे, लोगों के टूटे हुए दिल जोडने और पस्त हौसले बुलंद करने। इस यात्रा के कारण सेवादल सैनिकोंको भी बहुत कुछ सीखने मिला।

विश्व हिंदु परिषद ने रामंदिर-निर्माण का मुद्दा हर स्तरपर भुनाया था। देश की राजनीतिपर उसकी पकड मजबूत थी। सरकार गिर गयी तो भी पर्वाह नहीं पर मंदिर बनायेंगेही यह फतवा देकर एक ओर उसने

सरकारपर अपना अंकुश भी रखा और जनताको भडकाने में सफलता भी पायी। रामजन्मभूमि निर्माण न्याय और बाबरी मस्जिद ॲक्शन कमेटी ये दो ही इस सवाल के पहलू है नहीं, और भी कई मुद्दे हैं, यह कहते हुए सेवादल ने देश के सामने खडे अन्य महत्त्वपूर्ण समस्याओंकी चर्चा जनता के साथ की।

शांति-मार्च

दिनांक १४-१५ मार्च २००२ को सेवादल समविचारी संगठनोंने लखनौसे फैजाबाद तक एक शांति-यात्रा आयोजित की। जन आंदोलन का राष्ट्रीय समन्वय, आशा, वनांगना, सर्वोदय मंडल, दलित संगठन जैसी अन्य संस्थाएं इस शांति-यात्रामें शामील थीं। लगभग ५०० लोग सहभागी हुए जिसमें ३०० महिलाएं थीं। सारे लखनौ शहर में घूम-फिरकर यात्रा फैजाबाद की दिशामें आगे बढी। माती, माधवपुरा, देवां शरीफ, बाराबंकी में बहुत उत्साह के साथ यात्रा का स्वागत किया गया। स्वागत करनेवालों में हिंदू-मुसलमान दोनों थे। हर जगह सभाएं हुईं। हर सभामें लोगोंकी काफी उपस्थिति रहती थी।

बाराबंकी से ५ कि.मी. आगे यह यात्रा पुलिसने रोकी। यात्रिक शांति के साथ रास्तेपर ही धरना देकर बैठ गए। भाजपा के युवा मोर्चाने पहले यह ऐलान किया था कि इस शांति-यात्रा को बाराबंकी में न घुसने देंगे, न फिरने देंगे। लेकिन ऐसा कुछ नहीं हुआ।

दोपहर ३ बजे अयोध्या का शिलान्यास कार्यक्रम शांतिसे और सुप्रीम कोर्ट के आदेशानुसार संपन्न हुआ। दंगा-फसाद संबंधी लोगोंके मनमें होनेवाली आशंका निर्मूल सिद्ध हुई। शांतिसैनिकोंने शाम को अपना धरना समाप्त किया।

श्री. पन्नालालजी सुराणा सहित राष्ट्र सेवा दल के १२ सैनिक इस शांतियात्रा में और उसके संयोजन में थे। प्रा. विकास देशपांडे, प्रा. सुभाष वारे, कैलास चिनगुंडे, लता बंडगर इत्यादि की इस यात्रा में महत्त्वपूर्ण भूमिका रही।

३ जनवरी २००२

महात्मा जोतिबा फुले और उनकी पत्नी सावित्रीबाई फुले ने १८४८ में लडकियों के लिए पहला स्कूल शुरू किया था। उस कार्य ने समाज परिवर्तन की प्रक्रिया को एक गति प्रदान की। जोतिबा और सावित्रीबाईने इसके लिए जो कुछ भुगता वह अब इतिहास की धरोहर है। पर उस छोटी-सी नींव पर स्त्री शिक्षाका भविष्यकालीन राजमहल खडा हो सका।

राष्ट्र सेवा दल, छात्र-भारती और समाजवादी महिला सभा ने सावित्रीबाई के जन्मदिनपर उनके जन्मस्थानपर इकट्ठा होकर संकल्प करने का निश्चय किया। नायगांव में एक विशाल युवती-महिला शिविर का आयोजन हुआ। सोचा तो यह था कि हजार पंद्रहसौ महिलाएं आयेंगी। पर प्रत्यक्षतः साढे तीन हजार के करीब युवतियों और महिलाओं का प्रचंड जमावडा हुआ तो आयोजक भी भौंचक्के रह गए। एक दृष्टिसे यह राष्ट्र सेवादल पर लोगोंके होनेवाले भरोसे की निशानी थी। दूसरे, स्त्री समाज में जागृति का तेज दौर आ रहा था।

'हम सावित्रीकी कन्याएं हैं
अब न कहीं रुकना है।'

सम्मेलन के इस नारे ने बिजली का काम किया। सम्मेलन का उद्घाटन किया राष्ट्र सेवादल की कार्यकारी विश्वस्त श्रीमती सुधाताई वर्दे ने। समापन के लिए दो विश्वविख्यात हस्तियां थीं – शबाना आज़मी और मेधा पाटकर। दोनों समारोह के अध्यक्ष थे, राष्ट्र सेवादल के वर्तमान अध्यक्ष श्री भाई वैद्य। सैकडों कार्यकर्ताओंकी तीन माह की मेहनत उस दिन रंग ला रही थी। स्त्रियोंसे संबंधित सोलह विषयोंपर अलग अलग हिस्सों में बहुत गंभीर विचारविमर्श हुआ। यह चिंतनही सम्मेलनकी सबसे बडी उपलब्धि थी। जागतिकीकरण और गलत विकासनीति के कारण स्त्रियोंकी समस्याएं घटी नहीं, और बढीं इसका श्रीमती मेधा पाटकर ने किया हुआ विवेचन महिलाओंको अंतर्मुख कर गया। श्री. भाई वैद्य ने यह अपेक्षा व्यक्त की थी कि इस विशाल महिलावाहिनी में से कम से कम दस वो महिला कार्यकर्ता तैयार हो जो सेवादल के काम के लिए अपना सारा समय दे सके।

नायगांव के पास ही शिरवळ के श्रीपतराव कदम महाविद्यालय के विशाल प्रांगण में संपन्न यह 'युवती-महिला निर्धार सम्मेलन' सेवादल के बढते हुए मजबूत कदमोंकी गवाही था।

गुजरात में

गोध्रा और अहमदाबाद के नरसंहार ने इन्सानियतकी चादर जितनी मैली करनी थी, कर दी। ऐसा भीषण अमानुष नरसंहार इस सदीमें शायद ही और कहीं हुआ हो। अयोध्याकांड जितना जघन्य था, गोध्रा और अहमदाबाद कांड उतना ही जघन्य है।

गुजरात में भूकंप के समय राहत पहुंचाने का काम करनेवाले सेवादल के सैनिक इस बार भी अपने कर्तव्य कर्म से नहीं चुके। अहमदाबाद की शरणार्थी बस्ती में जाकर कार्यकर्ताओंने जीवनावश्यक चीजोंका वितरण किया। हिंदू और मुस्लिम दोनों जातियों के मुखियोंसे बातचीत की।

भारत में १३ करोड मुस्लिम रहते हैं। अगर उन सभी को कोई अपना दुष्मन मानता है, तो देश और दुनिया चुपचाप इस ज्यादती को सह नहीं लेंगे, अपनी सत्ता बनाए रखनेके लिए किसी भी प्रकार के जघन्य हत्याकांड को 'न्याय' बतानेवाले लोग 'सत्तापिपासु' कहलाएंगे पर 'राज्यकर्ता' नहीं। सेवादल ने इस दरिंदगीका तीव्रतम वैचारिक विरोध किया। गुजरात के शरणार्थियों के लिए 'गुजरात सद्‌भावना निधि' इकट्ठा कर जरूरतमंद लोगोंको आवश्यक सामान पहुंचानेका काम भी उमाकांत भावसार और कैलास चिनगुंडे इन्होंने किया।

एक संगठन के रूपमें विविध क्षेत्रोंमें सेवादल द्वारा किये हुए कामों का यह संक्षिप्त लेखाजोखा है। बहुत संभव है कि इनमें कई काम और कई नाम छूट गए हों। पर कामों के ये मुकाम यह बताते हैं कि देश और समाजके हर चढाव-उतार के साथ सेवादल ने अपना संबंध बनाए रखा था।

जिन सिद्धांतोंको सेवादल मानता है वे सिद्धांत बहुत व्यापक हैं। उनपर स्वातंत्र्योत्तर काल में जो राजनीति बदलती गयी, उसका अधिक परिणाम नहीं होना चाहिए था। पर ऐसा हुआ नहीं। सन १९६७ के बाद धीरे धीरे प्रादेशिक पक्षोंकी ताकत बढती गयी। १९८० तक वे राज्य स्तर पर अपना प्रभाव प्रगट करने लगे थे और १९९० के बाद तो देशकी राजनीतिमें उन्होंने अपनी जगह बना ली। इस बदलती स्थितिका एक अदृश्य परिणाम सेवादल जैसे समाजवादी विचारोंके संगठनपर होना ही था। लोगोंकी अस्मिता के केन्द्र बदल गए और राजनीतिमें सैद्धांतिक तत्त्वप्रणाली का बडी तेजीसे ह्रास होता गया।

१९८० के बाद भारतीय जनजीवन और राजनीतिमें धर्मवादी ताकतोंका खुल्लमखुल्ला व्यवहार शुरू हो जाता है। यह व्यवहार सेवादल जैसे सिद्धांतवादी संगठन के विकास में अपने आप एक प्रतिबंध निर्माण करता है। स्वतंत्रता पूर्व और स्वतंत्रता के लगभग दो दशक तक सिद्धांतवादी जीवन व्यवहार को जो व्यापक जनसमर्थन मिलता था वह सन १९६५-७० के बाद एकदम घटने लगा। राष्ट्रीय जीवन में व्याप्त भ्रष्टाचारी राजनीतिने हर सेवाभावी कार्यक्रमपर एक प्रश्नचिह्न लगा दिया। इसलिए कोई उदात्त हेतु तथा व्यापक विचार रखकर समाजसेवा करता है इस बातपर का लोगोंका विश्वास ही उठ गया और पहले जो व्यापक जनसमर्थन मिलता था उसमें बडी भारी कमी आ गयी।

पर सेवादल की यह विशेषता रही कि इतने ठहराव के बाद भी जनसंपर्क की उसकी ललक और तत्संबंधी उसकी ईमानदारी में कोई कमी नहीं आयी। समर्थनोंकी कमी जरूर थी, पर सिद्धांतोंपरकी निष्ठा में न कोई कमी थी, न कमजोरी।

■

॥ अध्याय चौथा ॥

राष्ट्र सेवा दल का संस्कृति-समृद्ध उल्लास =

कलापथक

सन १९४२ हमारे स्वाधीनता संग्राम का एक महत्त्वपूर्ण मोड है। धीरे-धीरे कर यह परिपक्व हुआ। इस ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में राष्ट्र सेवा दल का कार्य विकसित हो रहा था। देशप्रेम की धारा इसका उत्स थी। इसी दरमियान सांस्कृतिक प्रेरणाएँ भी बलवती बनीं। उनका संगठित रूप सामने आया। कलापथक का आज स्वतंत्र स्थान और मान है। अपने उद्‌गम स्थल पर इसका रूप गंगोत्री के समान क्षीण और संक्षिप्त फिर भी था संभावनाओं से भरपूर। यह रूप कुछ वैयक्तिक स्वरों से प्रेरित और कुछ सामुदायिक स्वर मंडल से लकदक था। इसके मूल में सन १९४२ का आंदोलन था। राष्ट्र सेवा दल के हर छोटे-बडे के कंठ में देशभक्ति की गीत गंगा अवतरित थी! उसका समूह गान आंदोलन की लहराती पताका बनी। शूर वीरों की कहानियाँ कविता में गाने की एक लहर उठी और पोवाडा के माध्यम से गाँव-गाँव गली-गली में बलिदानी वीरों के त्याग और बलिदान की कहानियाँ गाई गईं। महाराष्ट्र में श्री गणेशजी के सामुदायिक उत्सव की नींव लोकमान्य तिलकजी ने रखी। श्री गणेशजी के उत्सव के निमित्त प्रदेश भर के घर-घर में संगीत चेतना से एक उत्फुल्ल वातावरण जागा। देश भक्तों के नामों का पवित्र तिलक लगाकर इन विविध संगठनों का जन्म हुआ। स्थानिक कलाकार चल पडे। कारवाँ बना। मनोरंजन का आधार था। सुधार की प्रेरणा थी। इन आरंभिक कार्यक्रमों में देशभक्ति के साथ-साथ समाज सुधार की भी चर्चा चली। बालविवाह का विरोध, व्यसनमुक्ति का आग्रह, एकात्मता का संकल्प और देशभक्ति का भाव इन कार्यक्रमों की चतुःसूत्री थी। गीत, संगीत, नृत्य और नाट्य इन चार बिंदुओं पर आधारित इन कार्यक्रमों के माध्यम से जन जागरण और दिशा

दिग्दर्शन का कार्य चलता रहा। विविध गाँवों में चलने वाले इन छोटे-छोटे संगठनों में राष्ट्र सेवा दल के संस्कार संपन्न युवक इस या उस रूप में संलग्न थे। इनके द्वारा प्रस्तुत नाटकों की संहिताएँ आज भी उपलब्ध हैं। प्रादेशिक स्तर पर इनकी एक व्यवस्था भी देखी जाती है। इन नाट्य प्रस्तुतियों में स्थानिक स्तर पर अनेक प्रतिभासंपन्न कलाकारोंने अपनी कला का जौहर दिखाया। उत्तमोत्तम कलाकृतियों की संहिताओंकी प्रतियोगिताओंकी बात भी इतिहास को ज्ञात है। कुछ हद तक इन संहिताओंके संकलन-संपादन-प्रकाशन के भी प्रयत्न हुए।

इसमें मुख्यतः पुरुष कलाकारोंनेही हिस्सा लिया और उन्होंने ही नारी भूमिकाओं को भी मंच पर अंजाम दिया। वह जमाना था जब स्त्रियाँ रंगमंचपर अपनी कला का प्रदर्शन नहीं करती थी। नाट्य कला में अभिरुचि रखनेवाले तो अभिजात जन थे लेकिन रही घिरी यह कला पुरुष क़लाकारों तक ही। महाराष्ट्र की सुप्रसिद्ध संगीत नाटक परंपरा का भी अपना एक स्वतंत्र इतिहास है जिसमें नर कलाकारोंनेही नारी किरदार निभाए हैं। गाँव-गाँव गली-गली की नाट्य मंडलियाँ भी इस प्रभाव से अछूती भला कैसे रह सकती थी?

यह तात्कालिक उपक्रम था। श्री गणेश उत्सव के अवसर पर यह कार्यक्रम संपन्न होते। विविध क्षेत्रों में कार्यरत कलाकार एकत्र आते और दस-बारह दिनोंतक अपनी कला का दर्शन-प्रदर्शन करते कराते। इसका व्यापक और निरंतर प्रवाही रूप अभी तय होना था। सुगबुगाहट जरूर थी। कुछ कदम चल जरूर पडे थे लेकिन अभी तक उस के रूप का कोई निश्चित अर्थ तय नहीं था। राष्ट्र सेवा दल का कार्य तो जोरोंपर था ही। उसके साथ सांस्कृतिक प्रेरणाओंका भी जमघट हुआ। महाराष्ट्र के सांस्कृतिक जागरण और पुनरुत्थान में इन देशभक्त कलाकारों को महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करनी थी। इनके पास संगीत, नृत्य, नाट्य इस त्रिपदा गायत्रीका चिंतन था। लोग जुडते जा रहे थे। देशभरमें एक नई चेतना करवट बदल रही थी। महाराष्ट्रमें उसका उल्लास अधिक उर्जा संपन्न रूप में अभिव्यक्त हुआ।

दयामय, मंगल मंदिर खोलो

हर देशके स्वाधीनता का इतिहास विशिष्ट होता है। क्रांतिकी चिंगारियों और तूफानी शोलोंसे भरपूर होता है। भारतीय स्वाधीनता के इतिहासमें

महात्मा गांधीजी का योगदान केवल आजादी दिलाने तक ही सीमित नहीं है। उन्होंने आजादी की जो राह दिखाई वह अभिनव है। सामान्यतः उनके पूर्व कार्य की प्रेरणा के दो मुख्य आधार थे लोभ और भय; दुनिया भरमें इन्हीं प्रेरणाओं ने जन-जन को संचलित किया। गांधीजीने इनके स्थानपर बलिदान और प्रेममय मार्ग अपनाने की सलाह दी। बलिदान अपने देशके लिए और प्रेम अपने देशबंधुओंके प्रति। राष्ट्रीय और सामाजिक प्रवाहोंकी गंगा-यमुनी धाराओं का अत्यंत सुस्पष्ट चित्र गांधीजीकी नजरों में तैर रहा था।

महाराष्ट्र में साने गुरुजीने इस दिशा में क्रांतिकारी काम किया। महाराष्ट्र का धर्मपीठ पंढरपुर है। इस पंढरपुर के श्री विट्ठल मंदिर में तत्कालिन हरिजन भाई-बहनों को प्रवेश निषिद्ध था। इसके विरोध में साने गुरुजीने अपने उत्तरवर्ती जीवन का अत्यंत साहसी उपोषण किया। जगन्नाथ के मंदिर में कस्तुरबा द्वारा प्रविष्ट होने पर गांधीजी जडमूल से हिल गए थे। उसका प्रभाव उनकी शारीरिक स्थितिपर भी पड गया था। मंदिर सब के लिए खुला हो यह उनकी भूमिका थी। साने गुरुजी के आंदोलन की जड में यही बात थी कि मंदिर में सभी के लिए मुक्त प्रवेश होना चाहिए। उनके आंदोलन में सेनापति बापट आ जुडे। उनकी तो हर साँस में आत्मार्पण की भावना वास करती थी। साने गुरुजी के मंदिर प्रवेश आंदोलन की बलिपंथी कहानी एक स्वतंत्र अध्याय का विषय है। अपने उपोषण का परिचय पूरे महाराष्ट्र को दिलाने के हेतु से उन्होंने महाराष्ट्र का तूफानी दौरा किया। अपने हृदय स्पर्शी भाषणोंसे, तलस्पर्शी चिंतन से और भावस्पर्शी गीतोंसे उन्होंने एक वातावरण तैयार किया। सन १९४२ में जो बीज वपन हुआ था, सन १९४६ में उसमें अंकुर आए। कलापथक के जन्म की यह क्रांतिकारी कहानी है। कलापथक के पंख यों उसके जन्म काल से ही राष्ट्रीय और सामाजिक चेतना से अभिमंत्रित रहे। एक गीत मंच का राष्ट्रीय प्रचार-प्रसार हुआ। साने गुरुजी के इस आंदोलन ने पंढरपुर के श्री विट्ठल मंदिर के द्वार खोल दिए और जन-जन के मन के भी पट खोल दिए।

महाराष्ट्र शाहीर को मुजरा

साने गुरुजीने कलापथक में एक प्रकार से जान फूंक दी थी। सन १९४६ का मई का महिना। श्री. लीलाधर हेगडे सेवादल की कुछ गतविधियों

के लिए पुणे आए थे। पुणे में वसंत बापट से उनकी मुलाकात हुई। कलापथक की निर्मिति का यह रोमांचकारी इतिहास स्वयं उन्होंने ही बताया है, वसंत बापट की कल्पना थी कि 'महाराष्ट्र शाहीर' नाम से एक संस्था की स्थापना की जाए। गीत-पोवाडा तथा लोकनाट्य-तमाशा कला द्वारा जन-जन का मनोरंजन हो और इसकी प्रधान धारा जन प्रबोधन की हो यह साने गुरुजी की इच्छा थी। सर्वश्री अच्युतराव पटवर्धन, साने गुरुजी, एस. एम. जोशी ने इसे पुष्ट किया है और इसकी आर्थिक व्यवस्था करने की तैयारी श्री. रावसाहेब ओक ने दर्शाई है। यह कल्पना सुनते ही लीलाधरजी का पुलकित होना स्वाभाविक था। उन्होंने इस काम में हामी भरी और एक संकल्प को आकार-आधार प्राप्त हुआ। हेगडेजी भी उन दिनों अपने सजीले सूरों मे समाँ बाँध देते थे। सन १९४६ के चुनाव में उन्होंने राष्ट्रीय दल कांग्रेस के प्रचारार्थ अपनी सुरीली सुर माधुरी से एक वातावरण बना दिया था। प्रदेश के गाँव गाँव में घूमे-फिरे थे। चुनाव में कांग्रेस को विजयश्री ने वरमाला पहनाई थी। साने गुरुजी उन दिनों बताते थे कि सबको एक बडी लडाई के लिए तैयार रहना है। हवाओं में कुछ ऐसी भनक थी कि लोग त्याग-बलिदान ही की बात करते थे। स्वार्थ-लोभ का कहीं नामोनिशान तक नहीं था।

जून १९४६ के दरमियान 'महाराष्ट्र शाहीर पथक' का जन्म हुआ। पुणे से यह आरंभ हुआ फिर नाशिक होते हुए महाराष्ट्रके चारों कोनों में छा गया। उन दिनों शाहीर पथक के सभी कार्यकर्ता देशभक्त थे। सन १९४२ के आंदोलन में जेलयात्रा के अनुभव से संपन्न इन कार्यकर्ताओंके मन में देशभक्ति का ज्वार उफन रहा था। अनेक कार्यकर्ताओंने भूमिगत कार्य भी किया था। अपनी गिरफ्तारियाँ न देनेवाले इन कार्यकर्ताओंका मनोबल भी कुछ कम नहीं था। कॅपिटाल बम कांड के श्री. भालबा घायाळ इन्हीं कार्यकर्ताओंमेसे एक थे। दत्तोबा पुरोहित को सुरीले कंठ का वरदान था। शहापुर के दातार और कदम थे। पुणे के राजा माटे थे। प्रमिला करंडे, काका केणी कितने नाम गिनाए जाए। आगे चलकर राजा मंगळवेढेकर, भालबा केळकर, ग. दि. माडगूळकर तथा व्यंकटेश माडगूळकर आ जुडे। जन-जन तक प्रबोधन की आग पहुंचाना प्रमुख कार्य था। श्री. दातार कीर्तन करते। लीलाधरजी पोवाडा गाते। राजा माटे फिल्म-शो करते। अनेक मित्र तमाशामें जुडे रहे। लेखन का गुरू भार वसंत बापट ने उठाया लेकिन वे

मात्र लेखक ही तो नहीं थे, वे थे कलाकार। दिग्दर्शक, कवि, व्यवस्थापक और क्या नहीं थे वे? आरंभिक अवस्था में कार्यक्रम का स्वरूप केवल पोवाडा गान तक ही सीमित था। सन १९४२ के आंदोलन का चित्रण करनेवाली फिल्म भी उनके पास थी। उसका प्रदर्शन भी किया जाता। नमन गीत की पंक्तियाँ थीं –

आए महाराष्ट्र शाहीर
हाँ जी आए महाराष्ट्र शाहीर

महात्मा गांधीजी के कारण तत्कालीन कांग्रेस का स्वरूप देशभक्ति का पर्याय था। कांग्रेस एक विचारधारा थी। वह जबानदराजोंका अड्डा नहीं कृतिशूरोंकी गतिशील मंडली थी। कांग्रेस को जनता ने अक्षरशः देवता का रूप दिया था। वह जन-जन के लिए तारक मंत्र थी। वह दीन जनों के लिए छाया थी। सबके लिए उसका हृदय खुला था। वहाँ सभी को मुक्त प्रवेश था। सबको सुखी जीवन प्रदान करनेवाली कांग्रेस माई देवी थी। वह मुर्गे या बकरे की बलि नहीं चाहती थी, ना ही फूल नारियल चाहिए थे। वह तो मात्र भाव भक्ति चाहती थी। चवन्नी सदस्यता की फीस भरनेवाला कांग्रेस जन बन सकता था। कार्यक्रम में कांग्रेस माई की आरती उतारी जाती। आरती के बोल जन-जन के हृदय को छू लेते। कार्यक्रम यों परवान चढता। कांग्रेस की लोकप्रियता का उन दिनों यह बखान था। 'ढोल बजाओ ढोल' यह गीत तो जन चेतना के कंठ उतर गया था। वातावरण गीत-नृत्यमय हो जाता।

गौरीशंकर

इसी दरमियान बापटजी ने एक तमाशा लिखा था – 'गौरीशंकर'। गौरी की यह स्वयंवर कथा थी शंकर के निमित्त। खानदेश की पृष्ठभूमि में सजी इस लोक नाट्य की कल्पना थी बहुत ही सुंदर। डोंगरगाव का पाटील अपनी कन्या का विवाह करना चाहता है। वह रचता है स्वयंवर। अपनी गुणसंपन्न कन्या के लिए उसे उपयुक्त वर की तलाश है। कन्या के मामाजी चार उपयुक्त वरों को चुन लाए हैं। कन्या का भाई भी एक वर को ढूँढ लाया है। कुल पाँच वर स्वयंवर में उपस्थित होते हैं। पाँचों विवाहेच्छु हैं। योग्य हैं। कुलीन हैं। सुंदर हैं। कन्या को उनमें चुनाव करना है। एक वर है तहसिलदार, दूसरा है जमादार, तीसरा फौजी, चौथा

कॉंट्रॅक्टर है और पाँचवाँ है अगस्त क्रांतिवीर। गौरी का भाई इन चारों उम्मीदवारों पर सवालों की बौछार कर देता है। सही उत्तर देने में असमर्थ इन चारों युवकों की बडी फजिहत होती है। अर्थात ही पाँचवाँ अगस्त क्रांतिवीर बाजी जीत लेता है, गौरी का उसके साथ ही स्वयंवर होता है। आज आम लगने वाली यह कहानी उन दिनों काफी प्रभावशाली थी। श्रोतृवर्ग का इसमें सक्रिय योगदान विशिष्ट माना जाना चाहिए। साने गुरुजी के कर्मक्षेत्र खानदेश में घटित होनेवाली यह कहानी और भी महत्त्वपूर्ण बन गई थी। पुरानी स्वयंवर कथा को चुनकर बापटजी ने उसमें आधुनिकता का उच्छवास भर दिया था। बन ठन कर दुल्हे बन कर आनेवाले सुंदर गुणवती कन्या का पाणिग्रहण करने की आस मन में संजोए युवकों की फजिहत से लोगों का काफी मनोरंजन होता। सरकारी नौकरियों की व्यर्थता और धन से सजनेवाले तमाशों के चेहरे पर करारा थप्पड जमानेवाली यह कहानी जन जन में प्रबोधन की नई दिशा जगाने में समर्थ कहानी रही।

आजाद भारत

डेढ सौ सालों की भारत की गुलामी की अंधियारी सुरंग टली। आजादी मिली। रणबांकुरे वीरों ने प्राणों की आहुति अर्पित कर यह आजादी पाई थी। देशभर में आजादी का जश्न सजा था। हरेक के मन में उमंगों का सागर लहराता था। 'अब हम आजाद हो गए हैं; अब हम अपने ढंग से अपने देश का निर्माण कर सकते हैं' यह संकल्प हर जबान पर था।

भारत की आजादी के ब्रह्म मुहुर्त पर दो अप्रिय घटनाएँ घटित हुईं। इस देश का बटवारा हो गया यह न केवल देश की सीमाओं का बटवारा था अपितु देश के मन, प्राण, प्रेम और संबंधों का भी बटवारा था। चहुं ओर द्वेष की आग फैल गई थी। हिंदू मुसलमानों के बीच सांप्रदायिक तनाव बडा ही भयंकर रूप धारण कर चुका था। इसी बीच महात्मा गांधीजी की हत्या हुई। प्रकाश का एक अखंड स्रोत बिखर गया। एक सपना टूट गया था। सबको सन्मति देने की ईश्वर अल्लाह से प्रार्थना करनेवाली एक पहल मूक हो गई। दुःखितों को त्राण दिलानेवाले कदम थम गए। एक चेतना शांत हो गई। गांधीजी के जाने के बाद तो वे हमें अपनी संकटकालीन घडियों में बहुत बहुत याद आए। फिर एक बार जागे बलवे और भाई-भाई

के खून के फव्वारों में धरती नहा उठी। तत्कालीन कांग्रेस सरकारने एक कांग्रेस का अपवाद मानकर लगभग सभी स्वयंसेवी संस्थाओंके संगठनोंके कार्यालयों पर ताले जड दिए। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ पर पाबंदी लादी गई, उसकी परिणति राष्ट्र सेवा दल पर भी पाबंदी लगाने में हुई। सेवादल कार्यकर्ताओं पर अनेक बंधन लादे गए। कोई कवायद नहीं करेगा। शाखाएं नहीं चलेगी। न कोई विशिष्ट वर्दी पहन सकेगा। पाबंदी की भाषा के कुछ मुद्दे यों थे। इन जकडन भरी हालातों में सेवादल की गतिविधियाँ चला पाना लगभग असंभव ही था। कानून का सम्मान करते हुए भी सेवादल का कार्य किस प्रकार से जारी रहे यह मुख्य चिंता का मुद्दा था। इससे विचार की नाना दिशाएँ जागीं। अध्ययन मंडलों की स्थापना के साथ ही कलापथक के पुनर्जागरण की बात सामने आई। जन जन तक पहुंचने और अपनी बात पहुंचाने का यह प्रभावकारी माध्यम था। इसमें सबका साथ होता। इस मनोरंजन से संगठन कार्य में जोश आता। अर्थात कुछ ही महिनों में सेवादल पर लगी पाबंदी हटी। नए वातावरण में सेवादल के कलापथक ने करवट बदली।

१९४८ के मई महिने में सेवादल प्रांत कलापथक का शिविर मुंबई में संपन्न हुआ। उस शिविर की विशेषता रही वसंत बापट लिखित लोकनाट्य 'भोळे बगळे' अर्थात 'भोले बगुले'। इस शीर्षक से ही व्यंग्यात्मकता टपकती है। इस के साथ साथ सामुदायिक गीत गायन तथा 'बिजली' के समान सामुदायिक नृत्यधारा का प्रवर्तन किया गया। इस गीत-नृत्य-संगीतमय प्रस्तुति की पहली पेशकश परळ के दामोदर हॉल में हुई। इस शिविर के मार्गदर्शन हेतु सर्वश्री वसंत बापट, श्रीरंग वरेरकर, आवाबेन हवावाला जो आगे चलकर विवाहोपरांत आवाबेन देशपांडे बनीं, मुख्य स्वर रहें। एक वह जमाना था जब महिलाओं का – कन्याओंका मंच पर एकल गान प्रस्तुति करना तक असंभव था। मंचपर नृत्य प्रस्तुत करना तो अब्रह्मण्यम ही था। सेवादल ने इस परंपरा में नई पौध रोपी। अनेक कन्याओं ने रंगमंच पर अपनी श्रेष्ठ कला का प्रदर्शन किया। कलापथक की प्रगति दिन दूनी रात चौगुनी हुई। जन प्रबोधन से लोकशिक्षा और मनोरंजन से उचित उपदेशात्मकता का समन्वय इन कार्यक्रमों की धुरी होने के कारण इन कार्यक्रमों का प्रभाव और आकर्षण बढता ही रहा। महाराष्ट्र की पारंपरिक लोककला का आश्रय ग्रहण करने के कारण

गाँव-गाँव तक इसकी भाषा और भाव पहुंच पाया। गीत, पोवाडा गायन, नृत्य, लोकनाट्य इन विविध आयामों के प्रयोग के कारण अधिकाधिक लोग इस कार्यक्रम की ओर आकृष्ट हुए, यह कार्यक्रम सबको अपना लगता रहा, यह इसकी खास खूबी है। हर कहीं जहां भी यह नाटक मंडली पहुंचती उनके पूर्व ही उनके प्रचारक, हितैषी वहां मौजूद होते। साने गुरुजीके कार्य और सेवादल के प्रभाव के कारण भूमि पहले से ही तैयार मिलती। नाट्य प्रस्तुतियों को स्थानिक प्रश्नों का स्पर्श होता और हंसी के कारण लोट-पोट होते हुए दर्शक वर्ग अंतर्मुख भी बनता जाता।

कलापथक को आकार देने में प्रा. वसंत बापटजी का स्थान विशिष्ट है। उनके साथ-साथ महाराष्ट्र के तत्कालीन लब्ध प्रतिष्ठ साहित्यसेवियों में सर्वश्री पु. ल. देशपांडे, व्यंकटेश माडगूळकर, गो. नी. दांडेकर प्रभृतियोंने भी शानदार भूमिका निभाई।

कलापथक भाव जागरण का सक्रिय मंच बना। कला के आविष्कार के साथ-साथ प्रबोधन की बात भी की। कला का मानो मैथिलीशरण गुप्तजी द्वारा वर्णित ध्येय ही उनके सम्मुख रहा हो। कवि ने कभी गाया था –

केवल मनोरंजन न कवि का कर्म होना चाहिए
उसमें उचित उपदेश का भी मर्म होना चाहिए

सहविचारी लोग मिलते रहे और कारवाँ तो क्या बनता कुनबा बनता गया। इस वजह से लोगोंमें जोश आया और पुनः एक बार कवि के ही शब्दों में कलापथक ने दोहराया अपने संकल्प को यों –

हो रहा है जो जहाँ सो हो रहा
व्यक्त करती है कला तो क्या कहा?
किंतु होना चाहिए कब क्या कहाँ?
व्यक्त करती है कला ही यह यहाँ

कलापूर्ण आविष्कार के साथ-साथ अपनी नीति का प्रचार-प्रसार, आर्थिक लाभकी सहायता से संगठनात्मक रचनात्मक कार्य की वृद्धि और कलाप्रवण युवक-युवतियों के लिए आत्माविष्कार का मौका प्रदान करना कलापथक के उद्दिष्टों में शुमार था।

पु. ल. देशपांडे लिखित 'शंकर सावकार' ने अपनी विशिष्ट भूमिका निभाई। 'रामनवमी' नाटक के माध्यम से गाँव गाँव जोडे गए।

पटना में समाजवादी मित्रों का अधिवेशन था। कलापथक के सुचारु और सुविहित कार्यक्रम को देखकर वे प्रभावित हुए। कलापथक के गुणी कलाकारों का हौसला बढा। कलापथक धीरे-धीरे आगे बढता रहा। 'अन्नदाता' के प्रयोग ने एक नई मिसाल पेश की। देश का बटवारा, बलवे, राष्ट्रीय एकात्मता में पडी दरार के दर्शन करानेवाली प्रदीर्घ नृत्यनाटिका थी 'झेलम के आँसू'। इस प्रस्तुति ने सामुदायिक कलाप्रदर्शन का भव्य चित्र पेश किया। 'मंगळावरील माणसं' अर्थात 'मंगल ग्रह के निवासी', 'स्त्रियांची उत्क्रांति' अर्थात 'महिलाओं की उत्क्रांति' इन दीर्घ नृत्य नाटिकाओं ने भी अपनी छाप छोडी। 'बिजली' के नृत्याविष्कारने तो अनेक कलाकार कन्याओं को पहली बार मंच पर स्थापित किया। नया मंच मिला। अभिव्यक्ति की संभावनाएं जागीं। इस नृत्य प्रस्तुतिसे जन जन प्रमुदित मन घर लौटे। बिजली के समान कितनी कन्याएं आज प्रस्तुत होनेवाली हैं यह रसिकों के ध्यानाकर्षण का विषय होता। मंत्र मुग्ध करनेवाली इस प्रस्तुति ने रसिकों के मनों को बांध लिया। 'राबून राबूनशान जिंदगी सरली' अर्थात् 'मर खटकर जिंदगी तबाह हो गई' जैसी कविताओं पर आधारित चटपटे कार्यक्रम और नृत्य, शाहीर हेगडे के प्रभावी पोवाडा गायन कार्यक्रम मशहूर रहे। पु. ल. देशपांडे का 'पुढारी पाहिजे' अर्थात 'नेता चाहिए' राजनीतिक व्यंग्यात्मकता का चरम सफल नाट्यांकन था। भाऊसाहब रानडे के समान अनुशासन प्रिय फिर भी ममतालु अभिभावक कलापथक की शक्ति थे। उनकी कडी निगरानी में कन्या कलाकारों का उन्मुक्त प्रवेश संभव हो सका। महाराष्ट्र और क्या देश के लिए भी तो यह सब तब नया नया तो था। कलापथक की नींव अनुशासनप्रियता रही। सप्रयोजन कलात्मक रंजन के कारण कलापथक अग्रसर रहा। शंकर पाटील का 'गल्ली ते दिल्ली' अर्थात् 'गली से दिल्ली तक' लोकनाट्य ने राजनीतिक उबडखाबड भूमि का खरा खरा परिचय कराया। व्यंकटेश माडगूळकर का 'बिन बियाचे झाड' अर्थात् 'बिन बीज उगा पेड' खूब चर्चित नाट्यकृति रही। वसंत बापट का 'मातीची फुले' अर्थात् 'मिट्टी के बच्चे' विशिष्ट रहा। 'कुणाचा कुणाला मेळ नाही' अर्थात् 'किसी के पाँव में किसी का जूता' और 'येरा गवाळ्याचे काम नोहे' अर्थात् 'ऐरे गैरे के बस की बात नहीं' जैसे अनेक नाटकों ने महाराष्ट्र को एक नई दिशा देने में कामयाबी पाई।

दीप से दीप सजे

कलापथक की दृष्टि आरंभ से ही आंदोलन परक रही। यही कारण था कि मसला श्रमदान का हो या भूदान का, प्रश्न गोवा मुक्ति आंदोलन का हो या संयुक्त महाराष्ट्र का, हमेशा कलापथक कदम-कदम बढता रहा। चीनी हमले के खिलाफ जन मत जागरण के काम में कलापथक ने अपनी उपयुक्त भूमिका निभाई। विविध घटना प्रसंगों में कलापथक समयोचित विचार जागरण का कार्य करता रहा।

कलापथक की यह विशेषता रही कि उसने सदा कला एवं प्रचार की आत्मा में ताल मेल बनाए रखा। प्रचार को कभी कलापर हावी नहीं होने दिया। कलापथक जन रंजन के साथ-साथ जन-जन की आँखों में अंजन भरने का काम करता रहा। अपने निश्चित प्रयत्नों के कारण इसने एक सांस्कृतिक व्यासपीठ के रूपमें अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। कला पथक अपने आपमें एक रंगपीठीय आंदोलन बना। एक सदा बहार आंदोलन। उसकी अनेक शाखाएँ बनीं। मुंबई में विविध नगरों उपनगरों में उसके अनेकमुखी प्रकटीकरण की कहानी सुनाई दी। जिले-जिले में स्थानिक कलाकारोंने इसमें अपना योगदान अर्पित किया। उनके पथक फिर गाँव-गाँव घूमते। जागरण का शंख फूँकते। केन्द्रीय कलापथक की निगाहें इन कलाकारों पर टिकी रहतीं, कभी केन्द्रीय कलापथक से मदद मांगी जाती तो कभी स्थानीय कलाकार मुख्य धारा को बलवती बनाते रहे। यह परस्पर मुखापेक्षिता की अपेक्षा परस्पर सुहृद संवाद के कारण संभव हो सका।

आकाशवाणी सप्ताह – १९५६

१ मार्च १९५६ को 'भाई वैद्य एंड पार्टी' ने ऑल इंडिया रेडियो पुणे केन्द्र की ओर से आकाशवाणी सप्ताह में अपनी भूमिका अदा की। पुणे के सुप्रसिद्ध गोखले हॉल में दर्शकों की उपस्थिति में कार्यक्रम संपन्न हुआ। सेवादल प्रांतीय कक्षा के लगभग सभी कलाकारोंने इसमें सहभाग अर्पित किया। इसके अंतर्गत 'बिन बियाचे झाड' अर्थात् 'बिन बीज उगा पेड' बहुचर्चित रहा। श्री. व्यंकटेश माडगूलकर ने इसका लेखन कार्य किया है। इसकी सफलता को लेकर रसिक और पत्रकारों में होड-सी लग गई। विविध प्रकार की अनुकूल पात्रयोजना, संवादकुशलता अर्थात् कथोपकथन की प्रभूत

मात्रा में प्रशंसा हुई। तमाम पात्रों की सामूहिक मानसिकता, सहयोग तथा उससे अंकुरित परिणामकारकता ने सुंदर नाट्यदर्शन की अभिनव झांकी प्रस्तुत की।

भारतीय भाषाओं के विविधांगी नृत्य प्रस्तुतीकरण के अंतर्गत लोकनाट्य का अपना स्वतंत्र स्थान और मान है। मराठी लोकनाट्य, गुजरात की भवई गान परंपरा, बंगाल का जात्रा, उत्तर प्रदेश की नौटंकी से तुलनीय जनमान्य और जनसामान्य रंगावृत्ति है। उसमें एक ही समय में स्पष्ट, मजबूत, प्रवाही भाषा संयोजन के साथ-साथ ललित, मृदु, मधुर, रसप्रद भाषिक संवेदना देखी जा सकती है। मनोरंजन की यह बहु प्रचलित समर्थ परंपरा है। इसमें तात्कालिक घटना-प्रसंगों को लेकर एक कालातीत जीवन सत्य को उद्घाटित किया जाता है। प्रखर विनोदबुद्धि, व्यंग्य परिहास तथा हाजिर जवाबीपन इसके विशेष माने जा सकते हैं। इसमें चित्रित भावनाओं का स्वरूप प्राथमिक होते हुए भी उसकी प्रभविष्णुता प्रखर होती है। कभी पुराण कथाओं के माध्यम से अपनी बात करने के प्रयत्न भी इसमें पाए जाते हैं। कभी किसी लोककथा को केन्द्र में रखकर इसकी प्रस्तुति होती है। अतिशयोक्त वचनों के कारण हास्य रस का उद्भव होता है।

कलापथक के माध्यम से अनेक लोक नाट्य प्रस्तुत किए गए जो मराठी में 'वग' कहलाते हैं। महाराष्ट्र की शाहीर परंपरा संत परंपरा के समान व्यापक और बहुमुखी है। जन जागरणके संबंध में इन कवियों का योगदान मूल्यवान है। हंसते-हंसाते हुए व्यंग्य पर अचूक चोट करनेवाले ये कथानक प्रधानतः जन जन के जीवन से उत्पन्न होते हैं। इन कथानकों में जीवन की न्यूनताओंका कलात्मक परिशीलन होता है। हरेक रसिक को यह अपनी ही कहानी लगती है। यह निजीपन रसिक और नाटककार के बीच का सेतु बन जाता है। परंपरा के साथ नयापन, खरेपन के साथ स्पष्टता, हंसी मजाक के साथ अंतर्मुखी चिंतन प्रक्रिया इस नाट्य प्रस्तुति की विशेषताएं कही जा सकती हैं।

महाराष्ट्र दर्शन

कलापथक की यात्रा संपन्नता से संपन्नता की ओर चलती रही। इसमें केन्द्रीय नेतृत्व, कलाकारों की प्रयोगक्षम ईमानदारी और रसिकों की सुहद

भावना का मुख्य सहयोग रहा। नई कल्पनाओं का प्रस्फुटन होता। शाखा विस्तार की प्रक्रिया जारी रहती। अनेक छोटे-बडे कलाकार प्रभाव ग्रहण करते रहे। प्रभावित होते रहे। कदम से कदम मिलाकर एक अद्भुत रंगयात्रा यों चलती रही। कलापथक का शाहीर जन जन के प्रति यह आश्वस्त भाव व्यक्त करता कि भाइयों हमारा मन बडा ही विशाल है, यह देश हम सबका है, आप यहां बिल्कुल आनंद भाव से रह सकते हैं, मन में यह विश्वास पक्का धारण कर लो कि आपके घर पर कभी भी मशाल नहीं लगनेवाली है। यह सेवादल का प्रत्यक्ष वचन आज के संदर्भ में कितना आवश्यक और कालसंगत है यह अलग से लिखने की कोई आवश्यकता नहीं है। इस महानाट्य का भरतवाक्य था – 'जय हिंद हिंद आनंद भवन जय भारत वर्ष महान'। लोकतंत्रात्मक समाजवादी धारा, राष्ट्रवादी और सत्याग्रही निष्ठा हृदय से लगाकर ही सेवादल का अखंड प्रवास रहा है, इस व्रत को चाहे जैसे प्रक्षोभक प्रसंगों में या नैमित्तिक कारणों की वजहसे भी तिलांजलि अर्पित नहीं की गई है। सेवादल और उसका कलापथक अपने ईमान पर सदा अटल अकंप रहा है।

सन १९६० आया। कलापथक की यात्रा को बारह साल बीत गए थे। एक तप हो गया था। नई चुनौतियां सामने थीं। महाराष्ट्र राज्य का नया ही नया निर्माण हुआ था। चहुं ओर आनंद का सागर लहराता था। जन जन की खुशियों को कोई किनारा ही नहीं था। महाराष्ट्र राज्य की स्थापना के आंदोलन में कलापथक की भूमिका विशिष्ट थी। योगदान शिष्ट था।

महाराष्ट्र एक अद्भुत रसीला प्रदेश है। 'कार्यकर्ताओं का छत्ता' इन शब्दों में गांधीजी ने इसे गौरव प्रदान किया है। संत ज्ञानेश्वर से लेकर संत चोखोबा तक की समर्थ समृद्ध रससिद्ध संत परंपराने महाराष्ट्र के मानस का पोषण किया है। यहां की लोककलाओं में उन्मुक्त रूपसे सम्मिलित होते स्त्री-पुरुष इस प्रदेश की अपनी स्वतंत्र संस्कृति की जय गाथा गाते हुए दिखाई देते हैं। यहां की कला, नृत्य, नाट्य, गान परंपरा अपनी समग्रतामें इस भव्य देश का एक लघु मानक रूप हैं। विविधता में एकता के साथ-साथ एकता में विविधता इसका अंतःसूत्र है। यहां के मठ-मंदिर, शिल्प-मूर्तियां, गढ-किले, नदी के कगार-कछार सब मिलकर एक इंद्रधनुषी संस्कृति का निर्माण करते हैं। अधोरेखित करते हैं भारतीयता की प्रगल्भ

आत्मिक शक्ति को। इस लोक परंपरा का भव्य और उत्कट दर्शन कराने के विचार से कलापथक ने 'महाराष्ट्र दर्शन' की योजना बनाई। दिल्ली में उस समय मराठी भाषियों की कुल जमा ३२ संस्थाएँ थीं। इन संस्थाओं ने एकमुखी माँग की कि कला पथक दिल्ली पधारे। क्या हो कार्यक्रम का स्वरूप? कलापथक ने तय किया कि कुछ नया हो। उसने निरंतर विचार ही देने का उपक्रम जो किया था। पु. ल. देशपांडे की सूचनानुसार कलापथक की दिल्ली यात्रा का आरंभ हुआ। 'महाराष्ट्र दर्शन' नामसे एक भव्य और प्रभावी कार्यक्रम की योजना बनी। एक माह के भीतर ही तकरीबन पचास स्त्री-पुरुष कलाकारों के सहयोग से संगीत-नृत्य-नाट्यमय कार्यक्रम की संकल्पना मूर्त करना कोई आसान काम नहीं था। कम समय और अधिक कलाकार यह समीकरण भी अटपटा ही था। लेकिन जहां हृदय मिले हो वहां संवाद होता ही है। इस सत्य का अनुभव आया। एक नया कार्यक्रम, सर्वथा नई प्रस्तुति तैयार हुई। सर्वश्री डॉ. राधाकृष्णन, पंडित गोविंदवल्लभ पंत, काकासाहब गाडगीळ, चिंतामणराव देशमुख, पंजाबराव देशमुख, न्यायमूर्ति गजेंद्रगडकर जैसी महनीय विभूतियां कार्यक्रम में उपस्थित रहीं। हजारों दिल्ली निवासी कला रसिक भाई-बहनों ने उनके मित्र परिजनों ने कार्यक्रम का आनंद उठाया। उनके लिए यह तो नेत्र निर्वाण की ही अवधि थी।

आगे चलकर इसका मंचन मुंबई में हुआ। महाराष्ट्र राज्य के तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री. यशवंतराव चव्हाण के साथ अन्यान्य महानुभावोंने कार्यक्रम देखा और सराहा। इस कार्यक्रम ने देश की और प्रदेश की राजधानी में तो सफलतापूर्वक कदम रखा ही था फिर देशभर से बुलावे आए। निमंत्रणों की झडी-सी लग गई। 'महाराष्ट्र दर्शन' की विजययात्रा यों देश भरके प्रमुख नगरों में बढी चली। हैदराबाद, जमशेदपुर, कलकत्ता, गोवा, बडौदा, अहमदाबाद, इंदौर, ग्वालियर आदि अनेक शहरों में इस कार्यक्रम को प्रशंसित किया गया। दो बसें खरीदी गईं। मंच के साजो सामान की व्यवस्था हुई। कलापथक के लिए समयदानी कार्यकर्ताओंका तांता लग गया।

नई प्रयोगशीलता के कारण कलापथक के सम्मुख नई चुनौतियां भी आईं। उनसे भरपूर सहयोग लेते हुए कलापथक अपनी मुद्रा काल के कपाल पर स्थापित करता ही रहा।

भारतदर्शन की भव्य प्रस्तुति

इसी भूमिका को मद्दे नजर रखते हुए कलापथक ने एक भव्य प्रस्तुति में अपनी शक्ति केन्द्रित की। यह भव्य कार्यक्रम था 'भारतदर्शन'। साने गुरुजी का एक सपना था 'आंतरभारती' का; 'एक हृदय हो भारत जननी' इस सपने का आधार था। 'अविभक्त विभक्तेषु' हमारी संस्कृति का नारा रहा है। विविधता में एकता और एकता में विविधता हमारे देश के इतिहास की अंतःप्रेरणा है। इस में सत्य, शील, सौंदर्य के दर्शन ही साकार हैं। आजादी की प्रेरणा तथा शक्तिमत्ता का एहसास इसी कारण हम पा सकते हैं। भारतीय जनजीवन के अनेक सुंदर पहलू हैं। इसका सांस्कृतिक पक्ष समृद्ध है। भारतीय इतिहास संघर्ष और सम्मीलन की संगम भूमि है। इसके लिए एकात्मता का मधुर गीत गानेवाला यह कार्यक्रम अत्यंत महत्त्वाकांक्षी प्रकल्प था। आरंभ में तो सभी के मन आशंकाओं से भरे हुए थे कि क्या होगा सफलता का स्वरूप? कैसे स्वीकारेंगे रसिक जन इस कार्यक्रम को? नाना प्रश्न थे। लेकिन परिश्रम और निरंतरता ने सफलता को करीब पाया। कलापथक की सफलता के डंके गूंजने लगे। दिल्ली की रवींद्र कलाशाला में आठ हजार दर्शकों के सम्मुख इसकी अभिनव पेशकश की गई। कार्यक्रम में देश भर की प्रमुख हस्तियाँ उपस्थित थीं। उन नेता गणों में तथा उच्चपदस्थों में एक नाम था नंदिनी सत्पथी का। वे आकाशवाणी मंत्रालय संभाल रही थी। वे कार्यक्रम से बहुत ही प्रभावित हुईं और उन्होंने केन्द्र सरकार के गीत नाट्य प्रभाग की ओर से यह कार्यक्रम देश भर के प्रमुख नगरों में प्रस्तुत करने की योजना बनाई। कलापथक के तो मानो पंख उग आए। गुजरात, राजस्थान, पंजाब, कश्मीर, हरियाना, दिल्ली, मध्यप्रदेश, ओरिसा, आंध्र, मैसूर, गोवा इन प्रदेशों के मुख्य रंग केन्द्रों में इसकी भव्य प्रदर्शनी हुई। इस कार्यक्रम ने दर्शकों को अक्षरशः मंत्रमुग्ध कर दिया था। तकरीबन अस्सी कलाकारों का समवेत सहयोग और तीन सवा तीन घंटे का यह नाट्य दर्शकों ने मनःपूर्वक सराहा था। देशभर की पत्रकारिता ने इसकी प्रशंसा में कलम तोड कर कालम भरे थे। यह इतिहास, शिक्षा, कला तथा देशाभिमान की मिसाल व्यक्त करनेवाला अभूतपूर्व कार्यक्रम रहा।

आजादी की जंग

भारतीय स्वाधीनता संग्राम में अपनी भूमिका अदा करनेवाले रण बांकुरे वीरों ने 'आजादी की जंग' कार्यक्रम की घोषणा की। स्वाधीनता संग्राम की रजत जयंती उत्सव के उपलक्ष्य में षण्मुखानंद हॉल में साढे तीन हजार स्वाधीनता सेनानियों की प्रमुख उपस्थिति में यह शानदान कलाकृति पेश की गई। भारतीय स्वाधीनता संग्राम के साथीदार और साक्षीदार मित्रों के लिए तो यह प्रस्तुति पुनः प्रत्यय का आनंदपूर्ण आस्वादन था। उनकी आँखें सजल हो गईं। मन उस वातावरण में लौट गया। इसके भी जगह जगह पर आयोजन हुए। प्रधानमंत्री ने स्वयं उपस्थित होकर कलाकारों को बधाई दी। जिस पीढीने जंगे आजादी में हिस्सा लिया और अपने सर्वस्व को न्यौछावर कर दिया वह इतिहास की वस्तु बन गई है। आजादी के वातावरण ने नई उर्जा का संकेत तो दिया लेकिन सपने धराशायी हो गए। मोह भंग की हालत उपजी। जो पीढी आजाद भारत में जन्मी उसके लिए यह समर्पण और त्याग इतिहास की धरोहर ही था। उनके सामने इस इतिहास को धर देना एक अभिनव बात थी। नया प्रयोग था। इस दिशा में कलापथक को अभूतपूर्व सफलता मिली। रोंगटे खडे कर देनेवाले बलिदानी घटना प्रसंगों ने युवा पीढी को आजादी की जंग का सही परिचय कराया।

महाराष्ट्र का चैतन्य पुरुष राजा छत्रपति शिवाजी। उनके राज्यारोहण प्रसंग की तीनसौवीं जन्मगाँठ मनाई गई। कभी राजा के राज्याभिषेक प्रसंग पर ठेठ उत्तर से युवा कवि प्रतिभा के धनी भूषण आए थे। दख्खन के पठारों में उतर कर और उनकी वाणी का शंख गूँजता रहा था इस प्रदेश में इन पंक्तियों के साथ –

इंद्र जिमि जंभ पर बाडव सुअंब पर...
कृष्ण जिमि कंस पर...

राजा शिवाजी का स्मरण करनेवाला, मंत्रपूत पंक्तियाँ लिखने वाला यह राष्ट्र कवि भूषण का स्वर अलख जगा रहा था। राजा शिवाजी इस प्रदेश और हमारे देश का एक उत्कट, भव्य आदर्श है। अपनी कृतज्ञता की अंजुलि अर्पित करने के विचार से कलापथक ने 'शिवदर्शन' नाम से एक विशाल नृत्य-नाट्यमय प्रस्तुति अर्पित करनेका प्रण किया। प्रजापालक, न्यायनिपुण, स्वाभिमानी, चरित्रवान, स्वाधीनचेता राजा का चरित्र किसी किंवदंति से कम नहीं है। अपने आपमें तो यह एक मिथक ही है।

श्रेयनामावली

कलापथक के बढते कदम यों कार्यरत रहे। इस रंगयात्रा में अनेकोंने अनेक प्रकार से सहायता पहुंचाई है। अनेक मार्गदर्शक, हितैषी, सहायक, प्रोत्साहन देनेवाले, उपकार कर्ता कलापथक की अपनी संपदा है। आरंभिक काल से आज तक अपनी भूमिका समर्थतापूर्वक निभानेवालों में सर्वश्री भाऊसाहब रानडे, आवाबेन देशपांडे, सुधा वर्दे, लीलाधर हेगडे, वसंत बापट का नाम वरेण्य है। भाऊसाहब रानडे ने कलापथक का पालन पोषण किया, आवाबेन ने संयोजन, बापट तो कलापथक की मध्यवर्ती उर्जा ही रहे हैं। लीलाधरजी ने अपने कंठ से गीत-पोवाडों को सार्थकता प्रदान की है। व्यावहारिक दिशा को सँभाला है। सुधा वर्दे की चैतन्यशीलता ने नई दीप्ति जगाई है। श्रम सहयोग की नई-नई दिशाएं तलाशता कलापथक निरंतर अग्रसर रहा है।

कलापथक को सहायता पहुंचाने वाले मित्रों की सूची बडी लंबी है। सर्वश्री पु. ल. देशपांडे, जयवंत दलवी, लीलावती भागवत, व्यंकटेश माडगूळकर, वसंत सबनीस, दादा कोंडके, राजा मंगळवेढेकर, आत्माराम पाटील, शंकर पाटील, निळू फुले, राम नगरकर, ग. दि. माडगूळकर, मालतीबाई बेडेकर, सई परांजपे, प्रो. यार्दी, भिकू देवळेकर, भाल कोरगावकर जैसे अनेक स्वनामधन्य नामों की चर्चा की जा सकती है। संगीत क्षेत्र में भी अनेकों ने मदद पहुंचाई है। जिनमें सर्वश्री गोविंदराव सरदेसाई, वसंत देसाई, यशवंत देव, राम वढावकर, स्नेहल भाटकर, सलील चौधरी, पराशर देसाई, तुकाराम शिंदे आदि प्रतिभाएं प्रमुख हैं। गायन-वादन के क्षेत्र में सहायता करनेवालों में सर्वश्री हरीश पितळे, पार्वतीकुमार, सुधा ठक्कर, रमेश पुरव, सुदर्शन धीर इन नृत्य विशारदों के साथ-साथ प्रभाकर गोरे, रघुवीर तळाशीलकर, जुन्नरकर, श्याम आडारकर, सुंदर देसाई आदि कलाकारों का योगदान विशिष्ट माना जा सकता हैं।

जिन मित्रों ने अत्यंत परिश्रमपूर्वक आत्मीयता दिखाई और निःस्वार्थ रूप से सहयोग किया उनमें सर्वश्री श्रीरंग वरेरकर, श्याम पटवर्धन, नाना

डेंगळे, गंगाधर गवारे, सदानंद वर्दे, प्रमिला दंडवते, वासू देशपांडे के नाम स्मरणीय हैं। कलाकारों में सर्वश्री मधु कदंम, निळू फुले, राम नगरकर, दादा कोंडके, बापू देशमुख, जगन्नाथ आठवले, कुसुम कुलकर्णी, पद्मा काकनूरकर, मीरा दाभोळकर, सुधा ठक्कर, मेनका ठक्कर, मनोहर जोशी, शरद जांभेकर, उषा पाध्ये इन कलाकारोंने रसिक मन की अचूक थाह पाई है। भाऊ कदम एक बहु आयामी व्यक्तित्व के धनी रहे हैं। चित्र-शिल्प-नेपथ्य कला के वे आचार्य हैं।

अनेक महानुभावोंने आशीर्वाद देकर कलापथक का मार्ग प्रशस्त किया है। जिनमें सर्वश्री साने गुरुजी, जयप्रकाश नारायण, अशोक मेहता, रावसाहब पटवर्धन, अच्युत पटवर्धन, एस. एम. जोशी, नानासाहब गोरे, नाथ पै, मधु दंडवते, रामवृक्ष बेनीपुरी, डॉ. केसरकर इन्होंने सदा आशीर्वाद के फूल बरसाए हैं। भाऊसाहब बांदोडकर तथा सदानंद वर्दे का आशीष महत्त्वपूर्ण रहा है। भारत सरकार तथा महाराष्ट्र सरकार के साथ-साथ विविध सेवाभावी संस्थाओं में आंतरभारती ट्रस्ट, भाऊसाहब रानडे सन्मान कोष, साने गुरुजी आरोग्य मंदिर, बैंक ऑफ महाराष्ट्र, मुंबई महानगर परिषद की भूमिका विशिष्ट रही है।

विहंगमावलोकन

राष्ट्र सेवा दल की बहु आयामी स्वरूप चेतना का महत्त्वपूर्ण अंग कलापथक रहा है। अपने उद्दिष्टों की पूर्ति हेतु तथा विचार के प्रचार-प्रसार हित सेवा दल ने भिन्न-भिन्न साधनों की निर्मिति की जिनमें कलापथक का स्थान वरेण्य है। कलापथक के ही माध्यम से धर्मनिरपेक्ष राष्ट्रवादी दृष्टिकोण के साथ सामाजिक समता की व्रतस्थ संस्था के रूप में सेवा दल का काम देशभर में अभिनंदित हुआ। लोकरंजन से लोकशिक्षा कलापथक की राह रही। इस लक्ष्य को ध्यान में रख कर गीत, नृत्य, समूहस्वर, पोवाडा, लोकनाट्य, गण-गौळण, वग आदि अनेकानेक माध्यमों से जन मन रंजन करते हुए कलापथक ने देश की अनेक समस्याओं के संबंध में प्रभावी आत्ममंथन जगाया है। समूह गीत योजना को कलापथक की खासियत माना जा सकता है। प्रेरणादायी गीतों के माध्यम से सेवा दल विचारनिष्ठ संस्कार क्षमता का प्रभाव तरुणाई पर प्रभृत मात्रा में रहा। उत्कट भावना, प्रखर

देशभक्ति, स्पष्ट विचार दर्शन, एवं तेजस्वी शब्द संहिता की चतुःसूत्री के आधार पर इन गीतों की रचना की गई है। एक सूर, एक लय, एक ताल की त्रिवेणी के कारण सेवादल कार्य को एक स्वतंत्र महत्त्व प्राप्त हुआ है। ध्येयनिष्ठ जीवन की आनंदप्रद प्रेरक अनुभूति युवा वर्ग के कंधे पर सपना बन विलसित हुई। राष्ट्रवादी विचारधारा के प्रभाव प्रवाह के कारण स्वाधीनता पूर्व और स्वाधीनता के बाद का महाराष्ट्र बलशाली बन पाया। स्वाधीनता के संघर्ष काल में आंदोलनकारी भूमिका को रेखांकित करनेवाले कलापथक ने आजाद भारत में विचार प्रणाली का शुभंकर संस्कार लोकजीवन पर अंकित करने के कार्यक्रम में कलापथक की भूमिका अविस्मरणीय है। पारंपरिक माध्यम को ध्यान में रखते हुए उसमें नया पन जोडकर उन्हों ने एक समकालीन आशय की सृजना की है। राजनीतिक संदर्भ देकर सामाजिक विषमता पर कोडे बरसाए हैं। राजनीतिक दंभ की पोल खोली है। सामाजिक ढोंग की खिल्ली उडाई है। अंधश्रद्धा, गलत मान्यताएँ, जातिव्यवस्था के खोखले दुर्ग पर जम कर धावा बोला है। मंत्रमुग्ध करनेवाले विविध साधनों का उपयोग करते हुए कलापथक ने निर्मिति के श्रेष्ठ मूल्यों का सदैव आदर किया है। महाराष्ट्र की संस्कृति, भारतीय एकात्मता, शिवराय की उदात्त जीवनगाथा, स्वाधीनता संग्राम के रोमांचक पर्व का अंकन-चित्रण कलापथक की लब्धि है।

कलापथक के कारण जिला स्तर पर आर्थिक सहायता कर पाना संभव हो सका। कलापथक अर्थार्जन का स्वयंभू रंगपीठ बना। आज भारतीय कला जगत में भरतनाट्यम् तथा ओडिसी नृत्य शैली में अग्रगण्य नृत्यांगना क्रमशः माणिक अंबिके और झेलम परांजपे के आरंभिक पदन्यास की रूनुक झुनुक कलापथक के ही मंच पर सुनाई दी थी। व्यावसायिक रंगमंच तथा सिनेमा के क्षेत्र में अपना सिक्का जमानेवाले अभिनय के दिग्गज कलाकारों में राम नगरकर, निळू फुले, स्मिता पाटील के गुणों का आरंभिक आविष्कार कलापथक में ही झंकृत हुआ था। एक आनंदयात्रा सजी, अनेकोंने अपना योगदान दिया। राष्ट्र सेवा दल का कलापथक एक कला संपन्न उल्लास रहा।

■

सेवा दल का धर्म

राष्ट्र सेवा दल के सैनिकों ने स्वतंत्रता संग्राम में बहुत हिस्सा उठाया है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद नए समाज निर्माण के लिए युवकों को संगठित करने का काम सेवादल निष्ठापूर्वक कर रहा है।

साने गुरुजी की प्रेरणा से सेवाद्वारा समाज-जागृति का व्रत सेवादल ने स्वीकारा है। राष्ट्र सेवा दल ने प्रखर राष्ट्रनिष्ठा, जनतंत्र कार्यपद्धति, समाजवादी शील, जातिविहिन मनोवृत्ति और विज्ञाननिष्ठा को आत्मसात करने का निश्चय किया है।

प्रबोधन, रचना और संघर्ष इन मार्गों से नए समाज का निर्माण करना सेवा दल का धर्म है। इस स्वीकृत काम में सेवा दल हमेशा आगे बढता रहे, यही मेरी शुभकामना।

— जयप्रकाश नारायण

मुझे अभिमान है

अपने जीवन में मुझे परिस्थितियों के अनुसार कई क्षेत्रों में कुछ कामों का दायित्व संभालना पडा। इनमें से कुछ में मुझे समय-समय पर लौकिक दृष्टि से विफलता भी मिली। परंतु जिन दो क्षेत्रों में मुझे बहुत कुछ संतोष मिला है, उनमें से पहला है राष्ट्र सेवा दल और दूसरा है मजदूर आंदोलन। इन दोनों क्षेत्रों में मुझे अपने काम का अभिमान भी है। राष्ट्र सेवा दल से ऐसे सैकडों कार्यकर्ता निकले, जो सच्चे अर्थ में राष्ट्रीय एकात्मता के पक्षधर हुए और आज भी उसी भूमिका पर खडे हैं। जब मेरे मनःचक्षुओं के सामने वे सारे कार्यकर्ता आते हैं, तब मेरा मन प्रफुल्लित हो उठता है।

— एस. एम. जोशी

राष्ट्र सेवा दलके दलप्रमुख

*

एस्. एम्. जोशी
१९४१ से १९४३
१९४७ से १९५४

वि. म. हर्डिकर
नवं.१९४३ से फेब्रु. १९४७

भाऊसाहेब रानडे
एप्रिल १९४७ से नवं.१९४७
१९५४ से नवं. १९६१

नाना डेंगळे
नवं. १९६१ से

डॉ. रं. नी. अंबिके
जन. १९६४ से १९६५

राष्ट्र सेवा दलके अध्यक्ष

यदुनाथ थत्ते
१९७० से १९७३

डॉ. बापूसाहेब काळदाते
१९७३ से १९७६

लीलाधर हेगडे
१९७६ से १९७९

सुधाताई वर्दे
१९७९ से १९८१
१९९५ से १९९७

शामराव पटवर्धन
१९८१ से १९८३ - १९८५

पन्नालाल सुराणा
१९८५ से १९८८
१९९२ से १९९५

प्रकाश कांबळे
१९९७ से २००१

भाई वैद्य
२००१ से आजतक

सेवा दल सैनिक
हुतात्मा शिरीषकुमार

सेवा पथक

सेवा पथक - संकल्पना साने गुरुजीकी
सहभाग जयप्रकाशजीका

राष्ट्र सेवा दल १९७४
कलापथक रजत जयंती

अंबिकापूर (विदर्भ) श्रमसंस्कार शिबिर

लोकरंजनसे लोकशिक्षा - कलापथक

आजादी की जंग

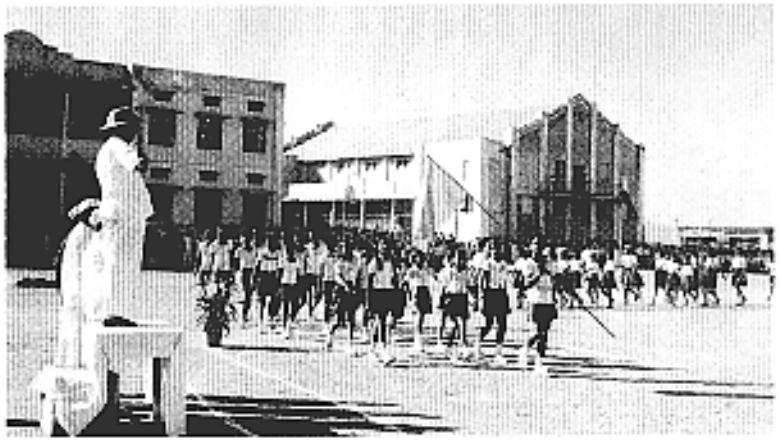

मानवंदना

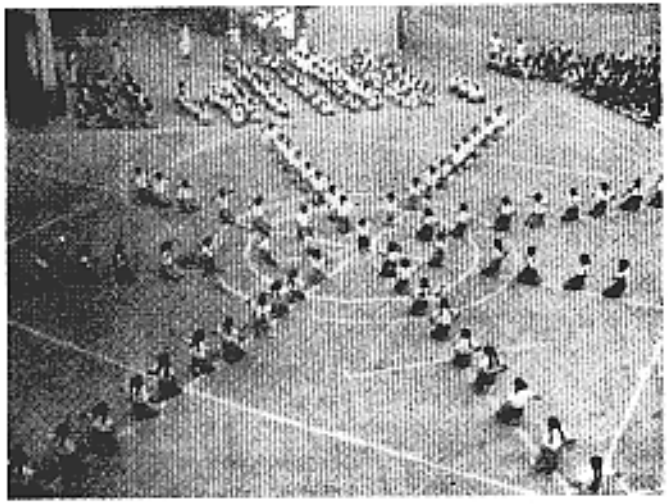

सेवा दल सैनिकोंका रोमांचकारी मैदानी प्रदर्शन

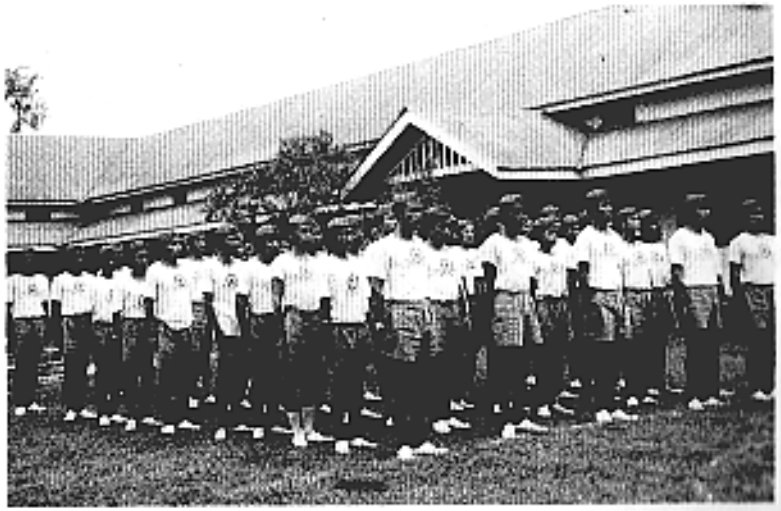

मणिपुर शिविर

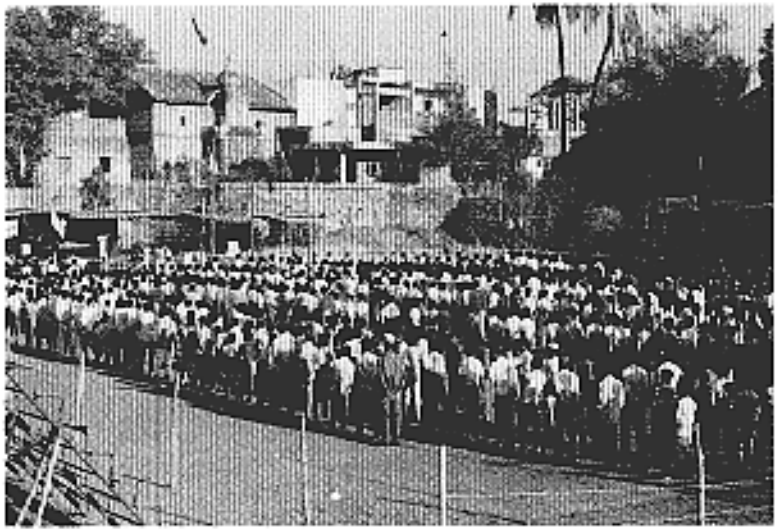

क्रिडा सम्मेलन - कुरुंदवाड

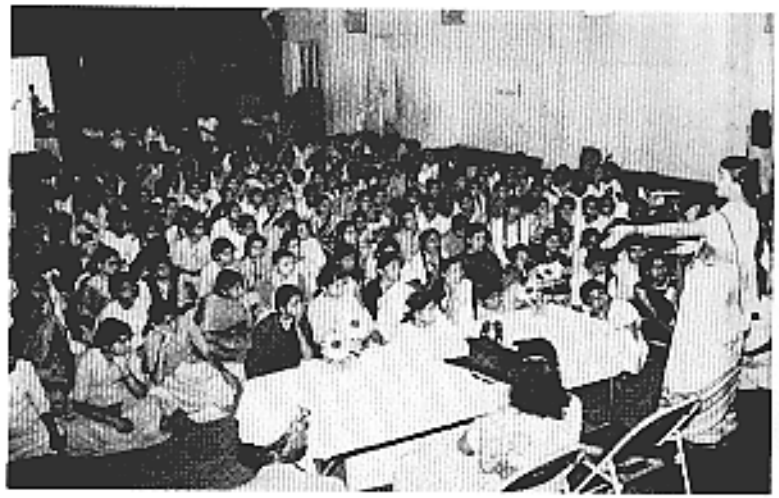

युवती शिविर में मार्गदर्शन - मृणालताई गोरे

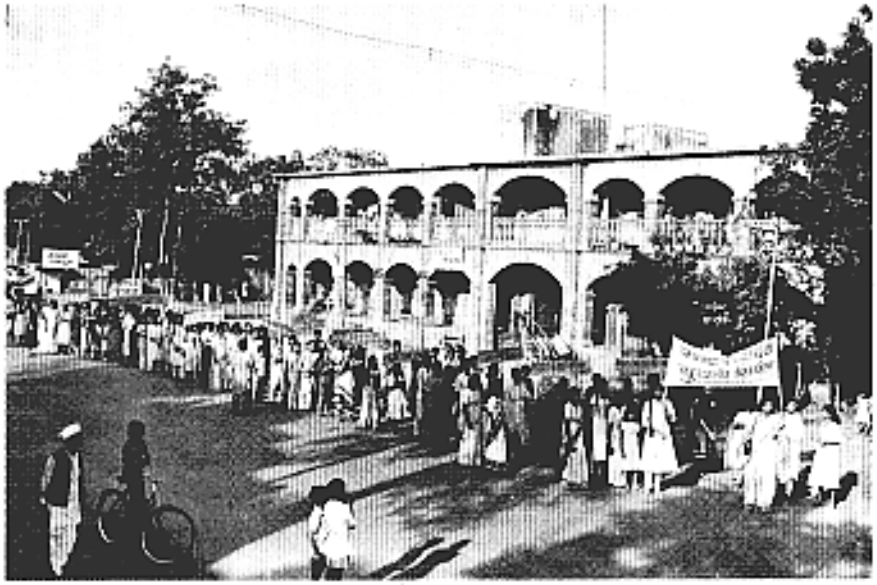

श्रीरामपुर - युवती शिविर में आयोजित रॅली

राष्ट्र सेवा दल आयोजित आंतरभारती राष्ट्रीय एकात्मता शिविर

वंश द्वेष विरोधी अभियान मार्गदर्शन - भाई वैद्यजी

युसी - एशिया पॅसिफिक सेमिनार

अभ्यास शिविर में मार्गदर्शन - नानासाहब गोरे

सुवर्ण महोत्सव सम्मेलन में सेवा दल ज्योतिका स्वागत करते हुए
शिरुभाऊ लिमये, बाबा आढाव

युवा संकल्प अधिवेशन - चाळीसगाव

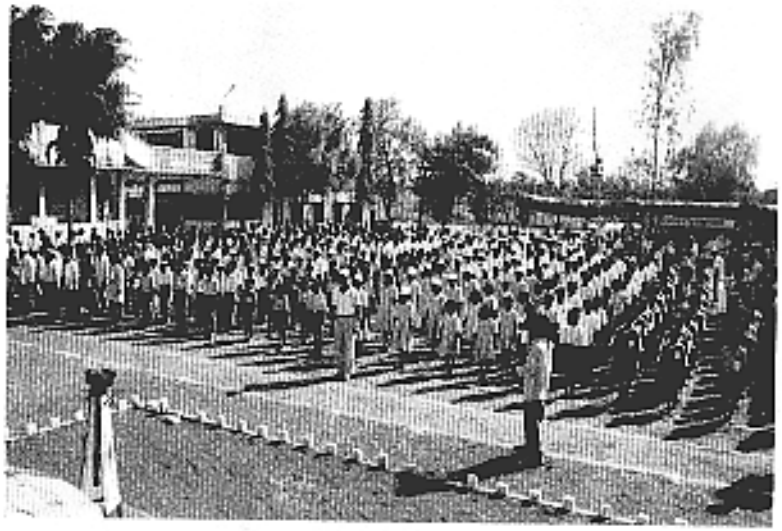

हीरक महोत्सव प्रारंभ सम्मेलन - उस्मानाबाद

साने गुरुजी जन्मशताब्दी अभिवादन मेलेमे स्मारिका का विमोचन करते हुए
कार्यकारी विश्वस्त सुधा वर्देजी

आपलं घर वसतीगृहके सामने दांडीयानृत्य करते हुए छात्रगण

किल्लारी भूचालके बाद आपदग्रस्त विद्यार्थिओंको शिक्षा साहित्य प्रदान करते हुए भूतपुर्व प्रधानमंत्री मा. चंद्रशेखरजी

किल्लारी भूचाल - नवनिर्माणका पौधा आदरणीय बाबा आमटेजीके हाथोंसे

कच्छ भूचाल - सेवा दल सैनिकोंद्वारा आपदग्रस्तोंको मदद

कच्छ भूचाल - आपदग्रस्तोंको सेवा दल द्वारा निर्मित घरोंकी चावीयाँ प्रदान

कारगिल लडाईमें हुतात्मा सैनिकोंके परिवारके लिए निधी प्रदान करते हुए सुरेश दिळेकर, भाऊ कदम

अयोध्या संवाद यात्रा कॉलिज युवकोंसे बातचित - प्रा. सुभाष वारे

युवती - महिला निर्धार मेलेमे मार्गदर्शन - सांसद सदस्य शबाना आजमी

॥ अध्याय पाँचवाँ ॥

ग्रामीण पुनर्रचना का अभिनव प्रयोग

साने गुरुजी सेवा-पथक

समाजवाद को राष्ट्र सेवादलने एक जीवनप्रणाली के रूपमें स्वीकृत किया है। इसलिए रचनात्मक कार्योंपर उसका ध्यान अधिक रहा। इसका मतलब वह संघर्ष से अपने आपको बचाता रहा ऐसा नहीं। उल्टे जनता के, भले के लिए वह हर लडाई हर मोर्चेपर अग्रभागमें रहा। संघर्ष और रचना उसके सारे कार्यक्रमोंकी धूरी रही है। गांधीजी के विधायक कार्यक्रमोंपर उसका पूरा भरोसा था। आज भी है।

सन १९५० के मई माहमें १ से १० तक सांगलीमें सेवादलकी ओरसे एक शिविर लगाया गया। उसमें सारे महाराष्ट्र से सैनिक आये हुए थे। शिविर समाप्ति के दिन पूज्य साने गुरुजीका अविस्मरणीय भाषण हुआ। उन्होंने कहा, 'स्वतंत्रता के बाद एक नया भारत निर्माण करना है। कौन इसकी जिम्मेदारी लेगा? यह काम तो युवकही कर सकते हैं। सामूहिक परिश्रमों के द्वारा हम गांवोंमें रास्ते बना सकते हैं। पाठशालाएं खडी हो सकती है, तालाब बनाए जा सकते हैं, इतनाही नहीं तो सारे ग्रामजीवनकी पुनर्रचना की जा सकती है। बंकिमचंद्र ने इस भारत भू का वर्णन 'शस्य शामलाम् सुजलाम् सुफलाम्' इन शब्दोंमें किया है। बिना पसीना बहाए यह भूमि सुजलाम् सुफलाम् कैसे होगी? सेवादलने स्वतंत्रता युद्धमें जान हथेली पर ले लडनेवाले हजारों बहादुर नौजवानों को तैयार किया। लेकिन अब लाठी, काठी, कवायद, मोर्चा से काम नहीं चलेगा। अब तो यह जरूरी है कि सेवादल के सैनिक छोटे छोटे घुमन्तु श्रमपथक तैयार करे। गांव गांव जाकर गांवके लोगों की सहायता से गांव के लिए अत्यावश्यक होनेवाले काम

अपनी मेहनतसे पूरे करें। उत्पादन बढाए। सहयोग, सहकार और सामूहिक श्रमसे एक नया समृद्ध जीवन निर्माण करें। सरकार सारे काम नहीं कर सकेगी। सभी बातों के लिए सरकारपर निर्भर नहीं रहा जा सकता। मैं चाहता हूं कि यह काम सेवादल करें। इस विधायक सेवा की आज सबसे ज्यादह जरूरत है।"

गुरुजीकी बात हर दिलपर एक चोट कर गयी। उनके उस भरोसे को सच करना था। एक नयी राह चुननी थी।

सांगली के इस शिविर के बाद तुरंत सातारा जिलेके खटाव गांवमें पहला श्रमशिविर लगा। इसमें सौ सैनिक शामिल हुए। गांव के किसानों का सहयोग मिला और देखते देखते सारे गांव का नक्शा ही बदल गया। श्री.एस.एम.जोशीजीने वह कार्य देखकर प्रसन्नतासे कहा 'हर गांवमें युवकोंकी सुप्त-शक्ति निहित है, उसे जगानेका कार्य राष्ट्र सेवादल के कार्यकर्ताओंको ही करना चाहिए।" गुरुजीने जो सपना देखा था वह सच में बदल रहा था।

गुरुजीने सांगली शिविर में और एक बातका जिक्र किया था। वह थी 'आंतरभारती' की। आंतरभारती के माध्यमसे वे भाषा-भेद, प्रांतभेद और संस्कृतिभेद के भी परे जाकर एक ऐसी भारतीयता के दर्शन करना चाहते थे, जो सभी को अपने भीतर समाविष्ट कर सही मानेमें विविधतामें एकता का अनुभव करा सके। वे द्रष्टा थे। यह जानते थे कि अगर तरुणाई ठान लेती है और सही दिशामें आगे बढती है तो हर असंभव को संभव बना सकती है। हम उनकी 'आंतरभारती' संकल्पनापर आगे विचार करेंगेही।

११ जून १९५० को साने गुरुजीने अपनी जीवन-यात्रा समाप्त की। वे राष्ट्र सेवादल के प्राण थे। उनकी मृत्यु न केवल सेवादल के सैनिकोंको वरन् महाराष्ट्र के हर सहृदय व्यक्तिको जडमूलसे हिला गयी। राष्ट्र सेवा दल ने यह तय किया कि उनकी स्मृति में एक स्मारक खडा किया जाय। 'आंतरभारती' की संकल्पना को पूरे देशमें फैलाने के लिए निधि इकट्ठा करें और एक वर्ष महाराष्ट्र के विभिन्न गांवोंमें जाकर सेवा तथा निर्माण कार्य करनेके लिए 'साने गुरुजी सेवा-पथक' चलाया जाय। इस सेवापथक की जिम्मेदारी श्री.नाना डेंगळेजी को सौंपी गयी। यहांसे शुरू हुई ग्रामीण पुनर्रचनाकी एक अभिनव यात्रा। इस कार्य के लिए पूरा एक साल देनेवाले

कार्यकर्ता थे सर्वश्री नाना डेंगळे, दगडू बरीदे, राजा मंगळवेढेकर, मृगराजेंद्र रांगणे, शेख मुसा, गोविंद नायडू, रंगा कांबळे, सरला तुळपुळे, रेशमा पाटील, अक्काताई पाटील, मामा सुळे, प्रमिला नरवणे, राम चिटणीस, भालेकर, प्रभाकर अधिकारी, बाबू जाधव, बाळू जाधव, माळी मास्तर, बाळ खेर, भिकू ठाणेकर, रणदिवे आदि। इस सेवा-पथक को मार्गदर्शन मिल रहा था श्री.एस.एम.जोशीजी और श्री.भाऊसाहब रानडे का। नाना डेंगळे इसका सफल नेतृत्व कर रहे थे और उनके प्रयत्नोंके कारण धीरे धीरे सेवा-पथक एक आंदोलन के भीतर परिवर्तित होता जा रहा था। महाराष्ट्र के कई केंद्रोंपर काम शुरू हुआ और हजारों युवक-युवतियां इस कार्यमें जुट गयी। सांगली तथा खटावके शिविरोंमें नंदुरबारके ज्येष्ठ सेवादल कार्यकर्ता पीतांबर सरोदेजी शामिल थे।

प्रारंभ के अनुभव अलग थे। गांव के लोग शहरोंसे आये हुए इन युवक-युवतियों को संदेह की दृष्टिसे देखते। कुछ लोग उनकी खिल्ली भी उडाते। पर जब इन युवक-युवतियोंको कुदाल-फावडे-तसले लेकर बिना रुके घंटो मेहनत करते हुए उन्होंने देखा तो माहौल बदलता गया। गांव के लोग– पुरुष, महिलाएं, बच्चे– श्रमकार्यमें हाथ बंटाने लगे। भाईचारा बढता गया। शहर के बच्चोंको श्रम का महत्त्व समझमें आया, गांव के लोग एक नयी जीवनशैलीसे परिचित होते गये।

संगठन को कर्तृत्व की, नवनिर्माण की एक नयी राह मिली थी। सेवादल के लगभग पचास सैनिक पूरे सालभर इस कार्यमें लगे रहे। महाराष्ट्र और कर्नाटक के विभिन्न स्थानोंपर इन कार्यकर्ताओंकी प्रेरणासे श्रम-कार्यो की एक शृंखला बनी।

भारत के स्वतंत्रता आंदोलनमेंभी हमें ग्राम-जीवन को निकटसे समझने की ललक दिखाई देती है। गांधीजी के लिए सारे रचनात्मक कामोंकी प्रयोगशाला मुख्यतः गांव ही था। विनोबा ने भूदान आंदोलन शुरू किया तब उसके केंद्रमें गांव के बे-जमीन लोग अधिक थे। भारतमें ग्रामस्वराज्य हो यह गांधी और विनोबा दोनोंका सपना था। सेवा-पथक के माध्यम से जो काम स्थान-स्थानपर सेवादलने किये वे इस ग्रामस्वराज्य की नींव को पुख्ता करनेवाले काम थे। जयप्रकाशजीने कभी यह कहा था कि समाजवाद याने ९० फी सदी व्यवहार और १० फी सदी सिद्धांत है। सेवा-पथक का सारा

काम व्यवहार की इस ठोस भूमिपर खडा था। हम सरसरी निगाहसे भी उन कामोंपर नजर डाले तो हमें इस बात का भरोसा हो जाएगा।

खटाव के बाद खानदेश के शिंदखेडा तहसील के चिलाणे गांवमें २७५ सेवादल सैनिकोंने गांववालोंके साथ मिलकर चिलाणेसे सिंदखेडातक की सडक बनाई। लगभग १६ फिट चौडी और डेढ फिट ऊंची यह सडक एक मील लंबी थी। काम पूरा हुआ तो गांववाले भी बहुत खुश हुए, क्योंकि उन्हें जानेकी सुविधा हो गयी थी।

तळवडे

साने गुरुजी सेवा-पथक का शुभारंभ महात्मा गांधीकी जन्मतिथि २ अक्तूबर १९५० को, पुणे जिलेके 'तळवडे' नामक गांवमें श्री.रावसाहब पटवर्धनजी की उपस्थितिमें हुआ। तळवडे गांव संत तुकाराम महाराज के देहू गांवसे दो मील की दूरीपर है। गांव का लगभग ढाई मील का रास्ता बनाना था। गांवमें एकता थी नहीं। सहयोग न के बराबर। पर सैनिकोंने हिम्मत नहीं हारी। सुबह-शाम काम चलता रहा। सैनिकोंके परिश्रम देखकर अंतमें लोगोंका दिल पसीजा। पांच सप्ताह के बाद काम पूरा हुआ और जिलाधिकारी यार्दीजी की कार नये रास्तेसे गांवमें आयी। इस रास्तेने गांववालों के दिलभी जोड दिये।

तळवडे में सैनिकोंकी जो 'शिविर-शैली' थी वह भी गौर करने लायक है। वे एक मंदिर के अहाते में और एक बाडेमें रहते थे। खान-पान की व्यवस्था, रसोई बनाना, परोसना, पानी भरना, बर्तन मांजना, सफाई करना आदि सारे काम वे ही करते। सुबह का सारा समय श्रम-कार्यमें जाता था। दोपहरमें बच्चोंसे खेलना, उन्हें तथा गांववालोंको गीत सीखाना, कहानियां कहना, पढना या किसी विषयपर चर्चा करनेमें गुजरता। रातमें आमसभा होती। लोगोंको समाचार-पत्र पढकर सुनाये जाते। कलापथक के विभिन्न कार्यक्रमोंके माध्यम से लोगोंका मनोरंजन किया जाता।

आचार्य शं.द.जावडेकर, शंकरराव देव जैसे नेताओंने तळवडे शिविर को खासकर भेंट दी। काम का मुआयना किया। शिविर की लगभग यही शैली सर्वत्र रही। सेवापथक इसकी जी-जानसे कोशिश करता कि गांववालोंपर उसका किसी प्रकारका बोझ न पडे।

शिरोली

पुणे जिलेमें जुन्नर से तीन मिलकी दूरीपर यह गांव है। रहनेवाले लोगोंने अतिक्रमण कर पूरा रास्ता ही मानो निगल लिया था। नवंबर का महिना और कडाकेकी ठंड। काममें सभी ओरसे रुकावटें आ रही थीं। पर धीरज के साथ सैनिकोंने काम शुरू किया और २४ दिनकी लगातार मेहनत से पूरा रास्ता नया बना डाला। आखरी तीन-चार दिनोंमें रास्तेके कामपर चालीस बैलजोडी और दो सौ स्त्री-पुरुष काम कर रहे थे। रातको लोकरंजन के माध्यमसे जो लोक-शिक्षण का प्रयोग किया जाता, उसमें हजारों लोग उपस्थित रहते थे। श्री.अण्णासाहब सहस्रबुद्धे, अच्युतराव पटवर्धन, शकुंतलाबाई परांजपेने शिरोली आकर सैनिकोंको शाबाशी दी।

वाघबिल

ठाणे जिलेमें वाघबिल छोटा-सा गावं है। वह ठाणे-घोडेबंदर रोडसे केवल एक मीलकी दूरीपर था। फिर भी वहाँतक जाने के लिए कोई सडक नहीं थी। गांव अफरात चावल उगाता था और सारी बस्ती आगरी समाज की थी। पूरे गांवपर गरीबी का साया पडा था। पर लोगोंमें सद्भाव और भाईचारे की कमी नहीं थी। विशेषता यह कि पुरुषोंके कंधोंसे कंधा मिलाकर महिलाएं भी कामपर डट जाती। काम शुरू हुआ तो गांव के सभी तबकों के लोग मदद के लिए आ गये। पब्लिक वर्क्स डिपार्टमेंट, लोकल बोर्ड और हिंदुस्थान कन्स्ट्रक्शन ने काम के औजार देकर मदद की। सरकारी आकडोंके अनुसार अठारह हजार रुपयोंका काम था। सेवा-पथक ने उसे सात हजारमें पूरा किया।

वडजई

पश्चिम खानदेश के धूलिया शहरसे पांच मीलकी दूरीपर वडजई गांव है। यहाँ कुल सत्रह दिनोंतक (३० जनवरी १९५१ से १६ फरवरी १९५१) सेवादल सैनिकोंने और गांववालोंने मिलकर एक मीलका रास्ता बनाया।

तासखेड

जलगाव जिलेके अमलनेर तहसील में तासखेड है। अमलनेर से केवल तीन मीलकी दूरीपर यह गांव था। पर ठीकठाक रास्ता था नहीं। बसें

मुश्किलसे एक बैलगाडी जा सके ऐसी उबडखाबड रपट थी। दूसरे, चोर-उचक्कोंका डर हमेशा बना रहता। वे मारपीट करनेसे भी बाज नहीं आते। ऐसी स्थितिमें काम करना कठिन था। पर सेवापथक ने काम शुरू किया। लगभग छ फर्लांग का रास्ता बनाना था। धीरे धीरे पास पडोस के दस-ग्यारह गांवके लोग हाथ बंटाने आ गये। उनमें बुरका पहननेवाली बहनें तक थीं। जिस दिन काम समाप्त हुआ उस दिनकी सभा में दो हजार लोग थे, और उनमें पांचसौ महिलाएं थीं।

नेरल

कोंकण के नेरल में जमकर बारिश होती है। पर वहां गर्मी के दिनोंमें पीने के लिये पानी नहीं मिलता। पैसे दो और पानी खरीदो! गांव के पास एक तालाब था पर पूरा कीचडसे भरा हुआ। ढोर-डंगर उसमें नहाते रहते। १५ अप्रैल १९५१ से २९ मई १९५१ तक लगातार पैंतालीस दिन सेवापथक के सैनिकोंने तनतोड मेहनत की। उनके परिश्रम को देखकर नेरल गांवके पढे लिखे नौजवान, वयस्क महिलाएं, आसपास के आदिवासी भी मदद के लिए आ गये। तालाबसे लगभग १४०० ब्रास कीचड निकला। पानी साफ हो गया और गांववालोंकी एक बहुत बडी समस्या हल हो गयी। सेनापति बापट जैसे महापुरुष भी इस श्रम-कार्यमें शामिल हुए थे।

वनसगाव

अप्रैल १९५१ में नासिक जिले के वनसगांव में सैनिकोंने वनसगाव से कोरमगाव तक का चार मीलका रास्ता बनाया। नासिक जिलेके सेवा दल कार्यकर्ताओंने इस कार्यमें काफी सहयोग दिया।

गिरगांव-शिरगांव

बेलगांव जिले के ये गांव चिंचली गांवके पास थे। वहां से चिंचली तक का साढेतीन मीलका रास्ता नहीं था। अचरज की बात तो यह थी कि लोग चौदह मीलकी दूरी तय कर चिंचली जाते थे। पर कभी किसीने साढेतीन मीलका रास्ता बनानेकी बात सोची नहीं। गिरगाव के कुछ समासजेवी नागरिकोंने सेवापथक को निमंत्रित किया। १ अप्रैल १९५१ से २६ अप्रैल

१९५१ तक पथका का काम चला और साढेतीन मीलका का रास्ता बनकर तैयार हो गया। इस कार्य से कर्नाटक में सेवापथक का प्रवेश हुआ।

मई १९५१ में महाराष्ट्र एवं कर्नाटक के १० स्थानोंपर सेवा-पथक कार्यरत रहा। तळवडे (जि.पुणे) शेणीत (जि.अहमदनगर) सोनगाव (जि.सोलापर), मथाणे (जि.ठाणे), कोचूर (जि.पूर्व खानदेश), येळाळी (जि.सातारा), उदगाव (जि.कोल्हापुर), वन्नाळी (जि.कारवार), काकती (जि.बेलगाव), मूर (जि.रत्नागिरी).

- शेणीत गांवमें दस मीलका रास्ता पहाडी इलाखे में बना।
- सोनगांव में ८३ सेवा दल सैनिक और ९० गांववालोंने मिलकर चार फर्लांग का रास्ता बनाया।
- मथाणे में चार फर्लांग के रास्ते की मरम्मत की गयी।
- कोचूर में सावदा रेल्वे स्टेशन तक का दो मीलका रास्ता बनाना था, पर गांवके कुछ गुंडे अडंगे डाल रहे थे। उपद्रव काफी बढा तो श्री.एस.एम.जोशीजी को सात दिनका अनशन करना पडा। उसका परिणाम हुआ। सारे गांववालोंने और सैनिकोंने मिलकर काम पूरा किया।
- येळाळी में एक बडे तालाब की सफाई की गयी। उद्‌गांव में भी तालाब की सफाई का काम किया गया।
- वन्नक्की गांवमें तीन फर्लांग का रास्ता बना।
- काकली गांवमें ३०० एकड भूमि का सिंचन हो सके ऐसी नहर बनाई गयी। हरिजन बस्तीमें सफाई का काम किया गया।
- मूर में सवा मील रास्ते की मरम्मत की गई।

११ जून १९५१ की रॅली

११ जून १९५१ को पूज्य साने गुरुजी के देहावसान को एक साल पूरा हो रहा था। २ अक्तूबर १९५० से शुरू हुआ सेवा-पथक का अभियान लगातार सालभर चलता रहा। अनेक जिलों में काम हुआ। ७०० से ज्यादह सैनिक किसी न किसी रूपमें इस अभियान के साथ पूरे वर्षभर जुडे रहे। महाराष्ट्र और कर्नाटक में उत्साह का वातावरण निर्माण हुआ। श्रमकार्य के साथ साथ कई सांस्कृतिक और सामाजिक प्रवृत्तियाँ चल रही थीं। सेवा दल के सभी छोटे-बडे नेतागण कही न कही किसी न किसी काम के साथ जुडे

रहते। उनकी उपस्थितिसे एक माहौल बन जाता। इन सारे कामोंमें महिला कार्यकर्ताओंका भी बहुत बडा हिस्सा रहा।

११ जून १९५१ को गुरुजी के स्मृति-दिनके अवसरपर मांजरी (जि.पुणे) में एक विशाल रॅली का आयोजन किया गया। इस रॅली के अध्यक्ष थे श्री.रावसाहब पटवर्धन। श्री.अण्णासाहब सहस्रबुद्धे, एस.एम.जोशी, भाऊसाहब रानडे मार्गदर्शन के लिए पधारे थे। श्री.नाना डेंगळे ने सालभर किये कार्यक्रमोंका लेखाजोखा प्रस्तुत किया।

इस पूरे सालभर सेवा-पथक के कामोंकी धूम रही। गांव और शहर को सभी स्तरोंपर जोडनेमें सेवापथक को सफलता मिली थी। विचार को कर्मके साथ जोडने का यह प्रयोग सर्वथा सफल रहा। आगे चलकर कई योजनाओंने श्रम-कार्यकी इस पद्धतिका स्वीकार किया। राष्ट्रीय सेवा योजनाओंके मूलमें सेवा-पथक के कामोंकी ही प्रेरणा थी। आगे चलकर कुदाल-फावडा सेवादल के प्रतीक बन गये। सेवादल के सैनिकोंको ग्रामीण क्षेत्रमें काम करनेका एक नया अनुभव मिला। युवक-युवतियोंपर श्रम का संस्कार हुआ और वे सर्वसामान्य जनता के प्रश्नोंकी ओर अधिक सजग दृष्टिसे देखने लगे।

बेळगाव-कारवार के क्षेत्रमें काम करनेवाले कार्यकर्ताओं तथा स्वयंसेवकोंकी समझमें एक बात आयी कि एकसे अधिक भाषाओंका ज्ञान समाजसेवकोंके लिए अत्यावश्यक है।

नया साल – नयी उमंग

नये सालका काम नयी उमंग से शुरू हुआ। अब केवल छोटे गावोंमेंही नहीं, दुर्गम पहाडी इलाकों तक सेवा-पथक के कार्यकर्ता जाने लगे। जलगाव-जामनेर-पाचोरा की पहाड पट्टीमें 'निंबामती' नामका छोटा-सा देहात है। बस्ती लमाण और बंजारों की। गांव तक जानेका कोई रास्ता नहीं। एक पगडंडी थी। लोग उसीसे आते-जाते थे। रास्ता ही नहीं था इसलिए गांव के कई लोगोंने 'मोटर' तक नहीं देखी थी। सेवापथक ने २१ जनवरी १९५२ से २४ फरवरी तक श्रम-कार्य किया। गांवके ३१० और सेवादल के ६० सैनिकोंने मिलकर जंगल-पहाडोंसे गुजरता हुआ रास्ता बना डाला। इस बार एक विशेष बात हुई। श्रमकार्यमें लमाण पुरुषों के साथ लमाण महिलाएं भी आती थीं। उनकी पोशाक, गहने, शारीरिक स्वच्छता आदिके बारेमें भाऊसाहब रानडे बहुत चिंतित रहा करते थे। वे चाहते थे कि इन महिलाओंका रहन सहन बदले। अंततः उन्हें और सेवादल सैनिकोंको भी इस कार्यमें सफलता मिली। लमाण युवकोंने अपने लंबेलंबे बाल कटवाए। लमाण महिलाओंने अपनी पोशाक बदली। शारीरिक स्वच्छता के लिए कसमें खाईं। जन-जागरण और परिवर्तनका यह एक अनोखा प्रयोग था।

पर्नावी (जि.ठाणे) तथा तांदुळवाडी, (जि. पुणे) में सेवापथक ने तालाब की टूटी हुई दीवार ५२ दिनोंके अथक परिश्रमसे दुबारा खडी की। पास पडोस के ५०-६० कुओंमें उस कारण फिरसे पानी भर आया।

उंड्री (जि. पुणे) पुणे शहर के वानवडी के पास का एक छोटा-सा कस्बा है। वहांपर रास्तोंकी मरम्मत करनी थी। ५५ सेवादल सैनिक और ११७ गांववालोंने मिलकर २० दिनोंतक काम किया। इस केंद्रपर एक अमरिकन महिला मिस् पॅट्रिशिया बीस दिनोंतक रही। आगे चलकर उसने कै.विनोबाजी के भूदान-आंदोलनमें हिस्सा लिया। फिलहाल वह अमरिकामें ऐसाही सेवाकार्य कर रही है।

१९५२ में सरकारने समाज विकास योजनाका कार्य शुरू किया। सेवा-पथक तो प्रारंभसे इस कार्यमें लगा हुआ था। उसने इस योजनामें अपना संपूर्ण सहयोग दिया। इस योजनाकी सलाहकार समितिपर श्री.रावसाहब पटवर्धन की नियुक्ति हुई थी। उनकी सूचना के अनुसार विकास अधिकारी श्री. डे ने १२ फरवरी १९५२ को श्री.भाऊसाहब रानडेजीको दिल्ली बुलाया। भाऊसाहबने डे के सामने सेवापथक की सारी योजना रखी। डे उससे प्रभावित अवश्य हुए, पर उन्होंने कहा कि 'मैं इसपर विचार करूंगा।"

अक्तूबर १९५२ में प्रजा समाजवादी दलके मजदूर नेता श्री.बगाराम तुळपुळेजीने सेवापथक में काम करनेका निर्णय लिया और कुछ महिनोंतक वे लगातार काम करते रहे। श्री.बगाराम तुळपुळे और श्री.नाना डेंगळेने कर्जत विकास विभागमें घूमकर अध्ययन किया, कई कार्यकर्ताओंसे मिले, ग्रामपंचायत के सदस्योंसे चर्चा की, वहां के सारे विकास कार्य का मुआयना किया। इस अध्ययनसे विकास खंड में चलनेवाले कार्य की दिशा ज्ञात हुई। उस विभाग में सेवापथक किस प्रकारके सेवा-कार्य का चुनाव करे इसका भी बोध हुआ।

अक्तूबर १९५२ से १९५३ तक कुलाबा जिलेके वैजनाथ, भडवल, और नरसापुर में श्रमकार्य किया गया। बैजनाथ में पच्चीस दिन काम चला और ३००० किट लंबा कॅनॉल बनाया गया। इस कॅनाल को बनानेमें कई दिक्कतें आयीं। पहले कॉन्ट्रॅक्टरोंने विरोध किया। फिर सवर्णोंने बहिष्कार डाला। काफी गलत फहमियां पैदा की गयीं। पर सारी बाधाओं को पीछे ठेलकर सैनिकोंने अपना काम पूरा किया। भडवलमें एक पक्का बांध बनाया गया। नरसापूर-सासवड गांवको जोडनेवाला रास्ता बनाया गया। पेमगिरी (जि.नगर), भोरिपगाव (हैदराबाद), उमरगाव (कोल्हापुर) वडाळा (मुंबई) परुळे (रत्नागिरी) निघोजे (पुणे) इत्यादि केंद्रोंपर भी विविध प्रकारके कार्य हुए।

राष्ट्र सेवादल की स्थापना को बारह साल पूरे हो रहे थे। अतः ४ से ६ नवंबर १९५४ को तीन हजार सैनिकोंकी एक श्रमसंस्कार छावनी हडपसरमें लेनेका निर्णय किया गया। श्री.नाना डेंगळे इस छावनी के प्रमुख थे। दो हजार सैनिकोंने लगातार तीन दिनतक काम कर सात हजार फिट का लंबा बाँध तैयार किया।

सेवापथक का यह कार्य लगभग १९५७ तक महाराष्ट्र तथा कर्नाटक के विभिन्न गावोंमें चलता रहा। हर कामपर स्थानिक सेवादल शाखा के सैनिक, तथा गांवके स्त्री-पुरुष शामिल होते थे। उससे भाईचारे का एक माहौल बनता गया। सेवादल सर्वसामान्य जनता के सुखदुःख के साथ कदम मिलाकर चलनेवाला संगठन है, इसका लागोंको भरोसा होता गया।

महामानव श्री. बाबा आमटेने वरोरामें २५ फरवरी १९५४ से ११ मार्च १९७४ तक सर्व्हिस सिविल इंटरनॅशनल की सहायता से एक श्रमशिविर आयोजित किया। उसमें सेवादल की ओरसे श्री.दशरथ पाटील, डॉ.सिंधू चौधरी, श्री.नाना डेंगळे ने हिस्सा लिया।

पूज्य साने गुरुजी कहा करते थे कि 'देश सेवा याने मानव सेवा है।' मानव-सेवा का यह व्रत सेवादलने इन श्रम-कार्योंके माध्यमसे अखंडित रखा। १९५७-५८ के बाद विविध कारणोंसे यह काम खंडित होता रहा पर कभी रुका नहीं।

राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तरोंपर होनेवाले श्रम-शिविरोंमें और चर्चाओंमें सेवादल को सादर निमंत्रित किया जाता था। जैसे बंगलोर के पास केंगरी गांवमें आग्नेय एशियाई राष्ट्रोंके कार्यकर्ताओंके लिये युनेस्को

ने (१९५६ में) एक शिविर आयोजित किया था। इसमें बारह राष्ट्रोंके ३४ प्रतिनिधि शामिल हुए थे। शिविर में मुख्यतः श्रमशिविरोंकी पद्धति और तंत्र पर विचारविनिमय हुआ। सेवादल की ओरसे श्री.नाना डेंगळे इस शिविर में आदिसे अंततक रहे। वर्क प्रोजेक्ट चेअरमनके नाते उन्होंने उपस्थितों को मार्गदर्शन भी किया। 'कॅम्प ऑर्गनाईझेशन' विषयपर उनका एक व्याख्यान भी रखा गया था। दलप्रमुख श्री.भाऊसाहब रानडे ने भी अपने विचार व्यक्त किये।

प्रा.श्री.इंद्रपाल सिंग इस शिविर के प्रमुख थे। उपप्रमुख थे श्री.पीअर ओप्लिगर। युनेस्कोकी ओरसे श्री.हॅन्स पीटर मूलर और मिस डॉर्थीवुड आए थे।

भारतीय परिषद

श्रमशिविरोंसंबंधी कार्य करनेवाली भारत की विविध संस्थाओंकी एक संयुक्त परिषद १५ से १७ अक्तूबर १९५६ को बंगलोर में हुई। श्री.भाऊसाहब रानडे और श्री.नाना डेंगळे इस परिषद में उपस्थित थे।

भूदान में मदद

यह समय महाराष्ट्रमें विनोबाजी के भूदान आंदोलन का था। सेवादलने इस आंदोलनमें एक राष्ट्रीय संगठन के नाते हिस्सा लिया। विनोबा और उनसे जुडे हुए जयप्रकाशजी का लक्ष्य बहुत ऊंचा था। भूदान आंदोलन एक दृष्टिसे ग्रामस्वराज्य आंदोलन की नींव थी। इसलिए विनोबा ग्रामदान पर ज्यादह जोर दे रहे थे। तब कई लोग विनोबासे यह पूछते थे कि 'आप जिस, तरहका ग्रामस्वराज्य चाहते हैं, उसका एक नमूना हमें बताइये।' जयप्रकाशजीने इसका बहुत अच्छा जवाब दिया था। उन्होंने कहा, "आप पांच पचास अच्छे नमूने बनाकर रखेंगे, और उनके चारों ओर का पुराना समाज ज्यों का त्यों बना रहेगा तो आपके ये नमूने समुद्र के बीच बने द्वीपोंकी तरह न जाने कहाँ डूबकर रह जाएँगे। यह एक बहुत बडा भ्रम है कि नमूने खडे करके दिखा देंगे तो, तो उनसे क्रांति आ जाएगी। क्रांति के लिए तो विचार जल्दी से जल्दी चारों ओर दूर-दूर तक, फैल जाना चाहिए।'

सेवादल 'सेवा-पथक' के द्वारा क्रांतिका विचार और क्रांतिकार्य दोनों फैलानेका काम कर रहा था। वह एक समाजनिष्ठ संगठन है। उसने अपने सैनिकों को विदेशी सत्ता के खिलाफ जूझनेही शिक्षा दी, वैसे सामान्य जनता के साथ घूल मिलकर रहने और उनकी सेवा करने की शिक्षा भी दी। एक दृष्टिसे सेवादल इस राष्ट्रीय शिक्षाका विश्वविद्यालय है। 'अपनी शाखापर आनेवाला हर सैनिक उदार, प्रगतिशील, विचारवान तथा विधायक कार्योंमें हिस्सा लेनेवाला बने यह उसकी ललक रही है।

सन १९५० के बांद सेवा-पथक का काम पूर्ववत् नहीं रहा। श्रमकार्य की लगन नयी पीढीमें थी नहीं। फिर भी जहाँ जहाँ छोटे-बडे कॅम्प लगते वहाँपर श्रम कार्य को प्रधानता दी जाती।

सेवादल के कई कार्यकर्ता और सैनिक नियमित रूपसे हर वर्ष, बाबा आमटे द्वारा आयोजित सोमनाथ की श्रमसंस्कार छावनी में उपस्थित रहते हैं। प्रारंभिक कुछ वर्षोंतक तो इन छावनियों के संयोजन मे सेवादल के कार्यकर्ताओं की ही प्रमुखता रही।

■

॥ अध्याय छठा ॥

विचार-यात्रा

अपने आपको एक शिक्षात्मक व्यासपीठ माननेवाले सेवादलने अपने अनुयायियों, सैनिकों और अधिकारियोंके बौद्धिक विकास के लिए भरसक कोशिश की। अपने विकास कालमें विविध विचारधाराओं एवं राजनीतिक मतवादोंके साथ उसका घनिष्ठ परिचय रहा। आचार्य जावडेकर, अण्णासाहब सहस्रबुद्धे, अच्युतराव पटवर्धन, रावसाहब पटवर्धन, साने गुरुजी, एस.एम.जोशी, नानासाहब गोरे, जयप्रकाश नारायण, डॉ.राममनोहर लोहिया इत्यादि नेता अपनी अध्ययनशीलता के कारण पूरे भारत भरमें विख्यात थे। सेवादल को इन सभीसे विचारोंका अमूल्य दाय मिला। अपने व्यक्तिगत जीवनमें ये सारे नेता जितने त्यागी थे, विचारोंमें उतनेही प्रखर और सुस्पष्ट थे। युवक-युवतियोंपर उनके कथनका काफी परिणाम होता था।

इन कथनोंमें 'आदेश' या 'उपदेश' की मात्रा न के बराबर होती थी। कोशिश यह रहती थी कि सैनिक स्वयं विचार करें, अपनी समझ के अनुसार निर्णय लें।

तत्कालीन सेवादल के सैनिकोंको समाजवादी विचारधारा के प्रति अधिक लगाव था। उसके मुख्य प्रणेता थे साने गुरुजी। उन्होंने सैनिकोंके सामने जनतंत्रात्मक समाजवादी समाजरचना के जो चित्र प्रस्तुत किये, वे विलक्षण परिणामकारक थे। युवकोंके साथ वयस्क सैनिकों पर भी गुरुजी के विवेचन का प्रभाव पडता था। केवल गुरुजी का भाषण सुनकर समाजवादी विचारधारासे जुडे हुए कार्यकर्ताओंकी संख्या कम नहीं। उनके कथन की तीव्रता, प्रामाणिकता और अध्ययनशीलता इतनी होती थी कि जो भी एक बार उन्हें सुनता वह उनका कायल हो जाता था।

सबसे बडी बात यह थी कि साने गुरुजी का समाजवाद केवल किताबी नहीं था। वे कभी कांग्रेस के निष्ठावान प्रचारक थे। फिर उन्हें लगा कि किसान और मजदूरों की ओरसे लडनेवाले कम्युनिस्ट ही इस समाज का भला कर सकेंगे। कालांतरसे उनका वह भ्रम भी टूटा और वे समाजवाद की ओर मुडे।

वे यह चाहते थे कि देशमें ऐसा समाजवाद हो जिसपर जनतंत्रका अंकुश रहे, और जनतंत्र ऐसा रहे जो समाजवाद की नींवपर खडा हो। उसका ढांचा कैसा है, यह उतना महत्त्वपूर्ण नहीं, जितना वह सर्वसामान्योंको जीनेकी कितनी सुविधाएं उपलब्ध करा देता है, यह महत्त्वपूर्ण है।

समता, स्वतंत्रता और बंधुता के तत्त्वोंसे संपन्न, वह जनतंत्र उन्हें चाहिए था, जो समाज जीवन के मांगल्य की तथा स्वत्व की रक्षा कर सके। और ऐसा जनतंत्र केवल समाजवाद ही ला सकेगा, इसपर उन्हें भरोसा था। वे समाजवाद को भारतीय संस्कृति का मर्मस्थान मानते थे। "समाजसत्तावाद याने वेदान्त। सभीको पेटभर अनाज, सभीको शिक्षा, वस्त्र, और रहनेके लिए मकान मिले, यही समाजसत्तावाद है" ऐसा वे मानते थे। आचार्य जावडेकरजीने बहुत सार्थक शब्दोंमें गुरुजी का मूल्यांकन किया था... "साने समाजसेवी थे। लेकिन उस समाजसेवी वृत्तिका स्वरूप समाजवादीही हो, यह निर्णय वे अपनी बुद्धिसे बहुत पहले ले चुके थे।"

राष्ट्र सेवादल के सारे वैचारिक विकास में साने गुरुजी की यह मान्यता मेरुदंडकी तरह विद्यमान है। उस समय कालेजोंमें जानेवाले या स्नातक हो चुके सैनिकोंको नानासाहब गोरे, अशोक मेहता, एस.एम.जोशी समाजवादी विचारधारा का स्वरूप स्पष्ट करनेवाले व्याख्यान देते थे।

गांधीजी का प्रभाव

सेवादल की विचारधारा और कार्यक्रमोंपर गांधी-विचारों का प्रबल प्रभाव है। तब महाराष्ट्रमें गांधी विचारों के एक प्रमुख भाष्यकार थे आचार्य जावडेकर। वे सेवादल के हर महत्त्वपूर्ण प्रांतिक शिविरमें उपस्थित रहकर गांधीजी के विचारों का निरूपण करते थे। रूस की नकल कर हमारा काम नहीं चलेगा, हमें अंततः गांधीजीकी ही राह पकडनी पडेगी और सत्याग्रही-

समाजवाद का स्वीकार करना पडेगा, उसे वे सप्रमाण समझा देते थे। गांधीजीनेही भारत को एक नयी जीवनदृष्टि दी। उसे सर्वोदय-निष्ठा या सत्याग्रह-निष्ठा कह सकते हैं। इस जीवनदृष्टिने पुनश्च एक बार यह सिद्ध कर दिया कि शस्त्र-बलकी अपेक्षा आत्मबल कई गुना ज्यादह श्रेष्ठ होता है। किसी समय वशिष्ठ और विश्वामित्र की कथा के माध्यमसे यह बात समझाई जाती थी। गांधीजीने सत्याग्रह के माध्यम से इसी आत्मबल की श्रेष्ठता को दोहराया।

समाजवादी आंदोलन के लगभग सभी नेता कुछ बातोंके विरोध के बावजूद गांधी-विचारोंसे प्रभावित थे। यह प्रभाव सेवादल की हर पीढीमें किसी न किसी वैचारिक रूपमें उतरता गया।

प्रा.गं.बा.सरदार संत साहित्यके प्रखर अध्येता थे। पर अपने प्रगतिशील विचारोंके कारण उन्हें सर्व-मान्यता थी। उन्होंने सैनिकोंको 'महाराष्ट्र का सामाजिक इतिहास' पढाया और महात्मा फुले, आगरकर तथा बाबासाहब आंबेडकरजी के सामाजिक विचारोंके साथ उन्हें परिचित कराया। महात्मा फुले भारत की समाजक्रांतिके अग्रदूत थे। सेवादल के बौद्धिकोंको यह श्रेय देना चाहिए कि उनके कारण सैनिकोंकी युवा पीढियाँ उनके योगदान से परिचित हो सकी।

आचार्य भागवत और आचार्य दादा धर्माधिकारी कई विषयोंके ज्ञाता और महापंडित थे। इन दोनोंके कारण सेवादल के अनुभवी और जानकार कार्यकर्ताओंका प्रबोधन हुआ। दादा धर्माधिकारी की तीव्र बुद्धिमत्ता और वाक्पटुता का कायल तो पूरा देश था।

'स्वतंत्र विचार दृष्टि'

इन श्रेष्ठ विचारवान नेताओंने सेवादल की प्रथम कार्यकर्ता पीढीको स्वतंत्र विचार करनेकी एक दृष्टि दी, उनकी जिज्ञासा जाग्रत की। दलने अब अपने कुछ युवा कार्यकर्ताओंको बौद्धिक विभाग संभालनेकी जिम्मेदारी सौंपी। इनमें प्रमुख थे– प्रा.ग.प्र.प्रधान। ये सारे कार्यकर्ता खुद काफी पढते थे, बडों-बडोंसे चर्चा-विमर्श कर अपने विचारोंको माँज दिया करते थे। इन कार्यकर्ताओंको प्रशिक्षित करनेके लिये भी सेवादलने कुछ विशेष शिविरोंका आयोजन किया।

१९४८ में रायगड जिलेके रोहामें ऐसा एक शिविर लगा जिसमें कुछ चुनिंदा कार्यकर्ताओंके साथ श्री.बंडू गोरे और श्री.मधु लिमये भी थे। मुंबई के सेवादल कार्यकर्ताओंपर श्री.बंडू गोरे का बहुत प्रभाव था। अपने विचारों और कल्पनाओंसे वे किसी को भी प्रभावित करनेकी क्षमता रखते थे।

ये सारे कार्यकर्ता बौद्धिक क्षेत्रमें विविध प्रयोग करते थे। व्याख्यान, चर्चा, सामूहिक वाचन, विविध वैचारिक ग्रंथोंका परिचय, इनके माध्यमसे अपनी और सैनिकोंकी जिज्ञासा सतत जागृत रहे इसके लिये वे प्रयत्नशील रहते थे। इस खुले वातावरण का प्रभाव सैनिकोंपर भी पडता था। इस शिविर में प्रशिक्षित हुए कार्यकर्ता अपने अपने केंद्रोंपर वापस गये और उन्होंने वहां भी वैसी ही उपक्रमशीलता जताई। इसका एक परिणाम यह हुआ कि महाराष्ट्र में जहाँ जहाँ भी सेवादल की शाखाएं थीं वहाँ वहाँ एक वैचारिक वातावरण निर्माण हुआ।

श्री. अशोक मेहता के जनतंत्रात्मक समाजवाद विषयक ग्रंथकी तब काफी चर्चा थी। राजनीति, अर्थनीति, सांस्कृतिक जीवन, सत्तासंघर्ष आदिके बारेमें समाजवादियोंकी भूमिका क्या, और कैसी हो इसका मार्मिक विश्लेषण उसमें किया था। इस ग्रंथको आधार बनाकर प्रा.ग.प्र.प्रधानजी ने सात व्याख्यानोंकी एक मालिका तैयार की। युवकोंके लगभग ३० गुटोंके सामने उन्होंने यह मालिका प्रस्तुत कर, उनके समाजवादी विचारोंको बिल्कुल ठोस आकार देनेमें सफलता पायी। उन्होंने 'आयडियाज् दॅट मूव्हड द वर्ल्ड' पर भी पाँच व्याख्यान दिये। 'बुक्स वुईच मुव्हड द वर्ल्ड' पर भी उन्होंने लगभग आठ या दस व्याख्यान दिये। ख्रिस्त, बुद्ध, मार्क्स और गांधीपर श्री.यदुनाथ थत्तेने कई व्याख्यान दिये।

डॉ.राममनोहर लोहिया ने पंचमढी के पार्टी अधिवेशनमें जनतंत्रात्मक समाजवाद पर अत्यंत मौलिक विचार व्यक्त किये थे। उनके अध्यक्षीय भाषण का हर शब्द मानो एक मंत्र था– "आज के युग के दोनों जुडवाँ भाइयों– पूंजीवाद और साम्यवाद– के साथ लडते लडते संभव है सोशलिस्ट पार्टी हमेशा के लिये समाप्त हो जाय। पर विश्वास रखिये, जब तक इस पृथ्वीतलपर मनुष्य जिंदा है, तबतक वह बारबार पैदा होती रहेगी, और अंतमें समाजवाद की ही जीत होगी।" समाजवाद की यह ताकत और उसका यह नवदर्शन कार्यकर्ताओंने हर सैनिक तक पहुंचाया। विचारोंका

ऐसा संस्कार ग्रहण करनेवाले सैकडों युवक-युवतियाँ तब सेवादल में कार्यरत थे।

भाऊसाहब रानडे, एस.एम.जोशी, नानासाहब गोरे, ग.प्र.प्रधान इत्यादि कार्यकर्ता खुले विचारोंमें विश्वास रखते थे और किसीभी प्रकार के गिरोह बंद विचारों या पार्टी-प्रचार के लिये कोई पनाह नहीं देते थे।

एस.एम. तो बहुत स्पष्ट शब्दोंमें कहते थे, "जनतंत्रात्मक समाजवाद आजका युग-धर्म है। उसे ठीकसे समझ लीजिए। मैं नहीं चाहता कि राष्ट्र सेवादल, समाजवादी पार्टीका बिगुल बजानेवाला संगठन हो।"

बौद्धिक आदानप्रदान के अगले दौरमें श्री.यदुनाथ थत्ते, डॉ.ना.य.डोळे, श्री.हमीद दलवाई, श्री.बाबा आढाव और प्रा.नरहर कुरुंदकरजी की बडी अहम भूमिका रही।

साहित्यचिंतन और समाजचिंतन

सन १९६० तक सेवादल का बौद्धिक विभाग काफी काम कर रहा था। फिर लगभग एक दशक तक उसमें कुछ सुस्ती आ गयी। यह सुस्ती टूटी श्री.यदुनाथ थत्तेजीके कारण। 'साधना' साप्ताहिक में वे विभिन्न जनआंदोलनों और कार्यकर्ताओंका परिचय देते रहते थे। श्री.बाबा आढाव के 'एक गाव एक पनघट', हमीद दलवाई के 'मुस्लिम रिफॉर्मेशन', बाबा आमटे के 'आनंदवन' और कुष्ठरोग निर्मूलन इन आंदोलनों तथा प्रा.नरहर कुरुंदकरजी के विचारोंकी पहचान पूरे महाराष्ट्र को साप्ताहिक 'साधना' के कारण हुई। डॉ.ना.य.डोळे उत्तम वक्ता और विचारक थे। देशमें समय समयपर उद्भव होनेवाली समस्याओं पर उनका गहरा चिंतन होता था।

दूसरे, ये सभी कार्यकर्ता जैसे समाजचिंतन के साथ जुडे हुए थे वैसे साहित्य के साथ भी जुडे हुए थे। सेवादल के सैनिकोंमें उत्तम साहित्यिक ग्रंथ पढनेकी आदत इन लोगोंके प्रयत्नोंके कारण विकसित हुई। सैनिक किसी एक विचारधारासे बंधा हुआ तथा संकुचित विचारोंका न हो, उसकी भूमिका हमेशा सत्यशोधन की रहे, वह स्पष्ट रूपमें अपने विचार कह सके, लिख सके इसलिए इन कार्यकर्ताओंने अपार कष्ट किये। श्री.यदुनाथजी के कारण सैकडों युवक-युवतियां और कितनेही अज्ञात कार्यकर्ता साहित्य के क्षेत्रमें प्रवेश कर सके, प्रसिद्धि पा सके।

श्री.हमीद दलवाई मुस्लिम समाज के आगरकर थे। अपने समाज की परंपराप्रियता से पूर्णतः परिचित हमीदने बहुत हिम्मत के साथ तलाक प्रथा के खिलाफ आवाज उठाई। वे खुद सेवादल सैनिक थे। उनकी हर कोशिश की पूरे महाराष्ट्र के सेवादल सैनिकोंने दिल से मदद की। श्री.दलवाईका यह मानना था कि तलाकप्रथा मुस्लिम महिलाओंपर एक दृष्टिसे अत्याचार है। इस अन्याय के खिलाफ उन्होंने मुंबईमें मुस्लिम महिलाओंका एक मोर्चा निकाला। श्री.हमीद दलवाई के प्रयत्नोंके कारण फिर एक बार हिंदु-मुस्लिम संबंध और मुस्लिम समाज-व्यवस्थाविषयक चर्चाएं महाराष्ट्रमें शुरू हुईं। मुस्लिम समाजसुधारको योग्य दिशा मिले, इसलिए श्री.दलवाईने मुस्लिम सत्यशोधक समाज की स्थापना की। दकियानुसी मुस्लिमोंने इस काम के लिए दलवाई को न केवल बहुत कोसा, उनकी काफी निंदा की, उनपर सामाजिक बहिष्कार भी डाला। पर दलवाई हिम्मत हारे नहीं। उनकी अकाल मृत्युके बाद भी मुस्लिम सत्यशोधक समाज का काम अन्वर राजन, मेहरुन्निसा दलवाई, सय्यदभाई इत्यादि कार्यकर्ताओंने आगे बढाया।

१९८६ में हाईकोर्टने शहाबानो केसमें अपना फैसला सुनाया। मुस्लिम सत्यशोधक मंडलने जबानी तलाक बंद हो इसलिए एक मोर्चा निकाला। सेवादल के कार्यकारी ट्रस्टी श्री.श्यामराव पटवर्धन पूरे समय इस दौरेमें थे। मोर्चेपर कई जगह पथराव हुआ, पर मोर्चा रुका नहीं।

प्रा. नरहर कुरुंदकर

लगभग एक दशक तक सेवादल का वैचारिक भरण-पोषण करनेका काम प्रा.नरहर कुरुंदकरजीने किया। हिंदु-मुस्लिम संबंध, धर्म और धर्म-निरपेक्षता, भारतीय राजनीतिमें पंडित नेहरू और गांधीजी का योगदान समान नागरिकता, राष्ट्रवाद इत्यादि उनके गहन अध्ययन के विषय थे। उनके जैसा पारंगत और अचूक मार्गदर्शक दुर्लभ था। इतिहास का अध्ययन कैसे करे? उसे पढे कैसे? पढाए कैसे? इसके बारेमें सेवादल के सैनिकोंका एक त्रिदिवसीय शिविर उन्होंने पुणेमें साने गुरुजी स्मारकपर लिया।

'भारतीय संविधान और धर्मनिरपेक्षता'पर उन्होंने सेवादल के कई केंद्रोंपर व्याख्यान दिये। श्री.हमीद दलवाई से उनकी मित्रता थी। इस मैत्रीके

कारण उन्होंने 'समान नागरिकता और इस्लाम' पर भी कई स्थानोंपर अपने विचार प्रगट किये।

शिक्षा विभाग

भारतीय शिक्षा पद्धतिकी सदोषता अब सभी को ज्ञात है। सेवादलने शिक्षा विभाग की स्थापना कर इस शिक्षा पद्धतीपर नए सिरेसे विचार किया। १२ और १३ मई १९७० से सही मानेमें यह काम शुरू हुआ। साने गुरुजी स्मारक पर महाराष्ट्र के ज्येष्ठ शिक्षातज्ज्ञ श्री.ग.वि.अकोलकर की अध्यक्षतामें पूरे महाराष्ट्रसे आये हुए लगभग १३० अध्यापकों-प्राध्यापकों को श्री.दि.ह.सहस्रबुद्धे, यदुनाथ थत्ते, रं.नि.अंबिके, डॉ.ना.य.डोळे इत्यादिने समाजवादी शिक्षा नीतिपर मार्गदर्शन दिया। श्री.रावसाहब पटवर्धन की स्मृतिनिमित्त सेवादल-पत्रिकाने एक विशेषांक प्रकाशित किया, जिसमें विभिन्न विद्वानोंने जनतंत्रात्मक समाजवादी शिक्षापद्धतिके बारेमें अपना मत प्रगट किया था।

शिक्षकों और अध्येताओंमें इस विशेषांकका अपूर्व स्वागत हुआ। शिक्षापर पुनर्विचार होना चाहिए, इसकी जरूरत सभी को महसूस हुई।

१९७२ की मईमें लजपतराय भवन, पूणेमें 'निधर्मवाद और शिक्षा' विषयपर तीन दिन का शिविर हुआ। उसमें १०० प्राध्यापक-शिक्षक हाजिर थे। प्रा.अ.भि.शाह, हमीद दलवाई, नरहर कुरुंदकर आदिने निधर्मवादकी दृष्टिसे शिक्षा का स्वरूप कैसा हो, इसपर उपस्थितोंको मार्गदर्शन किया। शिक्षा विभागने फिर औरंगाबाद, संगमनेर, डोंबिवली, ठाणे, मुंबई और राजापुरमेंभी ऐसे शिविर लगाए।

श्री.नाना पानसे, कुसुमताई पटवर्धन, लीलाधर हेगडे प्रारंभसेही शिक्षा विभाग के कार्यक्रमोंमें अग्रस्थानपर रहे। श्री.पन्नालालजी सुराणा सेवादल के अध्यक्ष बने और शिक्षा विभाग के काममें अधिक तेजी आयी। १९८८ में विज्ञाननिष्ठ नैतिक शिक्षा का प्रसार करनेके लिये मुंबईमें एक परिषद आयोजित की गयी। भूतपूर्व कुलगुरु प्रा.राम जोशी, डॉ.ना.य.डोळे, श्री.पन्नालाल सुराणा आदि ने अपने विचार इस परिषदमें व्यक्त किये।

शासन ने स्कूली-छात्रोंको नीति-शिक्षा देनेकी जिम्मेदारी साईबाबा प्रतिष्ठानको सौपी थी। सेवादलने यह मांग की कि शिक्षा सभी स्तरोंपर

अंधविश्वाससे मुक्त हो, अधार्मिक हो तथा विज्ञाननिष्ठ हो। इस कसौटी पर साईबाबा प्रतिष्ठान खरा नहीं उतरता, इसलिए यह काम उसे न सौपा जाय।

सरकारने सेवादल की बात मानकर प्रतिष्ठानसे प्रस्तुत अधिकार वापस ले लिया।

१ अप्रैल १९९० को एस.एम.जोशीकी स्मृतिमें बॅ.नाथ पै सभागृहमें शिक्षकोंकी एक विशाल सभा मंडल आयोग पर विचार करनेके लिए बुलाई गयी। उसमेंभी शिक्षकोंकी उपस्थिति पर्याप्त संख्यामें थी। सेवादलने मंडल आयोग को समर्थन देनेकी भूमिका रखी।

अ.भा. समाजवादी अध्यापक सभा

सेवादल का शिक्षा अभियान अलग अलग दिशाओंमें विकसित होता रहा। शिक्षा का ढांचा युवकोंकी जीवनशैली के लिए निकम्मा है, और वर्तमान भा.ज.पा. की सरकार शिक्षा को हिंदुत्व के प्रचार का माध्यम बना रही है, यह देखकर सेवादलने उसके वर्तमान अध्यक्ष भाई वैद्यजी की अध्यक्षतामें १६ सितंबर २००१ को पुणे में 'अखिल भारतीय समाजवादी अध्यापक सभा' की स्थापना की। टी.डी.एफ (Teacher's Democratic Front) के कार्यकर्ता भी इसमें शामिल हो गये। दूसरी बैठक २४ नवंबर २००१ को समता विद्या मंदिर, पुणेमें हुई। यह तय हुआ कि अ.भा.समाजवादी अध्यापक सभा की स्थापना का अधिवेशन नासिक में लिया जाय। ३० मार्च २००२ को के.जे.मेहता हाईस्कूल, नासिक रोड में शिक्षा क्षेत्र के जानेमाने विद्वान, अध्यापक, प्राध्यापक, संस्थाचालक और कार्यकर्ताओंकी बैठक में काफी विचार विमर्श के बाद अ.भा.समाजवादी अध्यापक सभा के कुछ प्रमुख उद्दिष्ट तय किये गये।

१. समाजवादी शिक्षा नीतिको समर्थन देनेवाला और प्राथमिक कक्षा से स्नातकोत्तर कक्षातक पढानेवाले सभी अध्यापक-प्राध्यापकोंको समाविष्ट कर लेनेवाला अखिल भारतीय स्तर का स्वायत्त संगठन 'अ.भा. समाजवादी अध्यापक सभा' के नामसे स्थापित किया जाय।
२. राष्ट्र और अंतर्राष्ट्रीय स्तरपर काम करनेवाले समाजवादी विचारोंके शिक्षक संगठनोंके साथ इस संगठनका संपर्क रहे।
३. दलित, आदिवासी, अन्य पिछडे वर्गके लोग, सवर्ण गरीब, और महिलाएं समाज की इन दुर्लक्षित ईकाइयोंतक सार्थक शिक्षा पहुंचाने की कोशिश प्रस्तुत संगठन करेगा।
४. शिक्षा के अध्ययन क्रमोंके बारेमें निरंतर अनुसंधान कर प्रस्तुत अध्ययनक्रम धर्मनिरपेक्षता और वैज्ञानिक दृष्टिकोण का एहसास जगानेवाला है या नहीं, इसकी सूचना समय समयपर यह संगठन सरकार को देगा।
५. सभी धर्मियोंको समान शिक्षा मिले और शिक्षा के माध्यमसे किसी भी प्रकार के मूलतत्त्ववाद को बढावा न मिले, इसकी ओर संगठन अधिक ध्यान देगा।
६. शिक्षा संस्थानोंमें आरक्षण तत्त्वकी पूरी तरह रक्षा की जाएगी। स्त्रियोंको सभी प्रकार की सेवाओंमें ५०% आरक्षण मिले इसके लिए संगठन प्रयत्नरत रहेगा।
७. महाराष्ट्र में टी.डी.एफ. को (Teacher's Democratic Front) प्रस्तुत संगठन चुनाव, शिक्षकोंके प्रश्न, आदिके बारेमें मदद करेगा। स्वयं उसमें आगे बढकर हिस्सा नहीं लेगा।
८. राष्ट्र सेवादल का काम अधिक बढे और वह सुदृढ हो इसलिए शिक्षकोंका मानस तैयार करनेका काम यह संगठन करेगा।
९. समाजवादी शिक्षाप्रणाली के प्रचार-प्रसार के लिए वाङ्मय निर्मिति और नियतकालिक चलानेकी जिम्मेदारी भी इस संगठनपर रहेगी।

शिक्षा की दुनियामें राजनीतिसे बढकर अनाचार है। उसे अगर बदलना है, उसके किसी एक अंग-उपांगको बदलकर काम नहीं चलेगा। पूरी शिक्षा व्यवस्था ही बदलनी पडेगी और यह समाजवादी अध्यापक सभा तथा राष्ट्र सेवादल के लिए सबसे बडी चुनौती होगी।

शिक्षा सभी स्तरोंपर महंगी हो रही है। गरीबोंके लिए उच्च शिक्षाके दरवाजे बढती हुई फीस् के कारण मानो बंद हो चुके हैं। प्राथमिक स्तर की शिक्षा की हालत इतनी खस्ता है, कि उसके बारेमें कुछ सोचनातक निरर्थक होगा।

शासन शिक्षा का एक हथियार की तरह इस्तेमाल करना चाहता है। संविधान में निर्देशित मूल्योंको धत्ता बताकर वर्तमान शासन शिक्षा को

अपने धार्मिक विचार और मान्यताओंके प्रचार का साधन बनाना चाहता है। किसी समय यही कोशिश हिटलरने जर्मनीमें की थी। रूस और चीन भी इसके अपवाद नहीं।

छात्र शिक्षाका केंद्रबिंदू होता है। पर आजतक पैसा और प्रचार उसके मुख्य केंद्रबिंदु है। इन दोनों हथियारोंकी सहायतासे एक उच्चवर्ग सारी शिक्षा व्यवस्थापर अपना कब्जा जमाना चाहता है। अब नियोजनपूर्वक शिक्षाक्षेत्र से मजदूर, कलाकार, आदिवासी और आर्थिक दृष्टिसे दुर्बल होनेवाले वर्गके बच्चोंको निकाल बाहर किया जाएगा। पूंजीपति, अभिजनवर्ग और स्वार्थी मध्यवर्ग एक ओर तो मजदूर, किसान, दलित, आदिवासी, पिछडे हुए वर्ग और छात्र एक ओर तो मजदूर, किसान, दलित, आदिवासी, पिछडे हुए वर्ग और छात्र एक ओर ऐसी स्थिति दिखाई देगी। शिक्षा पाना मूलभूत अधिकारोंमें शुमार है। पर बहुसंख्यांकोंसे उनका यह हक छीना जा रहा है।

राष्ट्र सेवादल ने सदैव शिक्षा को एक संस्कार माना। पर वर्तमान व्यवस्था उसे एक 'धंधा' माननेपर तुली हुई है। केवल शिक्षा ही नहीं अनाज, पानी, और आरोग्य भी वे धंधे के दायरेमें लाना चाहते हैं, ताकि सारे समाजपर पूंजीपतियोंकी पकड बनी रहे। इस भयानक स्थितिसे उबरना है तो सेवादल और अ.भा.समाजवादी अध्यापक सभा दोनोंको कई क्षेत्रोंमें बिल्कुल जानलेवा लडाई लडनी होगी।

क्या सेवादल का सैनिक शहरों और गांवोंमें भी बढता हुआ ट्यूशन का या गाईडोंका बाजार समाप्त कर सकता है? एक संगठन के नाते वह अपने हर केंद्रपर गरीब छात्रोंके लिए निःशुल्क अध्यापन केंद्र शुरू कर संभवता शिक्षा के बाजारूपन को हटा सकता है। दूसरे, हम जब शिक्षा प्राप्त करनेको व्यक्तिके मूलभूत अधिकारोंमें समाविष्ट कर लेते हैं तब इतने सारे सुशिक्षितोंका हम क्या करेंगे? इस प्रश्नका जवाब भी हमारे पास होना चाहिए। इतने शिक्षितों को देने जितनी नौकरियाँ न सरकार के पास है, न निजी क्षेत्र के पास। जब ९० प्रतिशत छात्रोंकी शिक्षा का अंत किसी उत्पादक व्यवसाय से जुडने के बाद होगा तभी हम इस समस्याका सही जवाब दे सकेंगे।

यह प्रश्न सारी शिक्षा व्यवस्थाकी पुनर्रचना का है। इसे सेवादल और अखिल भारतीय समाजवादी अध्यापक सभा कर सकती है।

समाजवाद से आजतक

इ.स.१८२७ में 'ओब्नाईट को ऑपरेटिव मॅगेजिन' में सबसे पहले 'समाजवाद' शब्द का उपयोग किया गया। वैसे तो इतिहासमें, इस शब्दसे जिस मूलभूत सामाजिक दृष्टिकोण का पता चलता है, उसकी उत्पत्ति बहुत पहलेसे हो चुकी थी। आसान शब्दों में कहे तो समाजवाद एक समष्टिवादी विचारधारा है, जो हर स्तरपर व्यक्तिवाद का विरोध करती है।

आधुनिक समाजवाद के कई रूप हैं। इस रूपभिन्नता के बावजूद उनमें एकताकी एक मजबूत कडी है, जो इन भिन्न रूपोंको एक दूसरे के साथ जोडकर रखती है। समाजवादी विचारधारा यह मानती है कि हर समय समाज का एक जराजर्जर रूप विद्यमान रहेगा और उस रूपको परिवर्तित करना उसका आद्य कार्य है। यह परिवर्तन एक मात्र प्रमुख कार्य नहीं। उसके बाद समाज को नये आदर्शोंके अनुसार संगठित करना और इस संगठन के लिए कालानुरूप नये आदर्शों, सिद्धांतों तथा प्रतिमानोंका निर्माण करना अधिक महत्त्वपूर्ण कार्य होगा। ये आदर्श केवल सैद्धांतिक नहीं वरन् पूर्णतः व्यावहारिक और सहजप्राप्य होने जरूरी हैं। सामाजिक न्याय को प्रस्थापित करना समाजवाद का ध्येय है। इस ध्येय की प्रस्थापना तब होगी जब मनुष्यद्वारा निर्मित और स्थापित हर प्रकारकी विषमता को नष्ट किया जाएगा। अतः विषमता के साथ संघर्ष समाजवाद का नित्य कर्म बन जाता है। और इस अर्थमें वह केवल एक विचारधारा नहीं रहती, एक संपूर्ण जीवनदर्शन बन जाता है।

भारतने इस जीवनदर्शन को अपनी एक स्वतंत्र मूल्यवत्ता दी, इसलिए इसके संघर्षात्मक पक्षमें भी रचना तथा निर्माण के तत्त्व सुरक्षित रहे। इस लिए यहाँपर मुख्य रूपसे भारतमें होनेवाले समाजवादी आंदोलन पर संक्षेपमें विचार करेंगे।

भारत में समाजवाद

१९३२ में सविनय कानून भंग आंदोलन का ज्वार उतारपर था। अखिल भारतीय कांग्रेसका रूख नरम राजनीतिकी ओर अधिक था। कुछ लोग जरूर यह चाहते थे कि पार्टी यह दिशा बदले। १९३४ में कांग्रेस के अंदर ही सोशलिस्ट पार्टीकी स्थापना हुई और उसने अपनी नीति स्पष्टतः

घोषित की। "भारत की संपूर्ण स्वतंत्रता हमारा उद्दिष्ट है। संपूर्ण स्वतंत्रता का अर्थ है, ब्रिटिश साम्राज्यके शिकंजेसें भारत की मुक्तता और समाजवादी समाज की स्थापना."

१९३६ में श्रीमती कमलादेवी चटोपाध्याय की अध्यक्षता में मीरत में एक परिषद हुई। इस परिषदमें जिन मुद्दोंपर गंभीर विचारविमर्श हुआ और जो बातें तय हुई वें 'मीरत प्रबंध' में ग्रथित है।

कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टीकी स्थापनाके पूर्व भी भारतमें समाजवादी ताकतें थीं, पर वे कांग्रेस की विरोधक थी। स्वतंत्रता आंदोलन में इसीलिए उनका कोई उल्लेखनीय योगदान नहीं रहा। पर सद्यपरिस्थितिको ध्यानमें रखकर अगर ये सारी ताकतें एक दिशामें आगे बढती है, तो इनका एकीकरण संभव होगा, ऐसा आशावाद उस प्रबंधमें व्यक्त किया गया था।

यह भी माना गया कि कांग्रेस के नेतृत्वपर पूंजीवादी लोगोंका प्रभाव है। इस प्रभाव को हटाकर वहाँ समाजवादी नेतृत्व की स्थापना करनी होगी। और इसके लिए समाजवादी आंदोलन को केवल विदेशी सत्ता के खिलाफ संघर्ष करने तक ही सीमित न कर, उसे सर्वसामान्य जनता का शोषण करनेवाले हर तत्त्वके खिलाफ संघर्षरत करना ठीक रहेगा। पार्टी जो नीति अपनाएगी तदनुसार उसका कार्यक्रम बनेगा और इस नीतिकी नींव साम्यवाद रहेगी। चूंकि साम्यवाद ही तानाशाही का मुँहतोड जबाब हो सकता है, इसलिए पार्टीके हर कार्यकर्ताको चाहिए कि वह वर्गविग्रह का सिद्धांत, शासनसंस्था का स्वरूप तथा क्रांतिके शास्त्र के बारेमें अध्ययन करें और परिवर्तनोंके मार्गपर सोचे।

पर कार्यकर्ता और जनता दोनोंके मनमें पार्टीकी इस मान्यता के बारेमें मतभेद थे। १९३६ में फैजपूरमें श्री.जयप्रकाश नारायण की अध्यक्षता में जो तीसरी परिषद हुई उसमें पार्टीकी भूमिका अधिक स्पष्ट हुई।

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम और समाजवादी आंदोलन के आपसी संबंधों को स्पष्ट करते हुए यह प्रस्ताव पारित किया गया कि 'भारत के जनआंदोलन का उद्देश्य पूर्ण स्वराज्य है, फिर भी यहाँ के पूंजीपतियोंकी निष्क्रियता, सारी दुनियामें फैला आर्थिक संकट, बढती हुई दरिद्रता तथा अन्याय को देखते हुए स्वतंत्रता आंदोलन को राष्ट्रीय क्रांतिकारी समाजवाद की दिशामें मोडना अधिक श्रेयस्कर रहेगा। भारतमें राष्ट्रीय क्रांति और

समाजवादी क्रांति इन दोनोंके मध्य कोई कृत्रिम दीवार खडी करना तत्त्वतः गलत होगा।'

इस प्रस्तावके कारण ही राष्ट्रीय आंदोलन और समाजवादी संगठन एक दूसरे के साथ संलग्न रहे। जनता की भाव-भावनाओंके साथ जुडा हुआ, आंदोलनों की हर स्थितिसे गुजरता हुआ, अनुभवी और अध्ययनशील नेतृत्व समाजवादी आंदोलन को मिला, इसका कारण पार्टीकी स्वतंत्रता आंदोलन के बारेमें होनेवाली यह अचूक भूमिका थी।

कांग्रेस वस्तुतः विभिन्न विचाराधाराओंके लोगोंका एक समूह था। विदेशी सत्ता नही चाहिए इस एक बातसे सहमत होनेवाले लोग स्वदेशी सत्ता कैसी चाहिए, इसके बारेमें लेकिन एक दूसरेके ठीक ठीक खिलाफ थे। सन १९४७ में स्वायत्तताके मुद्देपर राष्ट्र सेवादल ने जब कांग्रेससे अपना नाता तोडा तब भी उसकी भूमिका कांग्रेस के साथ सहयोग करने की ही थी।

स्वतंत्रता के बाद माहौल बदला। विदेशी सत्ता के खिलाफ एकजूट होकर संघर्ष करनेवाली ताकतों के अपने अपने अलग खेमे बन गये। कांग्रेस के साथ रहकर वे अपना स्वतंत्र अस्तित्व नहीं रखी पातीं। कांग्रेसने भी उनके ऐसे किसी स्वतंत्र अस्तित्व को मान्यता नहीं दी। परिणामतः कांग्रेसका पहला व्यापक, सर्वव्यापी स्वरूप रहा नहीं। वह एक राजनीतिक पार्टी के रूपमें विकास पाती रही।

८ अगस्त १९४२ में गांधीजी ने यह घोषित किया था कि भारतमें 'किसान-मजदूरों का प्रजाराज' होना चाहिए। स्वतंत्रता के बाद गांधीजी की ही यह सूचना थी कि अब कांग्रेस पार्टी का विसर्जन कर, उसे एक विधायक कार्य करनेवाले संगठन के रूपमें तबदील कर दिया जाय। पर किसीने गांधीजी की बात नहीं मानी। अगर इसे एक राजनीतिक पार्टीके रूपमें रहना है तो आचार्य नरेंद्र देव को इसका अध्यक्ष बनाइये, यह उनका कहना भी दरकिनार किया गया। कांग्रेसमें होनेवाला सत्ताकामी गुट यह चाहता था कि स्वतंत्रता आंदोलन के कारण जो जनप्रियता मिली उसे अपना सत्तास्थान मजबूत करनेकी दृष्टिसे भूनाना ही ठीक रहेगा।

कांग्रेस के बडे बडे नेता अब गांधीजी की सलाह मानने के लिए तैयार नहीं थे। वे सरकार में उच्च पदोंपर आसीन थे और उन्हें अपने प्रशासनिक कार्योंसे ही फुरसद नहीं मिल रही थी।

अप्रैल १९४७ में गांधीजीने स्वहस्ताक्षरोंमें लिखे एक पत्रमें लिखा... "मैं चार दिनसे यहां (दिल्ली में) हूं। लेकिन सरदारसे मैं कुछ मिनिट से अधिक नहीं मिला हूं। प्रायः मैं अनुभव करता हूं कि इन सबमें किसीके पास फुरसत है, तो एक मेरे ही पास है।"

अब कांग्रेसकी राह, जैसे कि उसने स्वतंत्रतापूर्व कालमें तय किया था, समाजवाद की नहीं रही। वह अब 'कल्याणकारी राज' के रूपमें बदल चुकी थी। यह राह समाजवादी समाजरचना के ठीक उल्टी दिशामें जानेवाली थी। १९४८ में कांग्रेस समाजवादी पार्टीका अधिवेशन श्री.जयप्रकाशजी की अध्यक्षतामें हुआ और कांग्रेससे अलग होने का निर्णय किया गया। यहाँपर स्वतंत्र समाजवादी पार्टीकी नींव पडी।

सेवादल के लिए पहले स्वतंत्रता का संघर्ष अहम बात थी। अब उस लक्ष्य का विस्तार हुआ और 'समाजवादी शील' के नागरिक तैयार करना उसका मुख्य उद्दिष्ट बना। यह काम कोई आसान काम तो था नहीं। किसान-मजदूरोंको इस नयी समाजरचना के लिए तैयार करना, सहकार आंदोलन विकसित करना, उस राजनीतिक पार्टीको सुदृढ बनाना जो समाजवादी समाजरचना के लिए कटिबद्ध हो, ये सारे काम भी इसी उद्दिष्ट में समाविष्ट होते थे। पर सेवादल ने अपनी एक दिशा निश्चित कर ली और वह थी, 'समाजवादी मूल्योंकी शिक्षा' देना।

श्री एस.एम.जोशी इसी अर्थमें सेवादल को 'एक अपूर्णांक' कहा करते थे।

राजनीतिक दृष्टिकोण

सेवादल समाजवादी मूल्योंकी शिक्षा देनेवाली संस्था थी, पर उसके इस उद्देश्यमेंही उसका राजनीतिक दृष्टिकोण निहित था। वह जिस समाजवादी मूल्योंकी शिक्षा अपने स्वयंसेवकों को दे रहा था, वे स्वयं राजनीतिमें उतरनेवाले थे नहीं। अतः यह जरूरी था कि एक ऐसी पार्टीको वह मजबूत बनाए या उसे समर्थन दे जो उसे अभिप्रेत होनेवाला 'समाजवादी शासन' निर्माण कर सके। स्पष्ट है तब ऐसी पार्टी केवल 'समाजवादी पार्टी' थी। वैसे बहुत प्रारंभसेही सेवादल का रुझान समाजवादी नेताओंकी ओर अधिक रहा है।

स्वयं श्री एस.एम.जोशी, नानासाहब गोरे, जयप्रकाश नारायण, डॉ.राममनोहर लोहिया, अरुणा असफअली, अच्युतराव पटवर्धन, नाना पाटील, शिरुभाऊ लिमये आदि कई ऐसे नेता थे जिनके जीवन और कार्यसे सेवादल के युवक अत्याधिक प्रभावित थे।

समाजवादी पार्टीके साथ अपने संबंध कैसे हो, यह तय करनेके लिए १२, १३ नवंबर १९४९ में तत्कालीन प्रांतमंडल की एक बैठक बुलाई गयी। सभा की अध्यक्षता आचार्य जावडेकरजीने की। उपस्थित सदस्योंमें से कुछ का मत था कि सेवादल समाजवादी पार्टीसे वैसेही संबंध रखे जैसे किसी समय कांग्रेस पार्टीके साथ थे। कुछ यह चाहते थे कि समाजवादी पार्टीके स्वयंसेवक संगठन के नाते सेवादल काम करे। अधिकांशोंकी मान्यता यह थी कि सेवादल पूर्णतः स्वायत्त रहे।

आचार्य जावडेकरजीने बहुत सोच समझकर इस सभामें अपना निर्णय दिया। उन्होंने कहा, 'सेवादल स्वायत्त रहे और किसी पार्टीसे अपना सदस्यात्मक संबंध न जोडे। पर सेवादल यह माने कि समाजवादी पार्टी उसका राजनीतिक मोर्चा है। चुनावमें वह पार्टीका प्रचार-प्रसार करे, उसका काम करे। अन्य विधायक कार्योंमेंभी वह पार्टीका हाथ बटाएं। पर सेवादल सैनिक पार्टीका सदस्य बने, ऐसा कोई बंधन न लादा जाय। वह अन्य किसी राजनीतिक पार्टीका सदस्य भी न रहे। उसपर यह भी बंधन न हो कि वह समाजवादी पार्टीके सदस्यका प्रचार करे ही। वह सर्वथा स्वतंत्र है।

इसलिए सेवादलने किसी पार्टीकी राजनीतिमें आजतक हिस्सा नहीं लिया। उसके सदस्य १९५२, १९५७, १९६२ में प्रजासमाजवादी पार्टीको, जनता राजमें जनता पार्टीकी मदद करते रहे। सेवादलने यह कोशिश की कि चुनावमें धांधली न हो, जातिके आधारपर या पैसेके जोरपर वोट न डाले जाय।

पार्टी टूटी, दल भी टूटा

अपनी हर कोशिश के बावजूद १९५२ के चुनावमें समाजवादी पार्टी को करारी हार का सामना करना पडा। यह तो स्पष्ट था कि भारतमें समाजवादी आंदोलन जितना तेजीसे बढता, उतनीही तेजीसे सेवादल का विकास होना था। पर दुर्भाग्यसे यह हो न सका। आगे चलकर सोशलिस्ट पार्टीने किसान मजदूर

प्रजापार्टी के साथ मिलकर 'प्रजा सोशलिस्ट पार्टी' की स्थापना की। 'शांतिमय साधनोंसे वर्णहीन एवं वर्गहीन समाजवादी समाज की स्थापना' यह इस पार्टीका ध्येय तय हुआ। इलाहाबाद के अधिवेशनमें पार्टीने अपनी नीति, और कार्यक्रम तय किये। तभी विनोबाजी का भूदान आंदोलन चल रहा था। प्रजा सोशलिस्ट पार्टीने भूदान को अपना समर्थन दिया। ऐसा लग रहा था कि अब इस पार्टीको जनता का प्रबल समर्थन मिलेगा। पर १९५४ में केरलमें प्रजा समाजवादी सरकार की पुलिसने लोगोंपर गोली चलाई। पार्टीमें इस एक कांडसे काफी गहमा गहमी हुई। डॉ.राममनोहर लोहिया और उनके साथी पार्टीसे अलग हो गये। १९६४ में रामगड में हुए प्रजा समाजवादी पार्टीके अधिवेशनमें फिर एकबार दोनों धडों को एक करनेकी कोशिश की गयी। नयी पार्टीका नाम 'संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी' तय हुआ। लेकिन इस बातपर सहमति न हो सकी कि चुनावी रणनीतिमें साम्यवादी, जनसंघ, मुस्लिम लीग और स्वतंत्र पार्टीसे क्या और कैसे संबंध रखे? परिणाम यह हुआ कि १९६५ में वाराणसी में जो अधिवेशन हुआ उसमें संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी भी टूटी। प्रजा समाजवादी पार्टीके अधिकांश सदस्योंने अधिवेशन पर बहिष्कार डाला, और पुनश्च प्रजा समाजवादी पार्टीकी स्थापना की।

इस बार इन सारी घटनाओंके बहुत गंभीर और दीर्घ परिणाम समाजवादी आंदोलनपर और राष्ट्र सेवादल पर भी हुए। एस.एम. और नानासाहब गोरे दोनों राष्ट्र सेवादल और समाजवादी आंदोलन के मुख्य आधारस्तंभ थे। दोनों की वैचारिक और भावनिक एकता लोगोंको प्रभावित करती थी। पर इस टूटनने दोनोंको अलग कर दिया। एस.एम. संयुक्त सोशलिस्ट पार्टीमें रहे तो सेवादल के अधिकांश कार्यकर्ता नानासाहब गोरे के साथ प्रजासमाजवादी पार्टीमें चले गये। सेवादल से संबंधित सर्वसामान्य सैनिकोंकी मनस्थिति भी द्विधा हो गयी। १९६५ में मुंबईमें राष्ट्र सेवा दल के राज्यमंडल ने यह निर्णय लिया कि किसी भी राजनीतिक पार्टीसे सेवादल की संलग्नता नहीं रहेगी। पर अगर सेवादल सैनिक चाहेगा तो वह दोनों पार्टियोंका सदस्य बन सकेगा। राज्य मंडल ने एक प्रस्ताव पारित कर अपनी भूमिका स्पष्ट की।

"जनतंत्रीय समाजवादी मूल्योंका जतन करना राष्ट्र सेवादल की प्रमुख प्रेरणा है। सामाजिक और आर्थिक समता का समर्थन, जातिभेदातीत

राष्ट्रवाद और जनतंत्र प्रधान जीवननिष्ठा यह इन मूल्योंका मुख्य स्वरूप रहेगा। व्यक्ति-विकास तथा सामुदायिक विकास और सुसंवाद के लिये शारीरिक, बौद्धिक, सांस्कृतिक कार्यक्रमोंका आयोजन करना, श्रम की प्रतिष्ठा बढाना और देशमें होनेवाली समाजवादी शक्तियोंको सहायता देना, इन उद्दिष्टोंको सामने रखकर काम करनेवाला सेवादल एक शिक्षात्मक व्यासपीठ है।"

पर इतना सब होने के बावजूद भी जो दरार पडी थी, वह मिटी नहीं। समाजवादी आंदोलन अपने अंगभूत दोषोंके कारण धीरे धीरे टूटता गया। उसका परिणाम सेवादलमें आनेवाली नयी पीढीपर काफी गहरा हुआ।

■

।। अध्याय सातवाँ

महिलाओं के उत्थान के लिए

'जहां नारी की पूजा होती है वहीं देवताओंका निवास होता है।' ऐसा दावा करनेवाले भारतीय समाजने कई वर्षोंतक स्त्रियोंको मानसिक और सांस्कृतिक दृष्टिसे गुलाम बनाकर रखा था। मातृत्व की अपार महत्ता गानेवाले इस समाजने 'माता'के भीतरकी 'स्त्री'को कभी कोई न्याय नहीं दिया। वैदिक कालमें स्त्रियोंको पुरुषोंकी बराबरी का दर्जा था। वे अपनी स्वतंत्र बुद्धिसे निर्णय ले सकती थी। बडी बडी सभाओं में पुरुषोंसे खुला वादविवाद कर सकती थी। स्वयंवर रचा सकती थी। परन्तु ये सारी बातें बहुत जल्द अतीत की धरोहर बन गयी। सभी धर्मोंमें स्वघोषित ईश्वरीय कारिन्दोंने धीरे धीरे धरती और औरत की सभी स्तरोंपर नाकाबंदी करनेमें महारत प्राप्त कर ली। वे इतना जरूर जानते थे कि स्त्रियों और साधन-वंचितोंको जबतक दबाए नहीं रखेंगे तब तक अपनी मनमानी करना संभव नहीं है। इसलिए इन दोनों वर्गोंकी आत्मा, मन और देह को गुलाम बनाए रखनेका उपक्रम बडी मुस्तैदी से चलाया गया। वह अबला है, उसे किसी प्रकार की स्वतंत्रता नहीं, गत जनममें किये हुए पाप के कारण उसे स्त्री का जन्म प्राप्त हुआ है, उसे मोक्ष नहीं, स्वर्ग नहीं, वह केवल पुरुषकी अर्धांगिनी बनकर ही सार्थक जीवन जी सकती है, इन बातोंको बारबार स्त्री-समाजपर थोपा गया और स्त्री भी अपने आपको अबला तथा पराधीन मानने लगी।

इस स्थितिसे छुटकारा उसे मिला गांधीजीके कारण। भारत का स्वतंत्रता आंदोलन शुरू हुआ और गांधीजीकी प्रेरणा के कारण महिलाओंका बहुत बडा वर्ग आंदोलन में उतर आया। उसने हर कार्यमें पुरुषोंके कंधोंसे कंधा मिलाकर काम किया।

राष्ट्र सेवा दलने जब अपना काम शुरू किया तब उसे तत्कालीन इस सामाजिक स्थितिका कुछ लाभ अवश्य हुआ। जिन मूल सिद्धांतोंको सेवादल मानता है, उनमें एक सिद्धांत सामाजिक समता का है। दलितों, मजदूरों, और महिलाओंको समानता का यह हक पूरी तौरपर आज भी प्राप्त नहीं हुआ है। तब तो यह संघर्ष और भी मुश्किल था। पर राष्ट्र सेवादलने कभी स्त्रियोंको पुरुषोंसे कमी नहीं आंका। पहले भी शाखाओंपर युवक-युवतियां साथ-साथ आते थे। लेकिन ये युवतियां मुख्यतः मध्यमवर्गसे थीं। सेवादल यह चाहता था कि समाज के सभी तबकों की महिलाएं राष्ट्र कार्यसे जुड जाय। इस कार्य के लिए जिन दो महापुरुषोंने अपनी सारी जिंदगी दांवपर लगा दी, उनमें एक थे, श्री.साने गुरुजी और दूसरे, श्री.भाऊसाहेब रानडे।

इन दोनों द्रष्टाओंके ध्यानमें एक बात आ गयी थी। १९ वीं सदीमें जो सुधार आंदोलन चले उसमें एक बडा अंतर्विरोध था। जो सुधारक इन आंदोलनोंमें कार्यरत थे उनके लिए मुख्यतः युरोपीय ज्ञान-विज्ञान ही शक्तिका स्रोत था। यह शक्ति बहुजन समाज को भी मिले इसलिए इन सुधारकोंने कोशिश की, पर वे स्त्रियोंको पढाने के पक्षमें अधिक नहीं थे। महाराष्ट्र में महात्मा फुले, पंजाब में लाला देवराज और बंगालमें विद्यासागर तथा द्वारकानाथ गांगुली जैसे कुछ सुधारक इस अंतर्विरोधको भांप गये थे, और उन्होंने स्त्री-शिक्षापर अधिक जोर दिया। यही परंपरा श्री.साने गुरुजी और श्री.भाऊसाहब रानडेने सेवादलमें आगे बढाई।

इन दोनोंकी प्रेरणासे समाज के सभी तबकोंकी महिलाएं सेवादल के साथ जुड गयीं। ऐसा प्रयोग करनेवाला तब सेवादल एक मात्र संगठन था। श्री.भाऊसाहब रानडे ने हर परिचित-अपरिचित घरमें जाकर पुरुषोंको समझाया। सेवादल के हर कार्यक्रममें आने के लिए स्त्रियोंको प्रेरित किया। छोटे छोटे गांवोंमें होनेवाली सभाएं वे तबतक शुरू नहीं होने देते, जबतक वहाँकी महिलाएं सभास्थानपर उपस्थित न हो जातीं। महिलाओंके सबलीकरण की आज बहुत चर्चा है। पर १९४४-४५ में जब उसपर कोई ठीक ढंगसे सोच भी नहीं रहा था, एक निश्चित दिशामें श्री.भाऊसाहब रानडे और सेवादल के उनके साथी प्रत्यक्षतः कार्यरत थे।

लडकोंकी शाखाओंके साथ साथ अब कई स्थानोंपर केवल लडकियोंकी शाखाएं भी खुल गयीं। खासकर १९४२ से १९४६ के दरमियान जो

जनजागृति हुई, उसके कारण स्त्री और पुरुषोंकी शाखाओंपर संख्या बढती गयी। लडकियोंकी शाखाओंका संचालन युवतियां खुद करती थीं। छोटी-बडी लडकियां शाखाओंपर मैदानी खेलोंका ज्ञान प्राप्त करतीं, श्रमदानमें हिस्सा लेतीं, सभाओंमें खुले रूपमें अपने विचारोंको व्यक्त करती थी।

स्वतंत्र महिला संगठक

श्रीमती अनुताई लिमये (भागवत) सेवादल की सर्वप्रथम महिला संगठक थी। वे जब जेलसे रिहा होकर आयीं तब महिला शाखाओंका काम काफी विकसित हो चुका था। सेवादल को इसकी आवश्यकता महसूस होने लगी कि इन सारी शाखाओंको एक सूत्रमें बांधा जाय। यह जिम्मेदारी श्रीमती अनुताई को सौंपी गयी। वे महिलाओंमें पहली पूर्णसमय कार्यकर्ता बनीं। अनुताईने बहुत कुशलताके साथ कार्यकर्ता-महिलाओंकी एक शृंखला तैयार की। बादमें इस कार्यमें उनके साथ जुड गई, श्रीमती इंदूताई केळकर(भट)। वे भी पूर्णसमय कार्यकर्ता थीं। इन दोनोंने मिलकर पूरे महाराष्ट्र का दौरा किया। इन दोनोंके अथक प्रयत्नोंके कारण महाराष्ट्र के लगभग आठ जिलोंमें महिला जिला संगठकोंकी नियुक्ति हुई। ये सारी महिलाएं अपना पूरा समय सेवादल के कामोंमें ही गुजारती थीं।

श्रीमती विमल गरुड सेवादल की सर्वप्रथम स्वयंसेविका थीं। वे आज भी कार्यरत हैं। श्रीमती आवाबेन देशपांडे, सिंधू देशपांडे, सुमति मुळे, सुनीता देशपांडे, मृणाल गोरे, सुधा डेंगळे, बकुळा जोशी, कुसुम पटवर्धन, शांता लिमये, कमल उपाध्ये, चंद्रा किर्लोस्कर, यमु कुंभारे, जान्हवी थत्ते, कमल रेडीज, किशोरी पुरंदरे, शकुंतलाबाई परांजपे, सिंधू चौधरी, कमलाबाई गाडगीळ, माई केदारी, यमुताई मायदेव, सिंधू काटे जैसी कितनी ही समर्पित महिलाएं तब पूरे महाराष्ट्रमें राष्ट्र सेवादल के कामोंको आगे बढानेमें जुटी हुई थीं। इतने नाम काफी नहीं है, और भी कई महिलाएं थीं।

इन महिलाओंके कारण कई परिवार राष्ट्र सेवादल के साथ जुड गये। यह एक नवजागरण था। कला, शिक्षा, श्रम-संस्कार, परिवार-नियोजन, शारीरिक शिक्षा, प्रौढ साक्षरता, व्यसनमुक्ति, सामूहिक तथा अंतर्जातीय विवाह इन सभी क्षेत्रोंमें इन महिलाओंने सफलता के झंडे गाढे। सर्वसामान्य

स्त्रियोंमें आत्मविश्वास बढता गया। अपनी चार दीवारी से बाहर निकलकर महिलाएं विभिन्न क्षेत्रोंमें धडल्लेसे आगे आने लगीं। स्त्री-जागरण का यह सारा श्रेय सेवादल की महिला कार्यकर्ताओं की देना होगा।

प्रौढ महिलाओंके लिए जीवन के कर्मक्षेत्रमें मानो कोई जगह थी ही नहीं। वे या तो अपने अपने घरोंके लिए समर्पित थीं, या फिर मठ-मंदिर और देवी-देवताओंके पूजा-पाठमें व्यस्त थीं। पर अब प्रौढ महिलाओंमें भी अपने दायरेसे बाहर निकालने की आकांक्षा प्रगट होने लगी। शाखाओं तथा कार्यक्रमोंमें बहुत बडी संख्यामें युवतियोंका सहभाग होता था; धीरे धीरे प्रौढाओंका भी बढने लगा। १९४४ में मुंबई, पुणे और नगर जिलोंमें प्रौढ महिलाओंकी शाखाएं शुरू हुईं। १९४८ तक पूरे महाराष्ट्रमें लगभग ३३ प्रौढ शाखाएं थीं। शाखातंत्र और कवायद के साथसाथ इन महिलाओंको अलग अलग खेल, वर्तमान सामाजिक प्रश्न, स्त्रियोंके प्रश्न, तत्संबंधी आंदोलन, आदिकी जानकारी दी जाती। आज महाराष्ट्र के सामाजिक तथा राजनीतिक क्षेत्रमें चमकनेवाली कई महिलाओंको प्रेरणा और मार्गदर्शन सेवादल की इन शाखाओंपर मिला। चरित्रकी सबलता और सक्षमता बनाए रखनेकी शिक्षा भी वहीं पर मिली। उनके सारे जीवन को गति दे सके ऐसा दाय भी इन शाखाओंकी ही देन थी।

जैसा कि श्री.भाऊसाहब रानडे चाहते थे, सेवादल में स्त्रियोंके व्यक्तिमत्त्व विकास को सर्वाधिक प्रधानता दी जाती थी। शारीरिक, मानसिक, सांस्कृतिक और बौद्धिक विकास के लिए युवतियों और प्रौढाओंको सेवादल में सर्वाधिक 'स्पेस' मिलती थी। सेवादल जिस मूलभूत सामाजिक क्रांतिकी दिशामें बढ रहा था, उसके लिए स्त्रियोंका यह उत्थान आवश्यक था। तब अन्य भी सामाजिक संगठन और राजनीतिक पार्टीयां थीं। उनके कार्योंमें स्त्रियोंका कम अधिक सहयोग रहता था। पर समाजकी सभी स्तरोंकी महिलाओंके लिए सर्वाधिक विश्वसनीय और उपयुक्त कार्यक्रम केवल सेवादल ही दे पा रहा था।

खासकर ग्रामीण महिलाओंने इन कार्यक्रमोंमें उत्साहसे हिस्सा लिया, क्योंकि सेवादल के कार्यकर्ता जाति-धर्मका भेद मानते नहीं थे। स्पृश्य और अस्पृश्य महिलाओंके सम्मिलित कार्यक्रम होते थे। भोजन के लिये भी वे एक साथ ही बैठते। इस कारण कभी गांव या शहर के कुछ लोगोंके रोष का

भाजन भी बनना पडता। पर स्त्री-पुरुषकी सभी स्तरोंपरकी समानता के लिये कटिबद्ध सेवादल अपनी मान्यता से कभी पीछे नहीं हटा।

लगभग १९६० तक स्त्रियोंके सर्वांगीण विकासके लिए सेवादल कई दिशाओंमें काम करता रहा। मुंबई, पुणे, औंध, कुलाबा, सोलापुर, ठाणा और खानदेश जिलोंमें स्थान-स्थानपर स्त्रियोंके लिए विशेष शिक्षा शिविरोंका आयोजन किया गया। १९४४ में औंध, १९४६ में पुणे, १९४८ में खानदेश, १९४९ में फिर पुणे तथा १९६३-६४ में धूलियामें विशाल पैमानेपर युवती और प्रौढ महिला शिविरोंका आयोजन हुआ।

इन शिविरोंकाही परिणाम था कि स्वतंत्रताके बादके लगभग सभी जनआंदोलनों में सेवादल में शिक्षित महिलाओंका बहुत बडा योगदान रहा। मुंबईमें हुए बम कांडमें श्रीमती आवाबेन देशपांडे, पुणे में पानशेत की बाढ के समय अधिकांश स्वयंसेविकाओंने, नौखालीमें बलवेमें श्रीमती सिंधु देशपांडे और इंदू केळकरने, सोलापुर के अकाल में सिंधू देशपांडे, बढते भावों के विरोध में श्रीमती मृणाल गोरे और कई महिला कार्यकर्ताओंने बढचढ कर हिस्सा लिया।

संयुक्त महाराष्ट्र का आंदोलन, गोवा मुक्ति संग्राम, चीन और पाकके आक्रमणोंके समय सेवादल की कई युवतियों ने बिना अपनी जान की पर्वाह किये, खुदको आंदोलनोंमें झोंक दिया था। श्रीमती मृणाल गोरे, श्रीमती अनुताई लिमये, श्रीमती तारा गाडगीळ, श्रीमती सिंधु देशपांडे, श्रीमती विमल गरूड और कई नाम इस संदर्भमें बडे सम्मान के साथ लिये जाएंगे।

स्वतंत्रता के बाद राष्ट्र के सामने जो अहम सवाल थे उनमेंसे एक था परिवार नियोजन का। सरकार को इस प्रश्नकी गंभीरता देरीसे समझमें आयी। पर सेवादलने यह काम श्रीमती शकुंतलाबाई परांजपे के माध्यमसे बहुत पहले शुरू कर दिया था। कला जगत भी स्त्रियोंके लिए सर्वथा मुक्त नहीं था। कुलीन स्त्रियोंका रंगमंचपर काम करना, नाचना, गाना तक निषिद्ध माना जाता था। खासकर मध्यवर्ग और उच्चवर्ग की महिलाएं इन बातोंसे कोसों दूर रहा करती थी। तमाशा की ओर देखनेकी समाज की दृष्टि स्वस्थ नहीं थी। देहाती जीवन के मनोरंजन का वह एक महत्त्व पूर्ण साधन अवश्य था, पर शहरी लोगोंकी दृष्टिमें वह सस्ता मनोरंजन था।

सेवादलने अपने कलापथक के माध्यमसे पहली बार संभ्रान्त घरोंकी कन्याओंको मंचपर उतारा। गांव का तमाशा सेवादल के प्रयत्नोंके कारण

शहरमें प्रतिष्ठा प्राप्त कर सका। मध्यवर्ग और उच्चवर्ग की कितनीही युवतियां उसके कलापथक के माध्यमसे कला जगतमें ससम्मान दाखिल हो सकीं।

श्रमकार्य के संदर्भमेंभी ऐसा ही क्रांतिकारी परिवर्तन आया। हँसिया, कुदाल, फावडे लेकर श्रमिक वर्ग की महिलाएं कारखानों और खेतोंमें काम किया करती थीं। पर सेवा-पथक के कारण संभ्रान्त घरोंकी कन्याएं तक खेतोंकी मेंढ तैयार करती थीं, रास्तोंकी मरम्मत करती थीं। कुएं खोदती थीं, बांध बनाती थीं, झुग्गी झोपडियों को सँवारती थीं, मजदूर महिलाओंके साथ कंधेसे कंधा मिलाकर पसीना बहाती थीं। इतनाही नहीं तो गांव-सिवान की महिलाओंको इकट्ठा कर उनके साथ बातचीत करना। उन्हें नये खेल, नये गीत सिखाना, आरोग्य और बच्चोंकी देखभाल के बारेमें उन्हें शास्त्रीय जानकारी देना, उत्तम ग्रंथोंका सार बताना, कहानियाँ कहना इत्यादि कई काम वे बडे चाव से करती थीं। गांव और शहर के मध्यकी दूरी सेवादल के इन उपक्रमोंके कारण बहुत कम हो गयी थी। तब तो देहातकी खानदानी महिलाएं तक परदा करती थीं। घूंघटमें रहती थीं। इन कार्यकर्ता महिलाओंने वर्षों वर्षोंकी इस परदा प्रथा को भी तोडनेकी कोशिश की।

स्त्री-पुरुष की समता के लिए आज दुनियाभरमें एक खुली लडाई चल रही है। पर सेवादलने काम शुरू किया तब ऐसी स्थिति नहीं थी। बगावत और रूढि ये दोनों एक दूसरेके नितांत खिलाफ होनेवाले शब्द माने जाते थे। परंपराओं और अंधविश्वासोंकी सलाखोंके पीछे वर्षोंसे बंद होनेवाली स्त्री जातिने भारत के स्वतंत्रता संग्राममें पहली खुली सांस ली।

सेवादल ने उस परंपराको आगे बढाया। सेवादल के मंचपर तब कई अंतर्जातीय विवाह हुए। पुरुषोंके साथ स्त्रियोंनेभी बडी हिम्मत के साथ जातिके बंधनोंको नकारा। कुछ कालतक उसका जो खामियाना भुगतना पडा, वह भी भुगता।

समाजसेवा से लेकर व्यापार और राजनीति तक के कई क्षेत्रोंमें सेवादलमें संस्कारित एवं दीक्षित महिलाओंने बहुत प्रशंसनीय कार्य किया है।

सन १९५०-५५ के बाद सेवादल की शाखाओंपर महिलाओंकी संख्या घटने लगी। उसके कई कारण थे। एक तो जगहजगह स्कूल और कालिज खुलते गये। जिन कामोंके लिए लडकियां सेवादलमें आती थीं, उन्हें वे ही काम करनेका मौका अपनी अपनी स्कूल या कालिजमें मिलने लगा।

दूसरे, स्वतंत्रता आंदोलन के समय जैसा विलक्षण प्रेरणादायी वातावरण था, और देशके प्रति कुछ कर गुजरनेकी जैसी लगन युवा पीढीमें थी, वैसी बाद के कालमें नहीं रही। अनेकोंके जीवनसे 'देश' शब्द मानो हट ही गया। जो पुरानी और अनुभवी कार्यकर्ता थीं उनके स्थानपर नया नेतृत्व प्रस्थापित नहीं हो सका। परिणामतः दो पीढियोंके सोचमें और कार्यमेंभी काफी अंतर आ गया। सन १९६० तक यह पानी उतारपर ही रहा। जिस प्रकारकी ध्येयवादिता का आकर्षण पहली पीढीमें था, वैसा स्वतंत्रता के बादकी पीढीमें दिखाई नहीं दिया।

समाजवादी महिला सभा

पर १९५९ में सेवादल में संस्कारित और दीक्षित महिलाओंने तथा प्रजा समाजवादी पार्टीके कुछ कार्यकर्ताओंने मिलकर 'समाजवादी महिला सभा' की स्थापना की। सेवादल के शिविरोंके समानान्तर समाजवादी महिला सभा के शिविर लगते रहे। प्रौढ महिलाओंकी शाखाएं भलेही बंद हो गयी हों, पर समाजवादी महिला सभा के विभिन्न कार्यक्रमोंने इस रिक्त स्थानकी पूर्ति कर दी। महिला सभाकी कार्यकर्ता सेवादल के सारे कार्यक्रमोंमें अग्रसर रहा करती थी।

समाजवादी महिला सभा एक ऐसी नयी स्त्री का निर्माण चाहती थी जो जोतिबा फुले की ध्येयवादितासे प्रेरित होकर परंपराओंके खिलाफ जंग छेडे, जो समाज सुधारक आगरकर की कल्पनामें होनेवाली, रूढियोंके विरुद्ध लडनेवाली हो, जो मनुस्मृतिद्वारा लायी गई, गुलामी की जंजीरोंको तोड दे, जो गांधीजीकी तरह हर आंदोलनमें सत्याग्रही निष्ठासे जूझे, जो वैज्ञानिक दृष्टिकोण रखती हो और जिसमें साहित्य तथा कला संबंधी गहरी समझ हो।

समाजवादी महिला सभा चाहती थी कि जनतांत्रिक समाजवाद के मूल्य समाजमें प्रस्थापित हों। उसके लिए उसने अपना काम समाज के सबसे निम्न तबकेसे शुरू किया।

महिला सभा की यह विशेषतः रही कि परंपरागत जीवनमूल्योंमें जो कुछ सार्थक, प्रासंगिक और मानवीय हैं उसे बचाए रखकर, नारी अस्मिता का संघर्ष वह चरमसीमातक पहुंचा सकी। जिन क्षेत्रोंमें पुरुषोंकी पहल कमी थी, उन क्षेत्रोंमें तब महिला कार्यकर्ताओंने अपनी जगह बना ली। मुस्लिम

स्त्रियोंको बराबरी का हक मिले इसलिए कोशिश करनेवाली देशकी शायद यह पहली संस्था है।

महाराष्ट्र की कोईभी राजनीतिक पार्टी जब मुस्लिम स्त्रियोंके प्रश्नसंबंधी बातचीत करनेका साहस नहीं कर रही थी, तब समाजवादी महिला सभाने उसके हर प्रश्नपर तीखा संघर्ष करनेकी हिम्मत बताई है। ऐसाही काम अस्पृश्योद्धार संबंधी भी है। छोटे छोटे गावोंमें जाकर हरिजन बस्तीमें साफसफाई का काम करना, उनके बच्चोंको पढाना, वहांकी महिलाओंके लिए संडास बनाना, उन्हें पीनेका पानी मिले उसके लिए जूझना, इत्यादि काम वे वर्षोंतक लगातार करती रहीं।

रचनात्मक और संघर्षात्मक इन दोनों मोर्चोंपर इन महिलाओंने जो काम किया है, उसका इतिहास काफी लंबा चौडा होगा। हमारे पास इतनी जगह है नहीं। पर यह निश्चित रूपमें कहा जा सकता है कि महाराष्ट्र की महिलाओंको एक प्रगतिशील दृष्टिकोण देनेमें सेवादल में संस्कारित इन महिला कार्यकर्ताओंका बहुत बडा योगदान रहा है।

श्रीमती अनुताई लिमये, सिंधू देशपांडे, मृणाल गोरे, प्रमिला दंडवते, कमल देसाई, शुभांगी जोशी, सुधा वर्दे, विमल गरुड, शकुंतला परांजपे, जैसे अनगिनत नाम हैं, जिन्होंने अपने कामोंसे न केवल राष्ट्र सेवादल और समाजवादी महिला सभा का नाम उन्नत किया, वरन पूरे समाजवादी आंदोलनको एक प्रतिष्ठा मिला दी।

स्त्रियोंसे संबंधित कई प्रश्न हैं। उन्हें तत्संबंधी सही जानकारी मिले इसलिए आसान भाषामें लगभग सोलह पुस्तिकाएं सभाने प्रकाशित कीं। अधिकांश महिलाओंको इन पुस्तिकाओंके कारण समाजवाद, जनतंत्र, महिलाओंके लिए बने कानून, आदिके बारेमें सामान्य जानकारी मिल सकीं।

समाजवादी महिला सभाने समाजके सबसे नीचे के तबके के साथ अपना सक्रिय संबंध बनाए रखा। 'आदिवासी सहज शिक्षण परिवार' और 'आवाबेन नवरचना केंद्र' के माध्यमसे आदिवासी महिलाएं और बच्चोंके लिए कई दिशाओंमें काम किया। आरोग्य और शिक्षा को प्रधानता देते हुए सभाने आदिवासी स्त्रीके उत्थान के लिए अथक प्रयास किये।

'आवाबेन नवरचना केंद्र'ने झोपडपट्टीमें रहनेवाली महिलाओं और बच्चोंपर अपना ध्यान केंद्रित किया। बालवाडी, अध्ययन वर्ग, प्रशिक्षणवर्ग,

ग्रंथालय आदिके द्वारा उस क्षेत्रकी महिलाओंके साथ सभा का निरंतर संपर्क रहा। माई केदारी के साथ कितनी ही बहनें सालोंसे इस प्रकल्पपर काम करती आ रही है।

ज्ञान दीजिए पर सबसे पहले महिलाओंको काम दीजिए, यह सभा का आग्रह था, वे स्वावलंबी बनेंगी, खुद पैसा कमाने और खर्च करने लगेंगी तो उनके आधेसे अधिक सवाल अपने आप हल हो जाएंगे, ऐसा सभाका मानना था।

दिल्लीमें देशकी विभिन्न महिला कार्यकर्ताओं तथा संगठनोंको तीन-चार बार इकट्ठा कर श्रीमती प्रमिला दंडवतेने स्त्रियोंके प्रश्नोंसंबंधी क्या क्या कार्य देशमें चल रहा है, इसकी भी जानकारी सभा की महिलाओंको उपलब्ध करा दी।

स्वतंत्रताके ५० वर्ष बाद भी स्त्रियोंपर होनेवाले विविध प्रकारके अन्यायोंमें कोई कमी नहीं आई। उलटे जैसे जैसे उपभोक्ता संस्कृति बढती गयी, वैसे वैसे स्त्रियोंपर होनेवाले अत्याचारोंकी संख्यामेंभी इजाफा हुआ। समाजवादी महिला सभाने अपनी जूझारू विरासत सेवादल से पायी है। उस विरासत के बलपरही वह महंगाई के खिलाफ, अन्याय के खिलाफ, सामाजिक परिवर्तन के लिए, अपने अधिकारोंकी रक्षा के लिए बहुत तीव्र संघर्ष करती आयी। जितने विविध आंदोलन महाराष्ट्र के समाजजीवन में महिला सभाने चलाए, शायद ही अन्य किसी संगठनने चलाए हों।

सबसे बडी बात यह है कि अपने किसी भी काम के लिए समाजवादी महिला सभा सरकारसे एक पाई की भी मदद मांगती नहीं है। उसका काम बहुत बडे पैमानेपर भले ही न फैला हो, पर वह एक निश्चित धीमी गतिसें आगे बढ रहा है, इसमें कोई शक नहीं। लगभग ४२/४३ वर्षोंतक उसने अपना काम जारी रखा और आज भी जारी है।

■

।। अध्याय आठवाँ ।।

'आंतरभारती'

अमृत पुत्र

विनोबाजी ने साने गुरुजी को 'अमृतपुत्र' कहा था। एक पत्र में उन्होंने लिखा था 'उनकी मृत्यु हुई है, इस बातपर मेरा विश्वास नहीं। मैं मानता हूं कि उन्होंने शायद यह नाटक किया है। उनकी सच्ची पहचान है 'अमृतस्य पुत्रः।'

गुरुजी सचमुच अनेक अर्थोंमें चिरंजीव थे। उनके मन में करुणा का अपार सागर लहराता था। दूसरों का दुख देखकर दुःखी होनेवाला, रोनेवाला, उनके जैसा करुणामय हृदय दुर्लभ है। लोग जिंदगी भर अपने दुःखों का रोना रोते रहते हैं। गुरुजी के लिए तो दूसरों की जिंदगी ही सबकुछ थी। उनका अपना वैसे कुछ था ही नहीं। वे मानो पूरे समाज के लिए समर्पित थे। बच्चे उनसे कहानियाँ सुनने के लिए लालायित रहते। पारस स्पर्श के समान ये कहानियां जीवन के लोह कणों को स्वर्ण बना देती। आज भी उनकी कहानियों का अक्षय भांडार बालमन को संपन्न, समर्थ और उदार बनाने में सक्षम है।

युवकों की एक पूरी पीढी गुरुजी के विचार और आचारों से प्रेरणा पाती रही। श्री.पु.ल.देशपांडे कहते हैं, 'हम एक ऐसे युग में युवा बनते गए जब साने गुरुजी का प्रकाश अपने जीवन में न लेने की बात सोचना भी संभव नहीं था। आरंभ से अंत तक वे युवकों के ही नेता थे। अतः कोई युवक है और उसे साने गुरुजी ने आकर्षित किया नहीं, ऐसा हुआ ही नहीं।'

स्वतंत्रता के लिए सर हथेली पर लेकर जूझनेवाले सूरमा जैसे गुरुजी से प्रेरणा लेते थे, वैसे चुपचाप, शांति के साथ, अनाम रहकर समाज में रचनात्मक काम करनेवाले कार्यकर्ता भी उनसे प्रेरणा ग्रहण करते थे। बच्चों

के लिए 'मृदुनि कुसुमादपि' होनेवाले गुरुजी युवकों की सभा में भाषण देने को खडे होते तो मानो 'जलता सूरज' बन जाते। जयप्रकाशजी ने उन्हें एक सभा में बोलते सुना तो चकित रह गए। उन्होंने कहा 'इस आदमी का व्यक्तित्व अनोखा और विशाल है, जब साथ में बैठते हैं तब इनकी महानता की कल्पना नहीं आती। बडे प्रभावी वक्ता है, जनता के साथ सही मायनों में एकात्म हो जाते हैं, तभी इतना प्रभावी भाषण दे सकते हैं।'

वे जैसे साधारणों की प्रेरणा थे वैसे असाधारणों की भी प्रेरणा थे। आचार्य अत्रे उन्हें 'साहित्यकारों के साहित्यकार' कहते थे। 'शामू की माँ' और 'भारतीय संस्कृति' ये उनके दोनों ग्रंथ मराठी साहित्य के 'अक्षर स्रोत' हैं। 'परी' संग्रह की कविताएं तो महाराष्ट्र आज भी गुनगुनाता है। गुरुजी का साहित्य सही माने में जीवन को स्पर्श करनेवाला साहित्य था।

'उनके वाङ्मय का परिणाम न जीवन विन्मुख करता है न मृत्यु के प्रति आसक्ति निर्माण करता है। उनके वाङ्मय का परिणाम है– जीवन के प्रति आसक्ति। इस जीवनासक्ति में विशिष्ट परिवर्तन कर सकने की आकांक्षा और परिवर्तन के उस प्रयास में अगर मौत भी आती है तो उसे स्वेच्छया स्वीकृत करने की तैयारी। यह सामर्थ्य देनेवाला वाङ्मय है। समर्थता देना और समर्थ बनाना साधारण के बस की बात नहीं होती, उसके लिए असाधारण मन चाहिए।' गुरुजी के पास यह असाधारण मन था। यह मन अपने साहित्यसंसार में इतना रम जाता था कि कई कथा कहानियों में, उपन्यासों में पात्र बनकर उतर आता। रचना और रचनाकार दोनों मानो चारों ओर से पाठक को अपनी लपेट में लेते। ३५ साल गुरुजी की मृत्यु को हो गए लेकिन उनके 'साहित्य का यह जादू' महाराष्ट्र के समाज जीवन के सर पर चढ कर आज भी बोल रहा है।

उपन्यास, कथा, कविता, नाटक, पत्रलेखन, चरित्रलेखन, निबंध लगभग सभी विधाओं में उनका अप्रतिहत संचार था। उनके द्वारा अनूदित और संपादित साहित्य भी विपुल है।

राजनीति के क्षेत्र में गुरुजी 'योद्धा' थे, तो वैयक्तिक जीवन में संत। उनके जैसा सर्वथा निरीच्छ नेता यदाकदा ही होता है। गांधीजी के आदेश पर तब राजनीति की हर जंग में वे पहली पंक्ति में रहे। बडी शान से कई बार जेल भुगती। लेकिन कभी उन्होंने जेलरसे विशेष रियायत मांगी नहीं,

राजबंदियोंका प्रथम वर्ग भी उन्होंने नकारा। वे सदा सामान्य कैदियों के साथ रहे। यात्रा में भी तृतीय वर्ग में ही उनकी जगह थी। वहां भी वे पासपडोस के लोगोंमें तुरंत घुलमिल जाते। प्यार से उनके साथ बतियाते; उनकी हर संभव सेवा करते। गुरुजी शतप्रतिशत जनता के आदमी थे। मनुष्य के प्रति आस्था उनके चरित्र की धूरी थी। इसी आस्था ने उन्हें 'मातृधर्मी' बना दिया।

जीवनभर जिन बातोंपर इस 'अमृतपुत्र' ने गंभीरता से सोचा, उनमें 'आंतरभारती' प्रमुख है।

यह देश अनेक धर्म, जाति, परंपराओं और मान्यताओं का केंद्र है। इसमें विविधता में एकता का सूत्र अवश्य है लेकिन यह एकता प्रतीत नहीं होती। फूट और भेदभाव के छोटे-बडे कई भूकंप यहाँ नित्य होते रहते हैं। इसके पहले कि लोग किसी एक विचार, एक आचार, एक आकांक्षा, एक भाषा और एक देश के झंडे के नीचे इकट्ठा हों, परस्पर विरोध की तूफानी हवाएं चलना शुरू हो जाती हैं और कई सालों के अथक परिश्रम से बसे बसाए घोसले उजड जाते हैं। विघटन और विध्वंस की इस प्रक्रिया को गुरुजी ने अपनी आँखों से देखा था।

काफी सोच विचारकर पुणे के साहित्य सम्मेलन में उन्होंने 'आंतरभारती'संबंधी अपनी प्रारंभिक कल्पना प्रस्तुत की थी–

'कई बार मेरे मित्र मुझसे पूछते हैं कि 'तुम्हारा ध्येय क्या है?' क्या बताऊं? मैं चाहता हूं, सर्वत्र मानवता के दर्शन हों, समता रहे। न कोई ऊँच न कोई नीच! कम से कम मेरे जीवन में ऐसा कोई भेद कभी न रहे। मैं कांग्रेस के आंदोलनोंमें शरीक हुआ इसलिए कि देश की स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए कुछ कर सकूं। मुझे कांग्रेस मानवता का प्रतीक लगती थी। मैं जाति धर्मनिरपेक्ष हूं। कांग्रेस भी सभी की है। मुझे इस कारण उससे अटूट प्रेम हैं। १९३० में धूलिया जेल में मुझे श्रेष्ठ विधायक कार्यकर्ता श्री.शंकरराव ठकार मिले। उन्होंने पूछा, 'आप आगे चलकर क्या करनेवाले हैं?' मैंने कहा 'मैं सत्यधर्म का, मानवधर्म का प्रचार करूंगा।' किसी समय मुझे लगता था कि सबकुछ छोडछाडकर हिमालय में चला जाऊँ। वहां परमात्मा मिलेगा। लेकिन विकारों में डूबे हुए को न परमात्मा मिलेगा, न धर्म। वह अगर हिमालय में कहीं है, तो यहां कैसे नहीं होगा? उसका साक्षात्कार याने सर्वत्र शिवम् के दर्शन। अपने अपने ध्येय के लिए संघर्ष करते हुए भी, दूसरों के लिए मन में सहानुभूति

रखना। आज मुझे उस परमात्मा से मिलने की कोई ललक नहीं। मैं अपने तई कोशिश कर रहा हूं; क्षुद्रता को जीतना चाहता हूं, विकारों, स्वार्थों और अहंकारों पर विजय पाना चाहता हूं। प्रभुका स्मरण होते ही जहां कहीं होता हूं वही माथा टेककर उसे प्रणाम करता हूँ। मुझे काफी राहत मिलती है। मुझे एकता की प्यास है। यह भारत सारी दुनिया का प्रतीक है। इसकी सेवा याने मानवजातिकी सेवा यहाँ सारे धर्म, सारी संस्कृतियाँ हैं। यहीं पर रामकृष्ण परमहंसजीने सभी धर्मों का साक्षात्कार किया, महात्माजी ने सभी धर्म अपने जीवन में समाविष्ट किए। हमें चाहिए कि धीरे-धीरे हम सभी इस एकता को, इस विश्वात्मकता को अपनाएं।

१९३० में मैं त्रिचनापल्ली के जेल में था। अमलनेर हाईस्कूल की नौकरी छोडकर मैं सत्याग्रह में शामिल हुआ। मेरे स्कूल में एक बंगाली मित्र थे। त्रिचनापल्ली जेल में एक मित्र मिले श्री.व्यंकटाचलम्। बी.एस्सी थे। तमिल, तेलुगु, मलयालम् जानते थे। मैंने अमलनेर के मेरे मित्रों को लिखा, 'इन्हें अपने स्कूल में भर्ती कर लें। एक बंगाली मित्र हैं ही, ये दक्षिण के मित्र भी आ जाएंगे तो हमारा स्कूल भारतीय एकता का प्रतीक बन जाएगा। मैं चाहता हूं कि वहाँ हर प्रांत का एक शिक्षक हो। हर प्रांत की भाषा वहाँ बोली जाए। हर प्रांत की संस्कृति को, साहित्य को हम समझ लें।'

तब से एक सपना मैंने देखा था कि एक ऐसी संस्था बने जो भारत की एकता का प्रतीक हो, उस एकता की प्रतीति दे।

हम 'अखंड भारत' कहते हैं लेकिन हम नहीं जानते यह भारत क्या है? क्या हमें ऐसा लगता है कि ये सारे प्रांत, ये सभी भाषाएं, मेरी हैं? इन्हें बोलनेवाले मेरे भाई हैं, उन्हें मुझे मिलना चाहिए, इन भाषाओं का अध्ययन करना चाहिए? जब भी समय मिलता महात्माजी अलग अलग भाषाएं सीखते। पू.विनोबाजी यही करते हैं। हममें से कितनों में ऐसी ललक है? मुंबई में रुसी, जर्मन, फ्रेंच भाषाएं पढाने की सुविधा है, लेकिन कोई ऐसी संस्था नहीं, जहाँ सभी भारतीय भाषाएं पढाई जाती हों।

'आंतरभारती' संस्था की स्थापना करना मेरा न जाने कितना पुराना सपना है। एक बढिया जगह हो। सरकार दे या फिर कोई सज्जन। वहीं हर प्रांतिक भाषा के तज्ज्ञ रहेंगे। वे सब हिंदी जानते हों। हर प्रांतीय भाषा का वाङ्मय वहाँ होगा। संस्था की इमारत के पास विद्यालय होगा। खेती, हस्तोद्योग होंगे। सभी भारतीय भाषाएं पढाने की व्यवस्था विद्यालय में होगी। छात्र सभी भाषाएं सुन सकेंगे। हर भाषा के साहित्य का मराठी में परिचय लिखा जाए। अन्य भाषाओं में भी नियतकालिक प्रकाशित होते रहे और सभी को भारत की सच्ची पहचान हो।

यह मेरा सपना है।

विश्वकवि रवींद्रनाथ ठाकुर ने विश्वभारती की स्थापना की, सारी दुनिया का और भारत का संबंध बना रहे इसलिए। ऐसा नहीं कि पूर्व पूर्व है और पश्चिम पश्चिम। जो पूरब से निकला पश्चिम में मिलेगा, जो पश्चिम से निकला पूरब में। दुनिया वर्तुलाकार है, पूर्ण है। भारत विश्व की इस एकता का अनुभव लेने के लिए है, लेकिन विश्व की एकता का अनुभव लेने से पहले अपना अनुभव लीजिए। भारत के प्रांत कहां एक दूसरे को पहचानते हैं? हम कहां हर प्रांत का सांस्कृतिक कार्य, नवसृजन जानते हैं?

आंतरभारती भक्ति से, प्रेम से भारतीयों को एक दूसरे की पहचान करा देगी। हर प्रांत के महान व्यक्तियों की तसवीरें वहीं रहेंगी। हम आनेवाली पीढी को कहेंगे, 'ये सारे नवभारत के निर्माता हैं।' साहित्य के साथ साथ वहीं ललित कलाओं का भी अध्ययन-अध्यापन होता रहेगा। सरकारी शिक्षा भी मिलेगी। नवभारत की निर्मिति का तीर्थक्षेत्र बने 'आंतरभारती'। मेरी आँखों के सामने एक सुंदर सपना है। 'आंतरभारती' के बच्चे छुट्टियों में दूरदराज के देहातों में जा रहे हैं, सभा-सम्मेलनों में हिस्सा ले रहे हैं, सफाई कर रहे हैं। 'आंतरभारती' से सहकार आंदोलन दूर दूर तक फैलाने के लिए लाखों जवान बाहर निकल रहे हैं। लोककलाओं का वहाँ अध्ययन-अध्यापन हो रहा है। मेले, नृत्य, गीतों से वातावरण महक रहा है।

केवल भाषाओं का अध्ययन करना ही इस संस्था का ध्येय नहीं है। मैं चाहता हूं, वहाँ और भी कई प्रवृतियाँ चलें। कलाएं और ग्राम्य जीवन का अध्ययन हो। गांव के उद्योगों में से कला का विकास कैसे किया जा सकता है, इसे कलाकार बताएंगे। सीधी सादी दरियाँ, बांस की टोकरियाँ, मिट्टी के बर्तन कलात्मक और रमणीय बनाए जा सकते हैं। इसलिए ग्रामोद्योग-पंडित और कलाकारों का वहीं सब से ज्यादह सम्मान रहेगा। अगर संस्था के पास काफी जमीन होगी तो वहीं खेतीबाडी के नए नए प्रयोग करेंगे। विद्यार्थी मेहनत करेंगे, नित्य नूतन का निर्माण करेंगे। आनंद, सेवा,

श्रम, संस्कृति, उदारता, ज्ञान-विज्ञान, कलाएं इन सबसे समन्वित एक गंभीर प्रवृत्ति का निर्माण 'आंतरभारती' करना चाहेगी। मेरे मन का यह सपना अनंत है। शब्दों में यहाँ तक कहूँ। लिखूँ तो क्या लिखूँ?

राष्ट्र की एकता का अनुभव लेने का मंगल प्रयत्न हम लोगों के जीवन में नित्य हो। अलग अलग कल्पनाएं प्रत्यक्ष में उतारने के लिए देश के सभी नागरिक एक होकर मेहनत कर रहे हैं, ऐसा दृश्य सर्वत्र दिखाई दे। यह हो कि हिंदू-मुसलमान, स्पृश्य-अस्पृश्य सारे इकट्ठा होकर नवनिर्माण में जुट गए हैं। भिन्न भिन्न प्रांतों के लोग एक दूसरे को स्नेह से मिल रहे हैं, मदद कर रहे हैं, एक दूसरे की संस्थाओं का अवलोकन कर रहे हैं, एक दूसरे से प्रेरणा ले रहे हैं, ऐसा सर्वत्र हो। भारतीय आत्मा की एकता का संगीत अनुभूत करने के लिए अनंत कर्मोंका साज देशभर में झंकृत होना चाहिए।

कहाँ मैं इस भव्य प्रयोग का शुभारंभ कर सकूँगा, प्रभु जाने।

आज हमें स्वतंत्र भारत का भव्य महल खडा करना है। भाषानुसारी प्रांतरचना बहुत पहले हो चुकी है। लेकिन यह रचना विद्वेष न फैलाए। सब में भाईचारा, स्नेहभाव रहे। सब यह जाने कि भारत का हृदय एक है। हम परमात्मा को सहस्रशीर्ष, सहस्राक्ष कहते हैं, लेकिन सहस्रहृदय ऐसा विशेषण न कभी सुना, न कभी किसीने उसे दिया। परमात्मा का हृदय एक है, ठीक उसी तरह भारत के प्रांत चाहे कितने ही हों, उनका हृदय एक होना चाहिए।

प्रांत 'भारती' बने। भारत अति भारती हो। क्षुद्रता हमें कहीं पर भी न घेरे। उद्यम करोगे, विशाल बनोगे तो समृद्ध बनोगे। इसलिए संकुचितता छोडकर सारे प्रांत एक हों। 'आंतरभारती' और 'विश्वभारती' ये दो हमारे चिरंतन ध्येय बनें। सारे प्रांतों का एक दूसरे से और पूरे भारत से प्राणमय एकात्म संबंध को हम आंतरभारती कहेंगे। दूसरा है रविबाबू का विश्वभारत।

मुझे लगता है, पूरे महाराष्ट्र में गीतापर प्रवचन करते यहाँ वहाँ घूमता फिरूँ। प्रवचन के अंतमें मेरे इस स्वप्न पूर्ति के लिए लोगोंसे मदद मांगूँ। मुझसे स्नेह करनेवाले हजारों मित्र हैं। क्या वे मेरी मदद नहीं करेंगे? मैने तय किया है, सारी जिंदगी इस सपने की पूर्तता करने में बिता दूँ। सत्यसंकल्प का दाता वह परमात्मा मुझे शक्ति दे।'

साने गुरुजी के इस सपने के कारवें में आगे चलकर श्रेष्ठ समाजसेवी यदुनाथ थत्ते, महामानव बाबा आमटे जैसे लोग जुट गए। देश के हर प्रांत से छोटे बडे कार्यकर्ताओं की टोली इस स्वप्न की पूर्तिमें जुट गई। 'आंतरभारती' का क्षेत्र विशाल बनता गया, प्रवृत्तियां बढती गईं। इन प्रवृत्तियों की पहचान अगले पृष्ठों पर है।

आंतरभारती क्या है?

'आंतरभारती' साने गुरुजी का वह स्वर्णिम सपना है, जिसे पूरा करने में उन्होंने अपनी सारी जिंदगी दाँव पर लगा दी थी।

वे भारत को विश्व की प्रतिमूर्ति मानते थे। वे यहां सब धर्मों, सभी सांस्कृतिक धाराओं, और मानववंश की समस्त वर्ण छटाओं को उपस्थित देखते थे। समन्वय का एक महान प्रयोग न जाने कबसे, न जाने किस योजना से यहाँ चल रहा है, उसे शब्दों और जीवन के माध्यम से अभिव्यक्त करना ही उनका आदर्श था। इस आदर्श की प्रतिमूर्ति है आंतरभारती!

वे ऐसी एक संस्था बनाना चाहते थे--

जहाँ हर प्रांत के विद्वान तथा मनीषी साथ साथ रहें। सारे हिंदी से अभ्यस्त हों। सभी भाषाओं के साहित्य से वहाँ का ग्रंथालय समृद्ध रहे। संस्था से जुडा हुआ एक विद्यालय हो। खेती और हस्तोद्योग हों।

वहाँ भारतीय भाषाएं पढाई जाएंगी। विद्यार्थी का हर भाषा से, हर प्रांत की संस्कृति से निकट परिचय होगा। आदान-प्रदान होगा। समस्त भारत की पूरी पहचान होगी। यह था उनका समना।

फिर एकात्म भारत की खोज में एक जिंदा दिल कारवाँ हमराहियों की तलाश में चल पडा।

वही "आंतरभारती" है।

मसीहाओंकी मौत हरदम नए रंग लाती है। जैसे एक जिंदा महाप्राण बीज मिट्टी की कब्र में गाड दिया जाए तो वह लाखों बीजों की बाँठ लेकर फिर उठेगा। उसी तरह अपने कार्यक्रमों के द्वारा गुरुजी का वह सपना ठोस धरती पर उतरने लगा।

एकात्म भारत के नवनिर्माण के शक्तिस्वर के रूप में गूंजने लगा।

समनुयोग का ही दूसरा नाम आंतरभारती हैं।

जहाँ समनुयोग नहीं वहाँ एकात्मतला कैसे होगी?

एकात्मता का मतलब है भावस्पंदनों का एक साथ सब दूर पहुँच

जाना। पूरे देश के अन्यान्य घटकों में 'आंतरभारती' ऐसी एकता पैदा करना चाहती है।

वह किसी एक धर्मगुरु का पंथ या पोथी नहीं।

वह कोई नियमों में जकडा रहस्यमय संगठन नहीं।

वह नित्य नूतन, परिवर्धित, विकसित, वैचारिक आंदोलन है।

आंतरभारती याने हृदय की वाणी।

भारत के हृदयस्थल से निकली हुई भारत की आवाज। हृदय की वाणी सब दूर पहुंच जाती है। भौगोलिक सीमाएं उसे जकड नहीं सकतीं। हास्य और अश्रु ऐसी ही एक हृदय की भाषा है। शब्दों से परे होनेवाली भाषा।

गांधीजी कहते थे 'आमार जीवन आमार बानी– हमारा जीवन ही हमारी वाणी है।'

जहाँ जीवन ही वाणी बनता है, वहाँ जीवन जोडनेवाला होता है। 'आंतरभारती' इसी प्रकार की वाणी है।

आंतरभारती आंदोलन है भावसाक्षरता का।

भावसाक्षर वह है जो सूक्ष्मातिसूक्ष्म भावों को समझ सके और उन्हें संक्रांत कर सके, जब सूक्ष्म भावों को समझने तथा संक्रांत करने की ताकत नहीं रहती तब समाज भावहीन और क्रिया शून्य बनता है।

इस भावहीनता को मिटाने का नाम है– 'आंतरभारती।'

संस्कृति का प्रासाद मानवता की नींव पर खडा होता है। संस्कृति में सब समा सके, सब उसे हृदय से प्यार कर सकें। संस्कृति का प्रवेश समाज के सारे तबकों में हो, वह किसी एक जाति की या धर्म की बपौती न रहे।

संस्कृति की ऐसी विशाल धरोहर को हर छोटे बडे तक पहुंचानेवाला रचनात्मक आंदोलन है, 'आंतरभारती।'

देश में असुरी शक्तियां कम नहीं होतीं। भेदभाव के विषैले सर्प, जाति की मृत्युमुखी खाइयाँ, धर्म के नाम पर चलनेवाली बेशुमार लूट-खसोट, भाषाभेद की सरफुटौल, राजनीति के उलटे सीधे दांवपेच।

कंचन से लेकर कामिनी तक का कालाबाजार...

देश की भलाई कितने मोर्चों पर-कितनों के साथ लडेगी?

आंतरभारती अंधकार को, चीरती हुई प्रकाश की युद्धनौका है।

वह सहयोग मांगती है, सदाप्रकाशी योद्धाओं से,

कलम, कुदाल और तलवार के सिपाहियों से,

कानून के संरक्षकों से,

बेबाक, बेदाग तरुणाई से।

सृजन की शक्तियों को जैसे जगाना पडता है, वैसे ही संरक्षण की शक्तियों को भी सदा सजग रखना पडता है।

सजगता का ऐसा अखंड यज्ञ है– 'आंतरभारती।'

इस यज्ञ में हर व्यक्ति को कर्तृत्व की आहुति देनी होगी। कर्तृत्व की आहुति वे ही हृदय दे सकते हैं जो निर्मल, उज्ज्वल और सुंदर हैं, जिनमें कोई किल्मिष, कोई पाप, कोई स्वार्थ साँप की तरह कुंडली मारकर बैठा नहीं है, जो आलस्यहीन और संशयहीन है। जो सबसे मुक्त भाव से मिलते हैं, सब पर स्नेह बरसाते हैं।

'आंतरभारती' हृदय के ऐसे विकास का और आनंद निर्मिति का अभियान है।

अपने आदर्शों के लिए संघर्ष करना इसका मतलब दूसरों के आदर्शों को हीन मानना नहीं है। हम अपने आदर्श के लिए लड सकते हैं, मरमिट सकते हैं, लेकिन दूसरों के आदर्शों के प्रति सहानुभूति भी रख सकते हैं। क्षुद्रता, अहंकार और विकारवशता को गले लगाकर दूसरों के आदर्शों के प्रति सहानुभूति नहीं रखी जा सकती। वह ढोंग है और धोखा भी है।

'आंतरभारती' सच की नींव पर खडी, सहानुभूति से युक्त अपने आदर्शों के प्रति समर्पित अखंड साधना है।

वैफल्यग्रस्त युवा पीढी की अकर्मण्यता सारे देश में चर्चा का विषय है।

इस पीढी को देने के लिए बहुत सारे दूषण बहुतों के पास है। लेकिन सामाजिक मान्यता प्राप्त हो, सुप्त गुणों को अवसर मिले, ऐसे कार्यक्रम शायद ही कोई उन्हें देता है।

राजनीतिक दलों को युवक चाहिए ताकि समय समय पर औजार के रूप में वे उनका उपयोग कर सके। आंदोलन, बंद, घेराव, तोडफोड, नारेबाजी, विध्वंस आदि सब में यह औजार उछलता रहता है, दूसरों को छिलता रहता है, जानमाल की हानि करता रहता है।

औजार को उपयोग में लानेवाले स्वार्थी हाथ काम होने पर उसे ठिकाने लगा देते हैं!!

उसके लिए होता है फिर वही उपेक्षित, नगण्य जीवन!!

'आंतरभारती' युवाशक्ति को किसी के हाथ का औजार नहीं बनने देना चाहती। वह उस असीम शक्ति के लिए सृजनात्मक साहसों के सैकडों द्वार खोल देती है। उसकी क्षमता, कौशल, प्रेरणा और विश्वास को नए आयाम देती है।

निपट सत्तावादी बेहया और अहमक समझे जाते हैं।

'आंतरभारती' इन अहमकोंके चंगुल से युवामन को मुक्त रखना चाहती है। आचार्य दादा धर्माधिकारी कहते हैं–

'हमारी राष्ट्रीयता मध्यम पदलोपी है। जब विदेशी आक्रमण होता है तब उसका प्रतिवादी, भाषावादी और जातिवादी पद अल्पकाल के लिए लुप्त हो जाता है। वरना वह प्रायः सामाजिक राष्ट्रीयता ही है। यहाँ कोई हिंदू भारतीय है, कोई मुस्लिम भारतीय है, कोई बंगाली भारतीय है, कोई तमिल भारतीय। सिर्फ भारतीय कोई नहीं।'

क्या 'भारतीय' कोरा नाम है? केवल एक संज्ञा मात्र?

'आंतरभारती' के पास वास्तविकता को बगैर किसी ऐनक के देखने की हिम्मत है, इसलिए वह केवल भारतीयता की बात करती है, सोचती है।

भूतकाल का परिचय, वर्तमान से लगाव तथा भविष्य के लिए आश्वासन देनेवाला यह अभियान सेवा करने का विस्तृत अवसर प्रदान करता है। अब तक लोगोंके लिए सेवा की जाती थी, अब लोगों के साथ सेवा करनी है। कंधे से कंधा लगाकर प्रतिक्रियावादी तत्त्वों के खिलाफ एक जंग खेलनी है।

इसलिए 'आंतरभारती' वह विशाल मंच बन जाता है, जो नए भारत की नयी तसवीर बनने में सर्वथा रत सभी छोटे बडों को अपने में समा लेता है।

आज की दुनिया को जोडनेवाली तीन प्रमुख शक्तियाँ हैं- विद्या, विज्ञान और संस्कृति।

'आंतरभारती' इन तीनों शक्तियों की शुभ संकल्पनाओं की गूंज है।

'आंतरभारती' किसी दकियानूसी कट्टरता को लेकर नहीं चलती। वह हर प्रतिभा का स्वागत करती है, फिर वह नई हो या पुरानी।

शर्त केवल एक ही है कि,
वह जिंदगी के लडखडाते पैरों को संतुलन प्रदान करे।

अपने आपकी और
दूसरों को भी विकसित करने की
विश्वासपूर्वक क्रियाशीलता का नाम है
'आंतरभारती.'

पू. गुरुजी की भविष्यदर्शी दृष्टिने भविष्य के भारत के संकट को शायद भांप लिया था। भाषानिहाय प्रांत आगे चलकर भाषाको ही हथियार बनाकर लडेंगे और इस देशकी एकताको खतरा पैदा करेंगे, इसे वे जानते थे। बादमें हुआ भी यही।

पर 'आंतरभारती' का यह विचार एक नित्य कार्यक्रमके रूपमें सेवादल अपना न सका।

आंतरभारती कुमार-युवक मीलन (१९७२), आंतरभारती राष्ट्रीय एकात्मता शिविर, (पुणे).

जैसे कुछ प्रयास अवश्य हुए। राष्ट्र सेवादल के भूतपूर्व अध्यक्ष युदनार्थ थत्तेजी को सही मानेमें 'आंतरभारती' का विचार पूरे देशभर में फैलाने का श्रेय देना चाहिए। श्री.थत्तेजी, श्री.चंद्रकांत शहा और श्री.परीट गुरुजी ये किसीभी कामसे कहींपर भी जाय, 'आंतरभारती' की बात अवश्य चलाते थे।

दो बार की 'भारत जोडो' यात्रा, लगातार ३५ वर्षोंतक सोमनाथ के जंगलमें लगनेवाली श्रमसंस्कार छावनियाँ, और हर वर्ष के मन-मीलन समारोहमें महामानव बाबा आमटे ने गुरुजी के इस विचार को न केवल जिंदा रखा, वरन उसे एक कृतिशीलता भी दी।

'आंतरभारती' के वर्तमान अध्यक्ष श्री.सनतभाई मेहता और सचिव प्रा.सदाविजय आर्य हैं। श्री.यदुनाथजी थे तबतक सेवादल और आंतरभारती के पदाधिकारी यदाकदा इकट्ठा होकर कार्यक्रमोंपर विचारविमर्श करते थे। उनकी मृत्यु के बाद यह सिलसिला टूट गया और अब तो जहाँ 'आंतरभारती' का जन्म हुआ उस पुणेमें न 'आंतरभारती' का कोई कार्यालय है, न कोई पहचान!

श्री.सदानंद वर्देजीने 'आंतरभारती'का मूल्यांकन करते हुए बिल्कुल सही लिखा है कि "राज्योंकी स्वायत्तता और संघराज्यके चौखट के अंदर, अपनी क्षमता के अनुसार विकास करने के लिए इस व्यवस्थामें काफी जगह

है। भारतीय एकता अबाधित रहे इसलिए 'आंतरभारती' को यह विकेंद्रीकरण पूर्णतः मान्य है। राज्योंकी स्वायत्तता संविधानकी आत्मा है। संविधान की ७३ और ७४ वें पुनर्संशोधन का अगर कोई अर्थ है तो वह यह है कि विकेंद्रीकरणही भारतीय एकता और जनतंत्रकी कूंजी है। मैं तो यह कहूंगा कि विकेंद्रीकरण, 'आंतरभारती'का राजनीतिक आविष्कार है।"

भाषा और साहित्य के माध्यमसे पूरे देशकी विविध रूप संस्कृति को एक सूत्रमें बांधनेवाला ऐसा दूसरा कोई आंदोलन देशमें है नहीं।

■

॥ अध्याय नौवाँ ॥

छात्र-भारती

सन १९६० के बाद सारी दुनिया में छात्रोंके बलवे हुए। सडी-गली, पुरानी और समयसे पिछडी हुई शिक्षा पद्धतिके विरोधमें उठा हुआ यह असंतोष धीरे-धीरे समाज के सारे क्षेत्रोंमें फैलता गया। उस असंतोषपर अपराध-वृत्ति का ठप्पा लगाकर सवाल हल होनेवाला नहीं था। सडी हुई शिक्षांप्रणाली के साथ-साथ, बेरोजगारी, सामाजिक, आर्थिक विकास की गलत नीतियां, प्रशासनमें दूर दूर तक फैला भ्रष्टाचार और सत्ताकामी लोगोंकी घिनौनी हरकतें भी इस असंतोष का कारण थीं। आमूल चूल परिवर्तन करनेकी न किसी सत्तामें हिम्मत थी, न चाहत। परिणामतः छात्रोंका असंतोष उग्र रूप धारण कर हिंसापर उतर आया था। तोडफोड, आगजनी, आम बात बन गयी थी।

राष्ट्र सेवादल यह महसूस कर रहा था कि युवा जगतसें उसका पहले जैसा अंतरंग नाता नहीं रहा है। पीढियों में होनेवाली दरार संगठनमें भी उतर कर आ गयी थी। पुरानी और नयी पीढीके कार्यकर्ताओंमें तालमेल बैठाने की जैसी आवश्यकता थी, वैसी युवा पीढीके साथ सार्थक संवाद करनेकी भी थी। खासकर 'शिक्षा' पर सेवादल जैसे जैसे अधिक सोचता गया वैसे वैसे उसे इस संवाद की अधिक आवश्यकता महसूस होने लगी।

सेवादल के भूतपूर्व अध्यक्ष और आंतर-भारती के शलाका-पुरुष श्री.युदनाथ थत्ते ने यह सोचा कि सेवादल के विचारों तथा आचारोंको माननेवाला एक छात्रसंगठन शिक्षा के क्षेत्रमें होना चाहिए। सेवादल के अन्य ज्येष्ठ कार्यकर्ताओंसे भी उन्होंने सलाह की और १८ दिसंबर १९८३ को जलगांव में 'छात्र-भारती' की नींव रखी गयी। इसके प्रथम अध्यक्ष थे डॉ.मु.ब.शहा और प्रथम सचिव थी डॉ.अंजू उगांवकर।

'छात्र-भारती'ने यह तय किया कि मुख्यतः गरीब, दलित, और उपेक्षित वर्गके छात्रोंके शिक्षासंबंधी प्रश्नोंपर अधिक ध्यान देना है। उच्च वर्गके तथा मध्य वर्ग के छात्र स्कूलों, कालिजों तथा सभा-सम्मेलनोंमें बहुत सहजता के साथ व्यवहार कर सकते थे। संकोच, भय, तथा अपमान के डरके कारण पिछडे वर्ग के छात्र-छात्राएं मन मसोस कर रह जाते। उन्हें उनके विकास के उचित अवसर मिलने जरूरी थे। छात्रभारतीने प्रारंभसेही ग्रामीण क्षेत्र के छात्रोंको केंद्रमें रखकर अपने कार्यक्रमोंकी योजना की।

कालिजमें प्रवेश लेना, फॉर्म भरना, अध्ययनक्रम चुनना, विविध कार्यक्रमोंमें हिस्सा लेना, ग्रामीण क्षेत्रके छात्रोंके लिए एक संकट बन जाता। विविध महाविद्यालयोंमें इसके मार्गदर्शनके लिए छात्र-भारतीने केंद्र खोले। प्रवेश फीज, बी.एड. के लिए दाखिला, अनुदानरहित स्कूलों और कॉलिजोंके प्रश्न, अकालग्रस्त विभागके छात्रोंके लिए सहूलतें, इन सारे सवालोंके साथ जूझने और उन्हें हल करनेका बीडा छात्र-भारतीने उठाया।

नकल नहीं होने देंगे

शिक्षा क्षेत्र का महाभयंकर रोग है नकल। पहले छात्रोंमें तत्संबंधी एक अपराध-बोध रहता था। धीरे-धीरे वह गायब होकर, 'नकल हमारा अधिकार है' ऐसा माननेवाला एक छात्र-वर्ग पैदा हो गया। स्कूल, कॉलिज और विश्वविद्यालय तक इसकी ज्यादती से तंग आ गये थे। छात्र-भारती वह पहला छात्र-संगठन था। जिसने खुले आम नकल न होने देनेकी बात कहीं और उसपर अंमल भी किया। कई विश्वविद्यालयोंमें नकलविरोधी सेमिनार आयोजित कर छात्र-भारतीने अपनी भूमिका स्पष्ट की।

मुंबईमें रात्र-शालाओंके छात्रोंकी कई समस्याएं थीं। एक समय ऐसा आया कि सरकारने इन्हें बंद कर देनेकी ठानी। पर 'छात्र-भारती'ने यह नहीं होने दिया। वह रात्र-शालाओंके छात्रोंकी ओरसे निरंतर संघर्ष करती रही।

फीज माफ कीजिए

१९८४-८५ में महाराष्ट्र के अधिकांश हिस्सोंमें बरसात नहीं हुई। सुखे ने सभी को सताया। छात्रभारती ने तत्कालीन सरकारसे मांग की–सूखाग्रस्त इलाकोंके छात्रोंकी फीज माफ कीजिए। अपनी मांग के लिए पांच छात्रोंने

आमरण उपोषण किया। छठे दिन सरकारने बात मानी और छात्रोंकी फीज माफ हुई।

प्रश्न पर्यावरण का हो, भ्रष्टाचार का हो या स्त्री-पुरुष समताका, छात्र-भारती हर मोर्चेपर लडती रही। वह यह चाहती थी और आज भी यह चाहती है कि उसके संगठन में काम करनेवाला छात्र, किसी ट्रेड युनियनका मजदूर नहीं, वरन् एक जिम्मेदार, संवदेनशील नागरिक है। वह अपने पास-पडोस के सारे सामाजिक प्रश्नोंके बारेमें सचेत है।

केवल छात्र-संगठन नहीं

इस अर्थमें छात्र-भारती एक व्यापक तथा उदार दृष्टिकोण रखनेवाला संगठन सिद्ध होता है। केवल महाविद्यालयीन छात्र और उनकी समस्याओं तक ही उसने अपना कार्यक्षेत्र सीमित नहीं रखा। उसे सर्वसामान्य समाजकी समस्याओंके साथ भी जोड दिया।

आवेग और आवेश युवाओं के गुण होते हैं। इन्हींके कारण वे अन्यायपर टूट पडते हैं। पर विवेक न रहा तो ये गुण भी दोष बन जाते हैं। छात्रोंका आवेश कम न हो, पर उसका विवेक बना रहे, इसलिए छात्र-भारतीने विचार-विमर्श, चर्चा, बातचीत का रास्ता हमेशा खुला रखा। उसका हर सदस्य स्वतंत्र रूपमें विचार कर सके इसकी भी कोशिश उसने की।

स्वायत्त और स्वाभिमानी

छात्र-भारतीने किसी राजनीतिक पार्टीकी दासता स्वीकृत नहीं की। सेवादल उसकी मातृसंस्था है, पर अपने कार्यक्रमों एवं उपक्रमोंमें वह सर्वथा स्वायत्त रही। उसे सेवादल से निरंतर प्रेरणा मिलती रही, दाय मिलता रहा। छात्र-भारती ने आर्थिक-स्वावलंबन की नीति अपने जनमसेही तय की थी। आज भी वह नीति बरकरार है। स्वकष्टार्जित निधि से उसका काम चलता है।

उपक्रमशील

छात्र-भारती के वार्षिक अधिवेशन काफी उत्साह से संपन्न होते हैं। नासिक, धूलिया, औरंगाबाद, पुणे, मुंबई, लातूर, चिपळूण आदि स्थानोंपर हुए। अधिवेशनोंमें १५००-२००० तक छात्र-छात्राओंकी उपस्थिति रही।

हर वर्ष मई माहमें पांच से सात दिनका एक सुनियोजित प्रशिक्षण शिविर आयोजित किया जाता है। उसमें राज्यके हर केंद्र से लगभग पांच प्रतिनिधि शामिल होते हैं। लोकसत्ता, समाजवाद, धर्मनिरपेक्षता, राष्ट्रवाद और विज्ञानाभिमुखता ये छात्र-भारती के पंचसूत्र हैं। इन सभी सूत्रोंके अलग अलग पक्षोंपर तज्ज्ञोंके साथ, छात्रोंका विचार विमर्श होता है। छात्र-भारती 'आदेश' देनेमें भरोसा नहीं करती, विचार-विमर्श में अवश्य करती है। वार्षिक अधिवेशन एक दृष्टिसे शक्तिप्रदर्शन है, पर उसीमें भावी कार्यक्रमोंकी रूपरेखा तय होती है। छात्र भारती की यह विशेषता रही कि उसके हर कार्यक्रममें छात्रोंके साथ अध्यापक-प्राध्यापकोंकी उपस्थिति भी काफी संख्यामें रही।

जिला और केंद्र स्तरपर अलग अलग शिविरोंका आयोजन होता रहता है।

आंदोलन ही ताकत है

छात्र-भारती मुख्यतः युवाशक्तिका संगठन है। अपने स्थापना कालसे उसने कुछ बातें तय की थीं। उसमें सबसे पहली बात यह थी कि शिक्षाक्षेत्रकी हर बुराई के खिलाफ उसे अपनी ताकत के बूते जूझना है! विश्वविद्यालयों और कॉलिजोंकी उच्च शिक्षाव्यवस्था बदहाल थी और छात्र-भारती में आनेवाले युवक उसे भुगत रहे थे। यह भुगतना ही उसके आंदोलन की ताकत थी। वह कोई केवल मध्यवर्गीय सुखवस्तु युवक-युवतियोंके मनोरंजन के लिये इकट्ठा होनेकी जगह नहीं थी। अपने जूझारू तेवर उसने अपने स्थापना समारोह मेही प्रगट किये थे।

उसने जिन आंदोलनोंमें हिस्सा लिया, केवल उनकी सूची देखें तब भी यह समझमें आ जाता है कि उसने उपर्युक्त दोनों सिद्धांतोंको मध्यमें रखकर ही आंदोलनोंका आयोजन किया था, उसमें शिरकत की।

१. रात्रीशाला बंद न हो।
२. अकालग्रस्त प्रदेश के छात्रोंकी फीज माफ की जाय।
३. 'कमाओ और पढो' योजना शुरू रहनी चाहिए।
४. उत्तर महाराष्ट्र विद्यापीठ की स्थापना।
५. मराठवाडा विद्यापीठ को बाबासाहब आंबेडकरजी का नाम दिया जाय
६. प्राथमिक शिक्षा व्यवस्थामें सुधार हो।

७. एक शिक्षक होनेवाले स्कूलमें दो शिक्षक हो।
८. छात्राओंके लिए तालुकास्तर पर होस्टेल की मांग।
९. कॅपीटेशन फीज का विरोध।
१०. शिक्षाके निजीकरण का विरोध।
११. पुणे विश्वविद्यालय की फीज वृद्धिका विरोध।
१२. प्रवेश के लिए चंदा उगाहनेके खिलाफ विद्रोह।
१३. उत्तरपत्रिका की झेरॉक्स प्रति छात्रोंको मिले।
१४. किसीभी स्तरपर नकल न हो।
१५. अन्यायकारक अध्ययन क्रम का विरोध।
१६. नर्मदा बचाव आंदोलनमें सहयोग।
१७. एकमार्गी प्रेम-प्रकरणोंका विरोध।
१८. भारत जोडो अभियान में सहयोग।
१९. विज्ञान प्रसार अभियान।
२०. संगणक अधिकार परिषद।
२१. शिक्षा अधिकार परिषद।
२२. बहुजनोंके लिए शिक्षा।
२३. फेल होनेवाले छात्रोंकी परिषद
२४. एकलव्य पुरस्कार-सहभाग।

आंदोलनों और उपक्रमोंकी यह सूची और भी लंबी हो सकती है। छात्रभारती की धूलिया शाखाने कई नये उपक्रम चलाए। प्रा.मधु दंडवते और विधायक श्री.पी.के.अण्णा पाटील की अध्यक्षतामें शहादामें लगभग २००० छात्र-छात्रओंका द्विदिवसीय सम्मेलन आयोजित किया गया था, जिसमें अधिकांश छात्र-छात्राएं आदिवासी क्षेत्रसे आए थे।

जितना ध्यान छात्र-भारती का आंदोलनोंपर था, उतनाही समाजप्रबोधन पर। डॉ.ना.य.डोळे सहित कई विचारकोंके साथ छात्रभारती का अटूट संबंध रहा और वे समय समय पर उसे मार्गदर्शन देते रहे। इसलिए उसकी विचारधारा समाजवादी आंदोलन से हमेशा जुडी रही।

१०, ११ जून २००० को 'राष्ट्र सेवादल'ने चालीसगांव में एक महाराष्ट्रव्यापी युवा संकल्प अधिवेशन लिया था। छात्रभारती के सदस्य, कार्यकर्ता तथा पदाधिकारी इस संमेलनमें थे ही। इस समय जो 'युवा

जाहिरनामा' प्रकाशित किया गया उसमें शिक्षासंबंधी अपनी अपेक्षा और मांगें सेवादलने रखी थीं। उसमें स्पष्टतः 'छात्र-भारती' की शिक्षासंबंधी सोच की गूंज सुनाई देती है।

'शिक्षा केवल व्यक्तिगत विकास या उन्नतिके लिए नहीं है। वह सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन का मुख्य उपकरण है और समाजके हर तबके के हर व्यक्ति को वह उपलब्ध होना चाहिए। भारतमें आज भी लगभग नौ करोड किशोरोंको शिक्षा उपलब्ध नहीं है।

बुद्धिमत्ता किसी एक जाति या वर्गकी बपौती नहीं होती। हर एक के पास वह है और हर एक को उस बुद्धिका विकास करनेका मौका मिलना चाहिये। जिस वर्गको यह मौका नहीं मिलेगा उस वर्गकी बुद्धिमत्ता विनष्ट हो जानेका खतरा है। यह केवल एक वर्गका नहीं, पूरे राष्ट्र का नुकसान है। गत कई वर्षोंसे हम कुछ सामाजिक गुटों को शिक्षासे वंचित रखते आये है। यह अन्याय त्वरित दूर होना चाहिए।

विज्ञान और सूचना प्रौद्योगिकी ही सबकुछ नहीं है। इनके कारण आज शिक्षामें आमूलाग्र परिवर्तन आ रहा है यह सच है, परन्तु उसका (शिक्षाका) मानवीय पहलू अबाधित रहना चाहिए।'

'छात्र-भारती' का विकास इसी विचारधारा के अंतर्गत होता रहा।

एक युवासंगठन के नाते छात्र भारती में कुछ अच्छाईयाँ थीं तो कुछ कमजोरियाँ भी थीं। किसी भी संगठन को आदमी और पैसा इन दोनोंका हिसाब बिल्कुल साफ साफ रखना चाहिए। किसी भी कारणसे इस काममें की हुई कोताही संगठन की भीतरी ताकत को कम कर देती है।

संगठन का संचालन करनेवाली टिम सत्ताकांक्षी या पदलोभी न रहे। अगर वह वैसी है तो उसमें दरारें पडनेमें देर नहीं लगती।

पदाधिकारियोंका एका जितना मजबूत चाहिए, उतनाही उनका दायरा भी व्यापक चाहिए। वही संगठन को जनजनके साथ जोडता है, तथा उसका विस्तार करता है।

गत दो-तीन दशकोंमें युवा-मानस बहुत तेजीसे बदलता गया। पुराना जो भी कुछ है वह उसे समयानुकूल नहीं लगता और नया जो कुछ है उसकी सामर्थ्य का उसे अंदाज नहीं होता। ऐसी दिग्भ्रमित पीढीके साथ तालमेल बैठाकर काम करना आसान नहीं। पुरानी पीढीके कार्यकर्ता

अपनी पारंपरिक राह और मान्यताएं न छोडना चाहते हैं, न बदलना। फलतः वे मानसिक, भावनिक और व्यावहारिक दृष्टिसे भी युवा पीढीसे कटते जाते हैं।

विनोबाजीने कहा था कि आजकल सभी पार्टियों के लोग और सरकार भी 'रेडिमेड विचारों'को युवकोंके दिमाग में ठूँसनेका काम कर रहे हैं। यह युवकोंका 'यांत्रिकीकरण' है। वे यह नहीं जानते कि पानी को इस तरह बांधा नहीं जाता।

आज के युवा आंदोलन सांस्कृतिक, वैचारिक, विधायक और शीलसंवर्धन के कार्यक्रमोंके साथ अपने आपको बहुत कम जोड पाते हैं। उनके मनोरंजन पर उपभोक्ता संस्कृतिकी छाप है और सिद्धांतों पर किसी मत या विचार के प्रचार की। शिक्षाका विकास हुआ पर अधिकांश शिक्षित युवावर्ग अधिक सुखासीन, कामचोर, उपद्रवी और गैरजिम्मेदार बन गया। यह स्थिति तब पैदा होती है जब युवावर्गके हाथ और दिमाग दोनों खाली होते हैं। गुंडागर्दी, गुनहगारी और असामाजिकता का जन्मस्थान भी वही है। इस स्थितिमें 'छात्र-भारती' को यह सोचना है कि वह क्या करे?

छात्र-भारती की स्थापना को उन्नीस वर्ष पूरे हो रहे हैं। जिस तेजीसे वह अपने प्रारंभिक दिनोंमें विकसित हुई उस तेजीसे बादमें हो न सकी। पश्चिम महाराष्ट्र, उत्तर महाराष्ट्र, मराठवाडा, विदर्भ, कोंकण और मुंबई के कुछ हिस्से उसके शक्तिकेंद्र रहे। पूरे महाराष्ट्र में और महाराष्ट्र के बाहर फैलनेके लिए उसे संगठन-शास्त्रका अध्ययन करना होगा और हर प्रतिकूल स्थितिमें काम करनेवाले समर्पित कार्यकर्ताओंकी एक टीम खडी करनी होगी।

परंपरा जागृत है

छात्र-भारती के सभी अध्यक्ष– डॉ.मु.ब.शहा, प्रा.अर्जुन जाधव, प्रा.अशोक पवार, प्रा.सुभाष वारे, प्रा.रामदास निकम, श्री.दिलीप वाघमारे और श्री विलास किरोते राष्ट्रसेवादल से ही दीक्षित हैं। डॉ.ना.य.डोळे ने हर कदमपर छात्रभारती को मार्गदर्शन दिया।

संगठन के विविध पदोंपर काम करनेवाले पदाधिकारी आज समाजजीवन के विविध क्षेत्रोंमें उल्लेखनीय कार्य कर रहे हैं। वे भी सेवादल

॥ अध्याय दसवाँ ॥

अंतर्प्रांतीय विभाग

पुनर्गठन के बाद सेवादल का कार्य बडी तेजीसे फैला पश्चिम महाराष्ट्र में। मुंबई, नगर, पुणे, नासिक जिलोंमें पुनर्गठन से पहलेभी उसका कार्य शुरू था। १९४२ में सबसे ज्यादह शाखाएं चलती थीं सातारा में। मराठवाडा और विदर्भ तब महाराष्ट्रमें नहीं थे, पर वहाँभी सेवादल के कामोंकी चर्चा थी।

महाराष्ट्र से सटकर होनेवाले कर्नाटक में सबसे पहले काम शुरू हुआ। बेलगाव, धारवाड, कारवार विभागोंमें शाखाएं चलानेका काम राम देशपांडे, वासू देशपांडे, राम आपटे आदि मित्र करते रहे। इन लोगोंके कामोंकी रिपोर्ट बाकायदा महाराष्ट्र के कार्यालयमें आती थी।

श्री.सुधाकर मायदेव स्वतंत्रतापूर्व कालमें मद्रास गये थे और डॉ.बापूसाहब काळदाते ने सिंध प्रांतका दौरा किया था। इन दौरोंके कारण उन प्रांतोंमें सेवादल की पहचान बढी, पर प्रत्यक्षतः शाखा-कार्य शुरू न हो सका।

१९४९ में पुणे के शिविरमें श्री.गंगाप्रसाद अग्रवाल आये थे। पहले के हैदराबाद संस्थान के मराठी और कन्नड भाषी लोगोंके साथ सेवादल के हार्दिक संबंध थे। स्वामी रामानंद तीर्थ, गोविंदभाई श्रॉफ, बाबासाहब परांजपे आदि के कारण औरंगाबाद, सेलू, बिदर, गुलबर्गा में सेवादल फैला। वसमत, उदगीर, अंबाजोगाई, माजलगाव आदि क्षेत्रोंमें काम को गति मिली। वहांका सारा काम बादमें डॉ.बापू काळदाते ने संभाला और लगभग पूरे मराठवाडा में सेवादल फैलता रहा।

विदर्भमें नागपुर, अमरावती, वर्धा, चिमूर, सेवाग्राम आदि क्षेत्रोंमें संत तुकडोजी महाराज ट्रस्ट की मददसे डॉ.वानकर, श्री.देवतळे, दामोदर वेले,

और छात्रभारती का ऋण मानते हैं। इस संदर्भमें ॲड. अंजू उगांवकर, कपील पाटील, पद्मभूषण देशपांडे, प्रतिभा शिंदे, अभिजित हेगशेट्टे, विलास पाटील, अस्लम शेख, विनय सावंत, ॲड्.जाकिर अत्तार, ॲड.सयाजी शिंदे, ॲड्.सविता शिंदे, शरद कदम, सुनील पोरे, ॲड.अनीता तोडकर, उल्का महाजन जैसे सैकडों नाम हैं जो आज अपने अपने क्षेत्रमें दमक रहे हैं।

आज 'छात्रभारती' की इतनी ताकत नहीं कि वह पूरे महाराष्ट्र में और फिर पूरे देशमें फैले। 'छात्रभारती' क्या किसी भी वामपंथी युवा संगठनमें आज यह ताकत नहीं। उसके कारणोंकी चर्चा करनेका यह स्थान नहीं है।

■

मृगराजेंद्र गंगणे आदि ने सेवादल का काम बढाया। शाखाएं शुरू कीं। श्रीमती सुधाताई वर्दे, यदुनाथजी थत्ते, नाना डेंगळे, शामराव पटवर्धन समय समयपर विदर्भमें जाते रहे।

महाराष्ट्र और महाराष्ट्र के बाहर पूरे भारतमें जहां भी कहीं सेवादल पहुंचा अधिकांशतः सेवादल के महामंत्री श्री.बा.य.परीटगुरुजीके प्रयत्नोंके कारण पहुंचा है। वे और श्री.यदुनाथ थत्ते सेवादल के 'चलते फिरते राजदूत' थे। श्री.परीट गुरुजी की भ्रमण-गाथा तो आज भी जारी है, जबकी वे आयुके ८० साल पार चुके हैं। बॅ.नाथ पै के कारण कोंकण, गोवामें समाजवादी विचारोंका प्रचार अधिक हुआ। डिचोली, मडगाव, कुडतुडे, फोंडा, वास्को आदि स्थानोंपर शाखाओंको शुरू करने और चलानेमें श्री.माधव पंडितने काफी सहायता की।

इंदौर और वडोदरा में शाखाएं चलती थीं। राजस्थानमें इंदूताई भट (केळकर) और मधू देशपांडे गये। सिंध प्रांतमें चिंतु करंदीकर और अण्णा पवार, जयप्रकाशजीके बिहारमें श्री.पन्नालाल सुराणा, सोखोदेवरामें डॉ.वीणा सुराणा आदिने सेवादल का काम शुरू करनेकी कोशिश की। इन प्रयासोंको तत्कालिक सफलता भी मिली। पर काम आगे नहीं बढ सका, क्योंकि उसका 'फालोअप' ठीक ढंगसे नहीं हो रहा था।

फिर श्री.एस.एम.जोशी, भाऊसाहब रानडे, नाना डेंगळे और श्यामराव पटवर्धनजीने एक मिटिंग बुलाकर इन स्थितियोंपर विचार किया और महामंत्री श्री.परीट गुरुजी को महाराष्ट्र के बाहर सेवादल का काम बढानेकी जिम्मेदारी सौंपी। उत्तर प्रदेश, मध्यप्रदेश की एक विशिष्ट मानसिकता है। धर्मनिरपेक्ष विचारोंके साथ वहां किन्ही कार्यक्रमोंका आयोजन करना आसान नहीं होता, क्योंकि वहाँकी सर्वसामान्य जनतापर धार्मिकताका गहरा प्रभाव है। जिस प्रकारके प्रगतिशील विचारोंकी परंपरा महाराष्ट्रमें थी, वैसी इन प्रदेशोंमें नहीं मिलती। वर्ण और जाति का अभिमान किसी भी समय उग्र रूप धारण कर सकता है। पर बिना हिम्मत हारे सेवादल के कार्यकर्ताओंका काम जारी रहा।

रीवा, सतना, सिधी, छतरपुर, टिकमगढ, राजगढ, चंदेह, सुरा, मनगवा, बेलवा, मऊ, चौखंडी, हरदी, छतरपुर, जैसी कई छोटी बडी

जगहोंपर शाखाएं शुरू हुईं, शिविर लगे। यह दौर आगे बढकर इंदौर, भोपाल, उज्जैन, पिपरिया, इटारसी, खंडवा, भेडाघाट, जबलपुर, रायपुर, बिलासपुर, ग्वाल्हेर, बुरहानपुर, हरदा इत्यादि स्थानोंपर भी पहुंचा।

उत्तरप्रदेश– मध्यप्रदेशमें समाजवादी विचारोंके जो अनेक कार्यकर्ता थे, उन्होंने सेवादल की काफी मदद की।

अधिकांश काम स्कूलोंके शिक्षक और कॉलिजोंके प्राध्यापकों को सौंपा गया था। उनके कारण बच्चे, किशोर और युवक, शाखा तथा शिविरोंमें आने लगे। बृहस्पतिसिंह, राजमणि सोनी, अरुणा तिवारी जैसे पूर्णकालीन सेवकोंने मध्यप्रदेश, उत्तर प्रदेश के कामोंकी जिम्मेदारी संभाली है।

जयप्रकाशजी के बिहारमें श्री.पन्नालालजी लगभग एक साल रहे। पटना, किशनगंज, मुजफ्फरपुर, गया, मसौढी, गया-बोधगया, समस्तीपुर, ईलाहाबाद, जयप्रकाश नगर, राजगीर, आदि गांवोंमेंभी शाखाएं शुरू हुईं और श्रमशिविर लगे। गया-मसौरी जैसे केंद्र नक्सलाइयोंके गढ है। बजाय विचार के बंदूकोंपर विश्वास करनेवाले उनके सदस्यों के साथ कोई सार्थक संवाद संभव नहीं होता। डाकुओंके हृदयपरिवर्तन का एक चमत्कार जयप्रकाशी चंबल घाटीमें कर चुके थे, पर पुनश्च वैसा कोई प्रयोग अन्यत्र हुआ नहीं।

श्री.परीट गुरुजी और उनके साथ काम करनेवाले कार्यकर्ताओंपर नक्सलवादियों के हमलेकी नौबत भी आयी थी। वे अपने आपको बचा सके। पर उन बागी युवकोंमें परिवर्तन लाने और उन्हें समतावादी समाजरचना का सच्चा नागरिक बनानेमें किसीको सफलता नहीं मिली।

उत्तरप्रदेश देशका सबसे बडा राज है। राजकारोबार की सुविधा के लिए उसकी छंटनी होकर अन्य राज्योंका निर्माण भले ही हुआ हो, पर उसमें किसी संगठन का वैचारिक पीठ तैयार करना इतना आसान काम नहीं। किसी इक्के-दुक्के प्रचारक के बस की भी यह बात तो कतई नहीं।

सेवादल इन सारे प्रदेशोंमें तभी फैलेगा जब उस क्षेत्रसे हजारों युवक इस कामके लिए मैदानमें उतर आए और उनका नेतृत्व भी उन्हींमेंसे खडा हो। अंततः स्थानिक नेताओंकी क्षमता और सूझबूझ के बलपर ही किसी संगठन का विकास होता है। सर्वश्री. यमुनाप्रसाद शास्त्री, प्रो.अवधेशप्रसाद पांडेय, सवितादेवी बाजपेयी, शरद यादव, रामनिवास शर्मा, सूरजनारायण

सिंह, कर्पूरी ठाकूर, लखनलाल कपूर इत्यादि कई नेताओंका सहयोग सेवादल को अवश्य मिला और मिलता रहेगा।

सेवादल के मध्यवर्ती कार्यालय से समय समयपर तत्कालीन अध्यक्ष, महामंत्री और अन्य अनुभवी कार्यकर्ता इन प्रदेशोंमें जाते रहे, और जाते रहेंगे। पर पेड की जडें जमीन में जितनी गहरी जानी चाहिए, उतनी गहरी उतर नहीं रही, और पेड केवल शाखा पल्लवोंसे फलते फूलते नहीं।

१९७२ में मुंबईमें 'आंतरभारती कुमार युवक मीलन' का समारोह हुआ। महाराष्ट्र के बाहर सेवादल के साथ जुडे हुए लगभग ४१२८ युवक-युवतियां इस मीलन समारोहमें शामिल थी। जम्मू काश्मीर, बंगाल, राजस्थान, गुजरात, बिहार, मध्यप्रदेश, आंध्र, म्हैसूर, केरल, इन प्रांतोंसे ३५० के करीब युवक-युवतियां आयी थीं। जॉर्ज फर्नांडिस इस शिविरमें आये थे।

इस समारोहके बाद बाहर के प्रांतोंमें सेवादल का काम कुछ बढा। वहांके लोगोंके मनमेंभी सेवादल के कार्योंके प्रति उत्सुकता जगी।

१९७५ में जब आपातकाल लागू हुआ तब सेवादल की आवश्यकता कई समाजवादियोंको महसूस हुई। एक संगठन के रूपमें सेवादल ने आपातकाल का विरोध करनेके लिए संघर्षात्मक कदम भले ही न उठाए हों, पर उसकी वैचारिक भूमिका आपातकालकी विरोधी थी।

१९७७ की फरवरी में बिहार के एक समाजवादी नेता जगन्नाथ प्रसाद पुणे आये थे। उन्होंने महाराष्ट्र के सेवादल से कार्यकर्तायोंकी मांग की। जो कार्यकर्ता वहां गये उन्होंने बिहारमें सेवादल का शाखा कार्य फैलाया।

१९७७ मेंही श्री.यदुनाथ थत्ते और परीट गुरुजी के प्रयत्नोंसे कळचिंग (मणिपुर) में एक शिविर लगा। यह भी 'आंतरभारती राष्ट्रीय एकात्मता शिविर था। इस शिविरके कारण भारत के पूर्वांचल में सेवादल के कामोंकी नींव रखी गयी। आसाम, ओरिसा, बंगाल, बिहार, मध्यप्रदेश, गुजरात, आंध्र, कर्नाटक, तमिलनाडू, दिल्ली, पंजाब, उत्तरप्रदेश और महाराष्ट्र के उनतालीस केंद्रोंसे युवक-युवतियां आयी थीं। शिविर पंद्रह दिनोंतक चला। देशभरके श्रेष्ठ विचारक और कार्यकर्ता सैनिकोंके मार्गदर्शन के लिए पधारे थे।

ऐसे शिविर तमिलनाडूमें भी श्री.अब्दुलभाई के प्रयत्नोंके कारण लगे।

संगठन के स्तरपर इसे पूरे देशमें फैलना नहीं कहा जा सकेगा। हर

प्रांतमें वहांकी भाषा और संस्कृति को जाननेवाले युवा कार्यकर्ता अगर दो-चार सालके लिए अपने आपको गाड लेते तो सेवादल का काम ठोस नींवपर खडा हो जाता। तात्कालिक प्रभावोंके कारण जो काम बढा वह मार्गदर्शक कार्यकर्ता के वहाँसे हटते ही ठप् पड गया।

सेवादल की ताकत अपनी वैचारिक भूमिका युवावर्गको समझा देनेमें और उन्हें कार्यप्रवण करनेमें है। समारोहोंमें बहुत बडी संख्यामें उपस्थित होनेवाले सभी युवक-युवतियां इस वैचारिकता के कायल होते ही हैं, ऐसा नहीं। यह काम बडे धीरज के साथ निरंतर करना पडता है। पर नयी पीढीमें अभी बहुत कुछ जाननेकी ललक है। खासकर वे यह जानना चाहते हैं कि वर्तमान ऱ्हाससे बचनेका क्या कोई रास्ता है?

सेवादल यह राह बता सकता है। परन्तु उसे उसके लिए दक्षिण की और सदूर पूर्वकी भाषाओंको जाननेवाले कई कार्यकर्ता तैयार करने पडेंगे। पूरे मध्यप्रदेशमें श्री.बृहस्पतिसिंग अकेले पूर्ण समय कार्यकर्ता है। इतने बडे प्रदेशमें पैर जमाने के लिए कार्यकर्ताओंकी फौज चाहिए। अन्य प्रांतों के बारेमेंभी यही स्थिति है।

कुछ प्रांतोंमें काम शुरू हुआ पर ठीक ठीक 'फॉलोअप' न मिलनेके कारण वह ज्यादह फैल न सका। पर सौभाग्य यह है कि जैसे जैसे देशके हालात बिगडते जा रहे हैं, वैसे वैसे लोगोंको सेवादल जैसी संस्थाओंकी जरूरत तीव्रतासे महसूस होने लगी है।

मुझे लगता है अगर 'आंतरभारती' के साथ मिलकर सेवादल विभिन्न प्रांतोंमें अपना काम फैलाता है तो उसे अधिक सफलता मिलेगी। भाषा भगितियोंका एक-दूसरीसे सहयोग और सद्भाव ही 'आंतरभारती' की नींव है। भाषाओंके माध्यमसे लोग एक दूसरे के साथ भावनिक स्तरपर तुरंत जुडते जाते हैं। इसी बातको ध्यानमें रखकर श्री.यदुनाथ थत्तेजीने अपने अध्यक्षीय कार्यकालमें सेवादल का सारा कारोबार हिंदीमें ही चले, इसका आग्रह रखा था। उस कालमें 'सेवादल-पत्रिका' में उन्होंने जो लेख लिखे वे भी अधिकांशतः हिंदीमें हैं। विशेषतः दक्षिण के राज्योंमें अगर काम फैलाना है तो तमिल, तेलुगु, कन्नड के साथ उत्तम अंग्रेजी का ज्ञान होना जरूरी है।

सेवादल का अंतर्राष्ट्रीय विभाग

राष्ट्रीय आंदोलन, सामाजिक समता के लिए हुए सभी संघर्ष, ग्रामीण पुनर्रचना, युवक-युवतियोंके शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक विकास के लिए किये गये प्रयत्न, सांस्कृतिक क्षेत्रकी समृद्धता और वैयक्तिक तथा सामाजिक जीवनमें एक नीतिके साथ जीनेका आग्रह इन कारणोंसे राष्ट्र सेवादल का नाम भारत की सीमाओंको पार कर अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्रमें बहुत पहले पहुंच चुका था।

महात्मा गांधी, रवींद्रनाथ ठाकुर और साने गुरुजी के जीवन तथा कार्योंसे सेवादल को जो शाश्वत मूल्य मिले उनकाही विस्तार उसने सर्वत्र किया। ये मूल्य किसी एक धर्म, एक देशकी सीमामें आबद्ध होनेवाले थे नहीं। वे सारी मनुष्य जातिके उद्धारक मूल्य थे, और सारी दुनियाको उसकी जरूरत थी। राष्ट्र सेवादल के सभी कार्योंमें इन विशाल मानवतावादी मूल्योंकी छाया झलकती रहती। कई अंतर्राष्ट्रीय संगठनोंका इसलिए सेवादल की ओर विशेष ध्यान था।

भविष्यदर्शी नाथ पै

बॅ.नाथ पै यह जानते थे कि सेवादल जैसे संगठन को फैलना है तो उसे अपनी सम-विचारी संस्थाओंके साथ सहयोग करना होगा। वे 'इंटरनॅशनल युनियन ऑफ सोशलिस्ट यूथ' से संबंधित थे। उनकी सूचनापर सेवादलने आय.यू.एस.वाय की सदस्यता स्वीकृत की। यह संस्था समाजवादी आचार-विचारोंके आदान-प्रदान के साथ अंतर्राष्ट्रीय शांति-स्थापना के क्षेत्रमें उल्लेखनीय कार्य करती है। बॅ.नाथ पै इस संगठन के अध्यक्ष रह चुके थे।

युसीके मुख्य सचिव श्री.पीटर स्ट्रासरने दूसरे विश्वयुद्धके बाद सारे आशियाका एक दौरा किया। हर राष्ट्रमें स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करनेवाले समाजवादी संगठनोंको उन्होंने एक छत्र के नीचे आनेकी सलाह दी। दुनियाभर फैली तानाशाही के खिलाफ संघर्ष करनेके लिए ऐसा मोर्चा जरूरी था।

उनके आवाहन के अनुसार कई देशोंके कई समाजवादी संगठन यूसीके साथ जुड गये। सही मानेमें यूसी एक अंतर्राष्ट्रीय संगठन बन गया। सेवादल उससे जुडा तो सेवादलमें भी एक स्वतंत्र अंतर्राष्ट्रीय विभाग शुरू हो गया।

प्रभुभाई संघवी

इस अंतरॉष्ट्रीय विभाग के पहले सचिव थे श्री.प्रभुभाई संघवी। बादमें सर्वश्री वसंत नाचणे, गजानन खातू, कु.मीना वैद्य और पांडुरंग कांबळीने यह काम आगे बढाया।

सन ५० के बाद भारतमें जो अलग अलग व्यापक संघर्ष हुए उसमें यूसीने सक्रीय सहयोग दिया। गोवा के आंदोलन में यूसी सत्याग्रहियोंको भेजना चाहती थी। इमर्जन्सी में भारतीय नागरिकोंकी स्वतंत्रतापर आघात होता हुआ देखकर सेवादलने उसकी जानकारी यूसीके पास भेजी। यूसीने मानवाधिकार संरक्षण संगठन के मार्फत इमर्जन्सी हटाने के लिए भारत सरकार पर दबाव डाला।

सर्विस सिविल इंटरनैशनल

गांव के लोगोंकी सहायतासे छोटे छोटे कस्बों और देहातोंमें सेवादलने रास्ते बनाना, उनकी मरम्मत करना, कुएं तथा तालाब खुदवाना, पीनेके पानीकी व्यवस्था करना, खेतोंमें छोटे-बडे बांध बांधना, मेडें तैयार करना, स्कूल की इमारतें बनवाना इत्यादि श्रम-कार्य जारी रखे थे। उसका 'साने गुरुजी सेवा-पथक' इन कार्योंमें अत्यंत कुशल था। 'सर्विस सिविल इंटरनैशनल का ध्यान इन कार्योंकी ओर था ही। यह संस्था यूरपमें युद्ध स्थितिसे त्रस्त होनेवाली जनता को बहुत बडे पैमानेपर मदद पहुंचाने का काम करती है। उसने अपना कार्यक्षेत्र धीरे धीरे एशियाई राष्ट्रोंमें भी फैलाया। भारतमें 'सर्विस सिविल इंटरनैशनल' का काम श्री पीअर ऑप्लिगर देखते थे। वे सेवापथक द्वारा आयोजित कई केंद्रोंपर श्रम-कार्य देखने गये। सेवादल इस संस्थाका भी सदस्य बना। जर्मनीमें श्रमशिविरोंके तंत्रपर विचारविनिमय करने के लिए जो परिषद बुलाई गयी, उसमें सेवादल की ओरसे श्री.भाऊसाहब रानडे सहभागी हुए थे।

इंटरनैशनल फालकन मुवमेंट

सेवादल इस संस्थाका भी सदस्य है। १९७९ में इस संस्थाकी आम सभामें डॉ.ना.य.डोळे गये थे। उन्होंने यह सूचना की थी कि यह संस्था अब विकासशील देशोंमेंभी अपना काम शुरू करें, और उसके लिए प्रादेशिक

कार्यालयोंकी स्थापना की जाय। आमसभाने इस सूचनाका स्वीकार कर एशियामें सर्वत्र अपने कार्यालय शुरू किये। १९८० में मुंबई में आय.एफ.एम. का प्रादेशिक विभाग राष्ट्र सेवादल की कचहरीमें ही शुरू हुआ। इस विभाग के अध्यक्ष थे डॉ.ना.य.डोळे और सचिव थे पांडुरंग कांबळी।

आय.एफ.एम.ने राष्ट्र सेवादल और आंतरभारती की सहायता से भारतमें कई स्थानोंपर बालकामगारोंकी समस्याओंपर कार्यशालाओंका आयोजन किया। इन बच्चोंको कामपर अधिक से अधिक सुविधाएं मिले इसके लिए कोशिश की।

१९८१ में आय.एफ.एम. के मुख्य सचिव जॅकी कोटयिन ने उनके दो उपाध्यक्षों समेत मुंबई में होनेवाली उनकी कचहरी को भेंट दी। वे पुणेमें राष्ट्र सेवादल के मध्यवर्ती कार्यालयपर भी आये।

१९८३ में मुंबईमें एक अंतर्राष्ट्रीय कार्यशाला आयोजित की गयी। उसमें यूरप और पश्चिम एशियाके लगभग ३० प्रतिनिधि उपस्थित रहे।

१९९५ तक जॅकी कोटयिन मुख्य सचिव थे। उन्होंने कई बार भारत का दौरा किया। मुंबई, पुणे, कोल्हापुर, बडोदा और अहमदाबाद के राष्ट्र सेवादल एवं आंतरभारती के विविध प्रकल्पोंका मुआयना उन्होंने किया। श्री.परीट गुरुजी स्विडन की आमसभामें तो श्री.पन्नालाल सुराणा कोलंबोकी आमसभामें सेवादल के प्रतिनिधि के नाते उपस्थित रहे। हर तीन सालके बाद यह संस्था बालकोंका एक सम्मेलन आयोजित करती है। उसके लिए दो बालक और एक युवक को भेजा गया।

नेपालमें हुई अंतर्राष्ट्रीय कार्यशाला के लिए तथा बेल्जियम, फिनलँड, फिलिपाईन्समेंभी कार्यकर्ताओंको भेजा गया।

बढता हुआ आदान-प्रदान

धीरे-धीरे सेवादल तथा अन्य अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं में आदान-प्रदान बढता गया। श्री.भाऊसाहब रानडेने इसके लिए सर्वाधिक प्रयत्न किये। वे खुद १९५४ में यूरपमें गये थे। श्रीमती अनुताई लिमये युगोस्लाव्हिया में हुई अँटी-फासिस्ट वुमेन कॉन्फरन्स में उपस्थित रही। अंतर्राष्ट्रीय शिविरमें प्रतिनिधि के रूपमें उपस्थित रहनेका सर्वप्रथम सम्मान प्रख्यात वक्ता श्री.बापू काळदातेको मिला।

युनेस्कोने युवा संगठनोंका अध्ययन करनेके लिए एक शिष्यवृत्ति जाहिर की। उसे प्राप्त करनेका सम्मान श्री.भाई वैद्य को मिला। १९६० में वे तीन माहका यूरपका दौरा कर वापस आए। इस दौरेमें उन्होंने इंग्लैंड, फ्रान्स, जर्मनी, बेल्जियम, ऑस्ट्रिया, नॉर्वे, स्वीडन व रूसमें होनेवाले युवा संगठन और युवा आंदोलनोंका अध्ययन किया। उनका यह अध्ययन और अनुभव आगे चलकर सेवादल के लिए बहुत मूल्यवान साबित हुआ।

सेवादल के तत्कालीन लगभग सभी पूर्णकालीन कार्यकर्ता इस तरह यूरप की यात्रापर हो आये। भारतसे जानेवाले और विदेश से आनेवाले इन प्रतिनिधियोंके कारण सेवादल का कार्य दूरदूरतक पहुंचता और प्रशंसा पाता रहा।

१९६२ में यूसीने कोपनहेगनमें (डेन्मार्क) एक अंतर्राष्ट्रीय परिषद आयोजित की। श्री.नारायण तावडे और प्रभुभाई संघवी उसके लिए कोपनहेगन गये। इस परिषदमें विविध राष्ट्रोंके लगभग २०,००० प्रातिनिधि उपस्थित थे। वहांके एक विभागको पू.साने गुरुजी का नाम दिया गया था।

ऑस्ट्रिया के समाजवादी युवा आंदोलनने राष्ट्र सेवादल को विशाल रकम भेंट में दी। उसी से पुणे का मध्यवर्ती कार्यालय निर्माण हुआ। युसी के प्रमुख सचिव के हाथों ही उस कार्यालय का उद्घाटन हुआ था।

राष्ट्र सेवादल और इस्राईल के युवा संगठनोंके घनिष्ठ संबंध थे। ये संगठन खेतीके कामोंपर अधिक जोर देते थे। कमसे कम पानीमें खेती कैसे करें और उत्पादन कैसे बढाएं, इसके बारेमें कई प्रयोग इस्राईलने किये थे। अंतर्राष्ट्रीय विभागने सेवादल को सूचना दी कि परिषदमें मुख्य विषय खेती और उत्पादनका है। अतः उन प्रतिनिधियोंको भेजिए जो खुद खेती करते हों। राष्ट्र सेवादलने सर्वश्री आप्पासाहब पाटील, भास्करराव बोरावके, कुसुम पटवर्धन और धूलिया के दशरथ पाटील को इस्राईल भेजा।

१९६३ के फरवरीमें युसीके एशियाई सेमिनारके लिये सर्वश्री बापू काळदाते, सुधा वर्दे, मामा गवारे, लीलाधर हेगडे और भाऊ कदम को भेजा गया।

युसीके ब्यूरोपर श्री.बापू काळदाते की नियुक्ति हुई। अंतर्राष्ट्रीय श्रमदान शिविरोंकी को-आर्डिनेशन कमेटी के निमंत्रणपर श्री.र.नि.अंबिके ऑस्ट्रिया गये।

कार्यकर्ताओंके इस आवागमन का फायदा जैसे राष्ट्र सेवादल को हुआ वैसे समाजवादी आंदोलन को भी हुआ। यूसीकी मुंबईमें जो एशियाई परिषद

हुई थी, उसके बाद पुणेमें एक एशियाई सेमिनार हुआ था। कई राष्ट्रोंके युवक इस सेमिनार में सहभागी थे। सेवादल के लगभग दस युवा कार्यकर्ताओंको इन युवकोंसे बातचीत करनेका मौका मिला वे यह जान सके कि दुनियाका युवा आंदोलन किस दिशामें और कैसे बढ रहा है।

अंतर्राष्ट्रीय स्तर के लगभग बारह संगठनों से और विभिन्न राष्ट्रोंके युवा कार्यकर्ताओंके साथ सेवादलने घनिष्ट संबंध रखा है। ये संबंध केवल संगठन के स्तरपर ही नहीं है। व्यक्तिगत स्तरपर भी इनमेंसे कइयोंके एक-दूसरे के साथ स्नेहमय रिश्ते बने। भाषाओंकी दिक्कतोंके बावजूद रास्ते निकलते रहे और भाईचारा बढता रहा।

प्रा.सदानंद वर्दे और सौ.सुधा वर्दे अमरिकन पोलिटिकल साईन्स असोसिएशन की शिफारिश पर कांग्रेसनल फेलोशिप प्रोग्रॅम के अंतर्गत युनायटेड स्टेटस में गये। श्री.वर्देजी संसदीय जनतंत्र और शासनपद्धतिके पारंगत अध्येता है। उनके कारण विभिन्न देशोंमें फैले हुए समाजवादी मित्रोंके आपसी रिश्तोंको उजाला मिला।

दायरा बढता रहे

अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्रमें सेवादल के परिचय का दायरा बढनेकी संभावना बहुत है। विकसनशील राष्ट्रोंके विविध युवा संगठनोंके साथ अगर सेवादल का गठबंधन होता है तो विश्व-युवा आंदोलन को एक नयी दिशा मिल सकती है। आज विकसित और अर्धविकसित देशोंमें युवा-आंदोलन का स्वरूप कई मानेमें बदल चुका है, तो स्पष्ट है वह केवल सदिच्छाओंसे या किसीके आशीर्वादोंसे नहीं होगा। उसके लिए सेवादल जैसे संगठनोंको तनतोड मेहनत करनी पडेगी। अमरिका और रूस जैसे शक्तिशाली राष्ट्र सारी दुनियामें शांति प्रस्थापित करे, यह आकांक्षा ठीक है। पर प्रत्यक्षतः ऐसा नहीं हो रहा। छोटे छोटे अविकसित राष्ट्रोंमें छोटी बडी लडाइयोंका माहौल है और पूरे विश्वपर माफियोंका राज चल रहा।

ऐसी स्थितिमें सभी प्रकार की राजनीतिसे बचकर रचनात्मक काम करना आसान नहीं होता। सेवादल जैसे संगठन के लिए यह एक चुनौती साबित होगी।

■

।। अध्याय ग्यारहवाँ ।।

भविष्य की ओर

हर उतार-चढाव के बावजूद राष्ट्र सेवादल आज अपने जीवनके साठ साल पूरे कर रहा है। अपने सिद्धांतों और आदर्शोंसे रंचमात्र हटे बिना इतने वर्षोंतक निरंतर कार्यरत रहनेवाला शायद वह अकेला परिवर्तवादी संगठन है।

समाज-परिवर्तन का कोई काम आसान नहीं होता, और बिना रचना, संगठन और शिक्षाके वह हो नहीं सकता। सेवादलने इन तीनों दिशाओंमें आगे बढनेकी इंतहा कोशिश की। क्या राष्ट्र सेवादल के माध्यम से समाज-प्रबोधनकी कोई नयी शक्ति तैयार हुई? श्री.एस.एम.जोशीजीका साफ साफ जवाब है कि "हां, हुई है। कर्मवीर भाऊराव पाटीलने रयत शिक्षण संस्था के माध्यमसे जैसा एक नया नेतृत्व निर्माण किया, वैसेही राष्ट्र सेवादलने एक नया नेतृत्व तैयार किया है। हमारे काम की तुलनामें भाऊराव पाटीलका काम बहुत है। गंवई-गांवोंके ब्राह्मणेतरोंको शिक्षा देकर उनमेंसे नेतृत्व निर्माण करना कोई आसान काम नहीं था। लेकिन जो कुछ सेवादलने किया उसकी एक अलग महत्ता है। उसने समाजके दो अंगोंके बीचकी खाई पाटनेका काम किया। ऐसा काम भाऊराव की शिक्षा संस्थाएं नहीं कर पाईं। ब्राह्मण-ब्राह्मणेतरों के आंदोलन के कारण इन दोनों वर्गोंके बीच बहुत कटुता निर्माण हो गयी थी। सेवादलके कार्यसे यह कटुता अब काफी हदतक कम हो गयी है।"

यह भी अनुभूत सत्य है कि सत्ता और धनके मोहसे अपने आपको अलिप्त रखकर कई सेवादल सैनिक स्वाभिमानसे जीते रहे। स्वतंत्रता, समता और बंधुता के मूल्योंपर आधारित एक नया समाज निर्माण हो इसके लिए उन्होंने जी जानसे कोशिश की। हिंदू समाजकी आंतरिक विषमताओंसे लडनेमें और धर्मोधर्मोंके बीचका बैर कम करनेमें सेवादल की एक

ऐतिहासिक भूमिका रही। उसने व्यक्ति के आंतरिक परिवर्तन पर अधिक जोर दिया। उसके सारे रचनात्मक कार्यक्रमोंका हेतु भी अंततः परिवर्तन के लिए कार्यकर्ता और समाजमन तैयार करना यही था।

वस्तुतः परिवर्तन का सबसे प्रभावी हथियार है– सत्ता। पर सेवादल जैसी शिक्षात्मक संस्था सत्तासे सदा दूर रही। पर उसके द्वारा निर्मित नेतृत्व आज भी सत्ता तथा राजनीतिमें कुछ मूल्योंकी रक्षा करते हुए काम कर रहे हैं।

कई दमकते सितारे

'एक गांव, एक पनघट' आंदोलन के प्रणेता डॉ.बाबा आढाव, 'मुस्लिम सत्यशोधक समाज' के संस्थापक हमीद दलवाई, अंबेजोगाई में 'मानव लोक' का संचालन करनेवाले डॉ.द्वारकानाथ लोहिया और शैला लोहिया, देवरूख के मातृमंदिर के वामन भिडे और मंजू भिडे, साने गुरुजी रुग्णालय के सर्वेसर्वा डॉ.दादा गुजर, गंदी बस्तीको एक बढिया गृहसंकुल में बदलनेवाले नारायण तावडे और शांताराम तावडे, सांताक्रूझ-चुनाभट्टीमें साने गुरुजी विद्यामंदिर चलानेवाले लीलाधर हेगडे, नलू बापट, 'अपना बाजार' के संस्थापक दादासाहेब सरफरे, जातिप्रथाके खिलाफ निरंतर संघर्षरत विवेक और विद्युत पंडित, आदिवासियोंको उनके जमीन, उनका हक मिले इसलिए संघर्ष करनेवाले काळूराम दोधडे, विजय और इंदवी साठे, बडे बांधोंके खिलाफ जान हथेलीपर ले संघर्ष करनेवाली मेधा पाटकर, शक्कर और कागज कारखानोंका सफल संचालन करनेवाले अप्पासाहब सा.रे.पाटील, अंधश्रद्धा निर्मूलन के लिए पूरा महाराष्ट्र खंगालनेवाले डॉ.नरेंद्र दाभोलकर, महिलाओंके अधिकारोंके लिए निरंतर जूझनेवाली प्रमिला दंडवते, मृणाल गोरे, सुधा वर्दे, कुसुम पटवर्धन से निशा निवुरकर तक की असंख्य बहनें, 'अपना बाजार' के सफल संचालक गजानन खातू, पांडुरंग कांबळी, जामखेडके आरोग्य सेवा केंद्र के डॉ.रजनीकांत आरोळे, महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा सभा के अध्यक्ष मोहन धारिया, पालघरके आदिवासियोंमें काम करनेवाली अनुताई लिमये, नटसम्राट श्रीराम लागू, और महाराष्ट्र के समाजजीवन में सर्वत्र फैले हुए अनगिनत लोग ऐसे मिलेंगे, जो अपने जीवन और कार्यकी यशस्विता का सारा श्रेय निःसंकोच राष्ट्रसेवादल को और उससे मिले संस्कारोंको देते हैं। ये सारे सेवादलको अपनी मातृसंस्था मानते हैं, पर एक संगठन के रूपमें सेवादल इनके साथ नित्य

संबंध स्थापित कर न सका। महाराष्ट्र के सामाजिक जीवनपर जिनके कार्य और कर्तृत्वका अमिट प्रभाव पडा ऐसे असंख्य कर्तृत्वसंपन्न स्त्री-पुरुषोंकी आधारभूमि सेवादल है। सामाजिक क्षेत्रका एक नैतिक मानदंडके रूपमें अपने आपको स्थापित करनेमें उसे सफलता अवश्य मिली। तब भी कुछ कमजोर कडियोंके बारेमें सोचना जरूरी है।

बदलता हुआ मानस

१९६० के बाद सेवादल की शाखाओंपर युवक-युवतियोंका आना एकदम कम हो गया। स्कूलों और कॉलिजोंमें युवा वर्गके लिए अपने आपको अभिव्यक्त करनेके मौके मिलने लगे और उसके लिए शाखाओंपर आनेकी जरूरत महसूस नहीं हुई। सन ६० के बाद युवावर्ग का मानस भी बडी तेजीसे बदला। त्याग, सेवा, ध्येय, मूल्य, इत्यादि शब्दोंकी उसकी दृष्टिमें कोई कीमत नहीं रही। सन ६० के बाद ही नक्षलवाद का जनम होता है। सत्य, न्याय, संघर्ष, सत्याग्रह के बजाय युवकों का विश्वास लाठी-गोली पर और हिंसापर अधिक बढता गया।

महाराष्ट्र की राजनीतिका तत्कालीन रूप भी एक दृष्टिसे युवकोंकी शाखाओंपर होनेवाली अनुपस्थितिके लिए जिम्मेदार है। भारतीय राजनीतिमें जैसे पंडित जवाहरलाल भाग्यविधाता थे, वैसे महाराष्ट्रमें यशवंतराव चव्हाण थे। उन्हें माननेवाले समाजवादियों की संख्या तब कम नहीं थी। बहुजन समाजके असंख्य युवक जैसे यशवंतरावजी के कारण काँग्रेस की ओर मुडे वैसे आंदोलनकारी श्री. शिवाजीराव पाटील जैसे कई समाजवादी युवा भी मुडे। १९६०-६२ के आसपासही यह परिवर्तन हो रहा था।

१९६२ में चीनी आक्रमण हुआ। पूरे देशमें अब एकता की जरूरत थी। इस स्थितिमें कांग्रेस का विरोध करनेवाली लगभग सभी ताकतोंने समन्वय का रास्ता अपनाया। इतना कि डॉ.लोहिया जैसे प्रखर विरोधी विचारक को भी लोकसभामें समाजवादियोंने नेहरू के खिलाफ वक्तव्य करनेसे रोक दिया।

१९६५ में भारत-पाक युद्ध हुआ। स्व.लालबहादुर शास्त्री के नेतृत्त्व के कारण एक ओर विरोध की धार कुंद हो रही थी तो दूसरी ओर फिर एक बार समाजवादी आंदोलन में फूट पड रही थी।

१९७३ से ७८ के मध्य फिर एक बार विपक्षियोंका तूफान उठा। इस बार उसका नेतृत्व श्री.जयप्रकाश नारायण कर रहे थे। इस आंदोलन का रूप राजनीतिक अधिक था।

१९७८ में फिर समाजवादी आंदोलनमें दरार पडी। सेवादल पर इन सारी स्थितियोंका विपरीत प्रभाव पड रहा था। १९८२ के बाद युवा वर्गमें जो नयी आकांक्षाएं पैदा हुईं, सेवादल उन्हें पूरा नहीं कर सका। जैसे, सेवापथक उसका एक शक्तिकेंद्र था। सन ८० के बाद 'सेवापथक' अगर श्री. विलासराव साळुंके के समान पानी के सवाल पर और श्री.शरद जोशी के समान काश्तकारों के खेती-उत्पादकों को योग्य भाव मिलनाही चाहिए इस सवाल पर ग्रामीण क्षेत्रमें उतर जाता तो सेवादल की छबी ही बदल जाती।

'सेवापथक' के ठप् हो जानेसे ग्रामीण युवकोंके साथ होनेवाला हार्दिक संबंध टूट गया। कार्यकर्ता और कार्यक्रम दोनों शहर-केंद्रित होते गये।

मुझे ऐसी स्थिति 'अध्ययन मंडल'के बारमेंभी दिखाई देती है। अपनी स्थापनासे लेकर लगभग सन ६५-७० तक सेवादलने सैनिकोंकी समझ व्यापक और चौतरफा हो इसके लिए अपार मेहनत की। बौद्धिक विभागके प्रमुख प्रा.ग.प्र.प्रधान, सदानंद वर्दे, भाई वैद्य, पन्नालालजी सुराणा, यदुनाथ थत्ते ये सेवादल से सीधे जुडे हुए अध्ययनशील कार्यकर्ता राजनीतिमें सक्रिय हो गये। इधर इस या उस कारणसे सेवादल के साथ होनेवाला उनका बौद्धिक संपर्क कम हो गया. परिणामतः जिस तरह सेवापथक रुका वैसे अध्ययन मंडल का काम भी मंद पड गया। अपवाद थे श्री.यदुनाथ थत्ते!

सेवादल को पूरे देशमें पहुंचानेका श्रेय 'कलापथक' को है। खडकमाल के बोराटे बाडेंमें इसकी जब शुरुआत हुई तब किसीने यह नहीं सोचा था कि किसी दिन देशकी राजधानीमें स्वयं पंतप्रधान पंडित नेहरू 'कलापथक' के प्रस्तुतीकरण की और उसके तत्कालीन प्रमुख प्रा.वसंत बापटजी की भूरी भूरी प्रशंसा करेंगे। तब श्री. मधुकर निरफराकेने पहली नाटिका लिखी थी। 'सावकारशाही ठेवायची नाय।' दूसरी थी 'शहाणावेडा।' निळू फुले, चंद्रकांत बोराटे, पुरुषोत्तम खन्ना, शं.बा.शिंदे, नारायण तोलाट (मॅनेजर) ने इन नाटिकाओंमें काम किया था। सर्वसामान्य जनताके साथ अपने क्रांतिगीतों, पवाडों, लोकनाट्यों, फार्सों, नृत्यों और तमाशाओं के कारण जो भावात्मक बंध निर्माण हुए वह जैसे जैसे कलापथक का रूप बदलता

गया, वैसे वैसे शिथिल पड़ते गये। 'महाराष्ट्र शाहिरों'की सच्ची ताकत जनतामें घुल-मिलकर लोक कलारूपोंके माध्यमसे अपनी बात उनतक पहुंचाने में थी।

महाराष्ट्र दर्शन, भारत दर्शन, शिव-दर्शन, आजादी की जंग ये कला के स्तरपर अत्यंत भव्य और उत्कट प्रस्तुतियां थीं। उसके लिए श्री.वसंत बापटजी की जितनी प्रशंसा की जाय कम होगी। पर 'कला-पथक' धीरे-धीरे मुंबई-पुणे के मध्यमवर्ग के कलाकार और मध्यमवर्ग के दर्शकों तक सीमित हो गया, इस वास्तवको नकारा नहीं जा सकेगा।

सभी दिशाओंमें प्रेरणा केंद्रोंका इस तरह घटते जाना सेवादल को एक तपते रेगिस्तानमें खडे कर देने जैसा था। पर इस स्थितिमेंभी जिन लोगोंने सेवादल को संभाला उनकी प्रशंसा करनी चाहिए।

कुछ प्रयास आजतक अलक्षित रहे, जो इस महावृक्षकी जडोंमें बूंद बूंद क्यों न हो, पर जल का सिंचन कर रहे थे। उदा. पुणे के अवस्थी बाडे में जो शाखा चलती थी, उसके सारे सदस्य हर वर्ष १ जनवरी को कृषिपंडित श्री.दादा बोरकर के खेतपर इकट्ठा होते थे। लगातार पचास वर्षोंतक यह उपक्रम चलता रहा। ४० से अधिक परिवार ठीक १ जनवरी को इकट्ठा होते रहे और सेवादल की अंतरंग मैत्रीको पीढी दर पीढी उतारते रहे। इस प्रयास का श्रेय जाता श्री.भाई वैद्यको।

साधारण दिखनेवाले इन उपक्रमोंने सेवादल के अंदरके भाईचारे को और परस्पर विश्वास तथा प्रेमको सुदृढता प्रदान की थी। जैसे जैसे समय बितता गया ऐसे उपक्रमोंमें कमी आती गयी। एक दूसरेके सुखदुखमें सैनिकोंकी होनेवाली साझेदारी कम होते होते एक व्यावहारिक स्तरपर आकर स्थिर हो गयी। समरसता की यह कमी किसी भी संगठन के विकास में सबसे बडी बाधा सिद्ध होती है। साझेदारी की व्याकुलता (स्पिरीट ऑफ शेअरिंग) एक आदमी को दूसरे आदमी के साथ जोडती रहती है।

दायरा बढे

सेवादल एक चुंबक की तरह है, जिसका प्रभावक्षेत्र उसके भौतिक अस्तित्व से कई गुना ज्यादह होता है। सेवादल के जिन सिद्धांतोंकी चर्चा हमने गत पृष्ठोंमें की है, उनमेंसे कुछ या एकाध संस्थासे जुडे हुए कई

संगठन हैं। सेवादल का इन संगठनोंके साथ होनेवाला भावनिक और वैचारिक संबंध उसके दायरेको बढाएगा। उदा. आंतरभारती और साने गुरुजी कथामाला के संगठन समान विचारधारा रखनेवाले हैं, सेवादल इनके कामोंमें न केवल हाथ बँटा सकता है, वरन् कई कार्यक्रमोंके बारेमें दिशादर्शन तक कर सकता है।

श्री.युदनाथजीने लिखा था कि "सेवादल के बुनियादी सिद्धांतों का स्पर्श जीवन के हरएक अंगको हो, ऐसा प्रयास सेवादल को करना चाहिए। इसीको लोकनायक जयप्रकाश नारायण ने संपूर्ण क्रांति का नाम दिया था। राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, वैचारिक, शैक्षणिक, आध्यात्मिक तथा सांस्कृतिक आदि सभी क्षेत्रोंमें परिवर्तन की पहल करनी होगी। सेवादल इसका अग्रदूत बननेवाले कार्यकर्ता तैयार करे। क्रांतिमें परिस्थिति परिवर्तन, संबंध परिवर्तन, तथा मूल्य परिवर्तन सम्मिलित है। सेवादल को इस दिशामें आगे बढना चाहिए."

राजनीति से परे

यह स्पष्ट हो चुका है कि सेवादल भले किसी भी राजनीतिक पार्टीको अपना माने, वह पार्टी कभी सेवादल के कार्यकर्ताओंके अधिकार में नहीं रही। आज तो यह स्थिति है कि सेवादलद्वारा अंगीकृत ध्येयवादिता के आसपास खडी हो सके ऐसी कोई राजनीतिक पार्टी नहीं दिखाई देती। आज जब सारे सामाजिक और राष्ट्रीय जीवनपर राजनीतिका जबरदस्त शिकंजा कसता जा रहा है, बिना कोई राजनीतिक आधार लिए समाजजीवन में खडे रहना टेढी खिर है। पर सेवादल जैसा संगठन अपने बलपर यह काम भी कर सकता है।

जैसा कि प्रा.नरहर कुरुंदकर कहते हैं, "वह जनता का संगठन है, नहीं, वह कार्यकर्ताओंका संगठन है।" उनका यह मत भले कइयोंको गलत लगे, पर मुझे वह बहुत तार्किक और योग्य लगता है।

वे लिखते हैं। "जनता का संगठन विविध प्रकारके शौकीनों का, नौसिखियोंका, जानकारों का और मुफ्तखोरोंका सम्मेलन होता है। ऐसे संगठनोंको बोलनेमें, बर्तावमें, व्यावहारिक हानि-लाभ सोचकर कार्य करना पडता है। ये लोग प्रयत्न करते रहते हैं, जनता का अधिक से अधिक समर्थन प्राप्त करनेका।

सेवादल जैसा संगठन उन युवकोंका संगठन है, जिनका व्यक्तित्व आकार लेता रहता है। वह कार्यकर्ताओंकी पाठशाला है। इस पाठशालामें ढेर सारा कचरा इकट्ठा करनेका कोई मतलब नहीं। वहाँ तो चुनचुनकर एक एक सक्षम व्यक्तित्व विकसित करने होते हैं। किसी भी राजकीय पक्षको लीजिये। उसका आशय क्या है? उसकी भाषा क्या है? उसमें अवसरवादिता कितनी? उत्तरदायित्वहीनता क्या है? ये सारी बातें सेवादल के कार्यकर्ताओंको सविस्तार समझा देनी चाहिए। जिस दिन कार्यकर्ता तैयार करनेकी यह पाठशालाएं, प्रत्यक्ष राजनीतिमें धूमधामसे संलग्न हो जाती है, उस दिन वह संगठन, युवकोंका शिक्षात्मक या रचनात्मक संगठन न रहकर, अपक्ष राजनीतिका दंगाफसाद मचानेवाला हिस्सा मात्र बन जाता है।"

किसी राजनीतिक पार्टीसे जुडनेपर उसकी आपसी खींचातानी में सेवादल जैसे संगठनोंकी कैसी छीछालेदर होती है, इसे इतिहास के अध्येता जानते हैं।

दूसरे, समाजवाद केवल राजनीतिके क्षेत्र की वस्तु तो है नहीं। जीवन के अन्य सभी क्षेत्रोंमें समाजवादी विचारोंकी आवश्यकता है और उनकी स्थापना करना कई गुना मुश्किल काम है। खासकर शिक्षा संस्थाओंके संचालन में समाजवादी आचार-विचारोंकी सहीसही बोआई करना और उस प्रकारकी संस्थाओंका सफल संचालन करना कतई आसान नहीं। श्री.लीलाधर हेगडे का 'साने गुरुजी विद्या मंदिर' इसका सर्वोत्तम उदाहरण है।

अनुशासन याने हेठी नहीं

इसमें दो मत नहीं हो सकते कि किसी भी संगठन का विकास, उसके सदस्योंकी अनुशासनबद्धता पर निर्भर होता है। परन्तु अनुशासनबद्धता याने हेठी नहीं है। किसी भी लोकतंत्रात्मक संगठनमें नेताओं से भिन्न विचार रखनेवाले अनुयायी हो सकते हैं। होने भी चाहिए। इन विचारोंको संगठन में यथायोग्य स्थान मिलता ही है ऐसा नहीं। पर अपनेसे विरुद्ध विचार रखनेवाले अनुशासनबद्ध कार्यकर्ता जब संगठन का त्याग करते हैं, तो किसी भी संवेदनशील नेतृत्व को बडी गंभीरता के साथ उसपर सोचना चाहिए। यह हेठी जताकर संगठन नहीं बढता कि कोई आये या न आये, हमें उसकी पर्वाह नहीं।

सामने कौन है?

वर्तमान समाज में बडी तेजीसे फासीवाद की वापसी हो रही है। जब जब समाजमें निराशा, हताशा और निष्क्रियता का दौर आता है, तबतब फासीवाद को फलने फूलने के लिए जगह मिल जाती है। आजके भारत की स्थिति ठीक वैसीही है, जैसी युद्ध के पूर्व जर्मनी की थी। एक ओर बहुभुज और बहुमुखी संघपरिवार है, जो अपनी हर शाखा को बडी चतुरता के साथ जोडता और बुनता जा रहा है। दूसरी ओर एक विस्तृत बहुकोणीय समाजवादी परिवार है, जिसके आयाम तो बहुत है, पर उन्हें एकत्रित कर उसकी एक समवेत ताकत निर्माण करनेवाला नेतृत्व उपलब्ध नहीं।

समाजवादियों की कार्यपद्धतिमें कई अंतर्विरोध रहे। वे समाजवादसे संबंधित संगठनोंमें उतर आना स्वाभाविक है। पिछडे वर्गोंके उत्थान की बात निरंतर करनेवाली समाजवादी पार्टीसे लगभग सारा अस्पृश्य वर्ग दूर रहा। यही स्थिति खेतीहरों और आदिवासियोंकी थी। सेवादलसे भी ये वर्ग दूर ही थे। उन्हें सेवादलमें लानेके लिए जो योजनाबद्ध प्रयास होने चाहिए, वे हुए नहीं। मुस्लिमोंकी भी यही स्थिति है। अपवाद के गिने चुने लोग छोड दे तो सेवादल की शाखाओंपर मुस्लिमोंकी संख्या नगण्य रही। कुल मिलाकर कनिष्ठ और वरिष्ठ मध्यमवर्गतक सेवादल सीमित रह गया। उसके नेतृत्वमेंभी इन वर्गोंसे अधिक लोग आ नहीं पाये। इस स्थितिको सुधारना कोई मुश्किल काम नहीं है।

टूटे सपनों को सजाइए

'संपूर्ण क्रांति'की तरह समाजवादी समाजरचना भी एक सपना बनकर रह जाएगी ऐसा डर पैदा करनेवाले हालात चारों ओर हैं। नवजागरण के कालमें जो लहर उठी थी उसने गुलामगिरी और सामंतीशोषण का अंत कर दिया। जनतंत्र, समाजवाद और धर्मनिरपेक्षताके लिए रास्ते खुल गये। इ.स.१६०० से २००० तकके चारसौ सालोंमें दुनियाने यह देखा कि सर्वसामान्य आदमीभी बलदंड राजसत्ता के खिलाफ लड सकता है। लडकर जीत सकता है। रूसकी क्रांतिने पूरी मानव जातिके सामने एक नये समतावादी समाज की तसबीर रखी, जिसपर मनुष्य को भरोसा हो गया।

पर ये सारे सपने टूटे। १९९१ में सोविएत संघ का विघटन हुआ। पूर्व यूरप के देशोंमें एक के बाद एक समाजवादी सरकारें गिरती गयीं।

जनतंत्र के दुश्मन इस बातका जश्न मनाने लगे कि 'समाजवाद का जनाना अब दुनियासे उठ ही गया है।'

प्रसिद्ध वैज्ञानिक आईनस्टाईनने कभी अपने प्रसिद्ध लेख 'समाजवाद क्यों?' में यह लिखा था, "आज मानव जाति इस समूचे भूमंडलमें उत्पादन एवं उपभोगके लिए समुदाय के रूपमें बदल गयी है। मेरी रायमें पूंजीवादी समाजमें जो आर्थिक अराजकता हम देख रहे हैं, वही असली बुराई की जड है।"

यह जड अब वैश्विकीकरण के रूपमें न केवल भारतमें वरन् सारी दुनियामें फैल चुकी है। आईनस्टाईन ने आगे चलकर यह भी कहा था कि, "मेरा यह दृढ विश्वास है कि उन तमाम बुराइयों को दूर करनेका एक मात्र उपाय है, समाजवादी व्यवस्था की स्थापना और इसके साथही एक ऐसी शिक्षा व्यवस्था का प्रचलन जिसका झुकाव, सामाजिक लक्ष्योंकी ओर हो। इस प्रकारकी अर्थव्यवस्था में उत्पादन के साधनों का सामाजिक स्वामित्व होता है और इसका प्रयोग नियोजनात्मक ढंगसे होता है।"

पर गत दो दशकोंमें बडी तेजीसे बढनेवाले विश्व पूंजीवादने इन सारी स्थापनाओंको धता बताकर पूरी दुनियामें अपना सिक्का जमा दिया। परिणाम यह हुआ कि नूतन समाजरचना के लिए अर्धशतक पूर्व तीसरी दुनियामें जो सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और नैतिक मूल्य थे, उन सबकी धज्जियां उड गयीं। देशकी उत्पादक ईकाइयां नष्ट हो गयीं। शिक्षा और संस्कृति के क्षेत्रपर पुनरुज्जीवनवादी प्रवृतियोंका कब्जा हो गया।

समाजवादी विचारोंकी सबसे पहली दारुण पराजय सांस्कृतिक मोर्चेपर हुई। सेवादल जैसे संगठन के पास सबसे अधिक शक्तिशाली, हथियार था 'कला पथक' का। जिस दिन 'कला-पथक' रुका उस दिनसे सेवादलकी गतिमें अवरोध आने शुरू हो गये। भारतमें प्रगतिशील आंदोलन तबतक गतिमान था, जबतक उसकी सांस्कृतिक हलचल परिणामकारक थी। गत दो तीन दशकोंसे गांव और शहर के हर छोटे-बडे सांस्कृतिक उपक्रमोंपर परंपरावादियोंका प्रभाव बढता रहा है। उसे ठीक ठीक जबाब दे सके ऐसी रचनात्मक ताकतें समाजवादी, साम्यवादी विचारधाराओंके पास नहीं थी। जो थी उनका जनतापर बहुत असर नहीं हो रथा था।

सन १९८० के बाद सारे सामाजिक जीवनमें जो तेज परिवर्तन आये उसे प्रगतिशील आंदोलन ठीक ढंगसे पकड नहीं सका। प्रा.रावसाहब कसबे का

यह कथन सही है कि वामपंथी प्रगतिशील आंदोलनोंकी गत १५० सालोंमें न भाषा बदली, न दावपेंच! उनके वर्गशत्रु, उनके अनुयायी भी बदले नहीं। ये सारे आंदोलन आदमी के केवल प्राणीरूपको और उसकी प्राथमिक जरूरतोंको ही प्रधानता देते रहे। बदला हुआ आदमी और उसकी बदली हुई जरूरतें वे समझ ही नहीं पाये। परिणामतः धीरे-धीरे उनका जनाधार टूटता गया।

प्रा.रावसाहब कसबे के इस कथन में भी शत-प्रतिशत सत्यता है कि 'भारतीय वामपंथी आंदोलनके नेताओंने दुनियाके अन्य नेताओंकी तरह अपने विचार, अपने मत जनतापर लादनेकाही काम किया। सारी जनता हमारे जैसी बुद्धिनिष्ठ, इहवादी और विज्ञाननिष्ठ हो यह अपेक्षा ठीक है, पर आग्रह ठीक नहीं।'

विचारोंकी साझेदारी का माहौल जबतक सेवादल में था, तबतक उसका जनाधार बढता रहा, सैनिक और समर्थक भी बढते रहे। पर धीरे-धीरे उसके कार्योंमें और विचारोंमें भी इतनी तंगदिली आ गयी कि समविचारी संगठनों के साथ भी वह अपना तालमेल बैठा नहीं सका। युक्रांद, समाजवादी युवजनसभा, तरुण शांतिसेना, संघर्ष वाहिनी इत्यादि संगठनोंकी राह वही थी जो सेवादल की थी। उनके उद्देश्योंमें भी कोई फर्क नहीं था। फिर क्या कारण था कि मातृवत होनेवाली एक विशाल संस्था इन सभी को अपना अभिन्न अंग न बना सकी?

कभी कभी जनतंत्रात्मक सत्ता भी तानाशाही का सुप्त रूप धारण कर लेती है, और यह तानाशाही अपनों तक को पासमें फटकने नहीं देती!

मुख्यतः युवावर्ग की शक्तिपर खडे हुए वामपंथी संगठन क्या युवावर्ग के तेजीसे बढते और बदलते हुए मानस को जानते थे? उसकी सही नब्ज पकड सकते थे?

भूतपूर्व और वर्तमान समाजवादी देशोंमें इतनी तेजीसे युवा वर्ग बदला कि जब पता चला तबतक तोते हाथसे निकल चुके थे।

"सोविएत रूस के विघटन के केवल तीन साल बाद याने १९९४ में जो रिपोर्ट प्रकाशित हुई वह यह बताती थी कि पच्चीस वर्ष की उमर के लगभग ३० प्रतिशत युवक ईश्वरवादी बन गये हैं। १९८८ में मॉस्कोमें केवल पचास गिरजाघर थे, १९९३ में उनकी संख्या २५० हो गयी। १९८० में जब चीन अपने विकास के शिखरपर था, पांच करोड लोगोंने ताओ धर्म

को छोडकर ख्रिश्चन धर्म का स्वीकार कर लिया। १९९४ में अंततः चीन को परदेसी धर्म और धर्मप्रचारकोंपर बंदी लादनेवाला कानून बनाना पडा। १९८९ में मध्य एशियामें १६० मस्जिदें और सिर्फ एक मदरसा था। १९९३ में वहाँ १०,००० मस्जिदें और दस मदरसे खडे हो गये।" यह सब अपने आप नहीं हुआ, न ये केवल मूलतत्त्ववादकी वापसी है। बजरंग दलमें ६०% के आसपास दलित युवक क्यों जाते हैं? पांडुरंगशास्त्री आठवलेजी के प्रवचनोंमें हजारों युवक-युवतियोंकी उपस्थिति क्यों होती है? इन सारे प्रश्नोंपर गंभीरतासे सोचना जरूरी है। वे सारे अंधश्रद्ध, अज्ञानी और मूर्ख हैं तथा हम ही केवल समझदार और प्रगतिशील हैं, यह तो कोई जवाब नहीं हुआ!

यह मानते हैं कि शाखापद्धति सेवादल की रूढ है। किसी समय उस पद्धति की अपार उपयुक्तता थी। पर जो शाखापर आता नहीं, वह सेवादल का नहीं, यह मानना भी गैर है। जिन शारीरिक्र तथा मानसिक आवश्यकताओंकी पूर्तता पहले शाखाओंपर होती थी, वह अब स्कूलों, कॉलिजों तथा घरोमेंभी हो जाती है। उसके लिए युवा वर्ग शाखाओंपर नहीं आता है तो उसे अधिक दोष नहीं दिया जा सकेगा।

दूसरी बात काल जितनी तेजीसे बदला, युवावर्ग की जरूरतें बदलीं, उनकी आकांक्षाओंमें परिवर्तन आया, तदनुरुप शाखाओंका रूप बदला नहीं। उनका ढांचा वही है जो आजसे चालीस साल पहले था।

आज का भारत सभी स्तरोंपर अनिश्चितताके भँवर में फैसा हुआ है। मत्त राजनेता, दिनदहाडे लोगों का कल्तेआम करनेवाले गुंडे, पूरे देशभरमे फैले हुए आतंकवादी, गरीब जनता को लूटनेमें कतई कोताही न करनेवाले सभ्य दुर्जन, उदारीकरण या वैश्वीकरण के नामपर देशको बेचनेके लिए तैयार, स्वार्थी राजनीतिज्ञ, सभी क्षेत्रोंमें फैली हुई घोर अनैतिकता, धर्म एवं जातिके नामपर धूं धूं जलते शहर, गरीबी की रेखा के नीचे जैसे तैसे जीती रहनेवाली ४०% आबादी, बेशुमार बढती हुई जनसंख्या, ऐसे एक नहीं अनेकों भँवर में वह डुबता-उतराता दिखता है। उसे अगर कोई आशा है तो वह संस्कारित, राष्ट्रभक्त, अनुशासनबद्ध युवा वर्ग से। ऐसा युवावर्ग निर्माण करनेका काम अत्यंत निष्ठापूर्वक गत साठ वर्षोंसे केवल राष्ट्र सेवादल जैसा संगठनही करता आया है।

वह आजके दूषित समाज की प्राणवायु है। वैयक्तिक और सामाजिक जीवनके नीतिमूल्योंकी रक्षा और संवर्धन करनेका एक चिरस्मरणीय ऐतिहासिक कार्य उसने किया है। नवीन प्रौद्योगिकी और फासीवाद इन दोनों पाटोंके बीच पीसी जाती हुई जनताके लिए वह आशा का एकमात्र संबल है। यह भी स्पष्ट है कि समाजवाद के लिए भविष्य की राह, कमसे कम भारतमें, आसान नहीं। खासकर सेवादल जैसे बिना किसी राजनीतिक आधार के, केवल अपने नैतिक बलपर कार्य करनेवाले संगठन के लिए तो यह और भी मुश्किल बन जाती है। जिस मध्यवर्ग के बलपर वह आजतक विकसित होता रहा, उस मध्यवर्ग की मानसिकतामें अब आश्चर्यजनक बदलाव आ गया है। सोच समझकर परिवर्तन की राह पकडनेवाला यह वर्ग आज घोर आत्मकेंद्रित है।

सेवादल को एक ओर इस वर्गकी मानसिकता भी बदलनी होगी और दूसरी ओर अन्य वर्गोंको साथमें लेकर संगठन की ताकत भी बढानी होगी। वह यह मुश्किल काम भी कर लेगा, क्योंकि ऐसी बिकट स्थितियोंसे वह पहले भी गुजर चुका है।

■

संदर्भ :

१. राष्ट्र सेवादल, २५ वर्षांची वाटचाल – राष्ट्र सेवादल, प्रकाशन
२. राष्ट्र सेवादल पत्रिका – रौप्यमहोत्सवी पत्रिका– राष्ट्र सेवादल प्रकाशन
३. राष्ट्र सेवादल सुवर्ण महोत्सवी संकल्प विशेषांक – राष्ट्र सेवादल, प्रकाशन
४. स्वातंत्र्य व समता – श्री. पन्नालाल सुराणा
५. राष्ट्र सेवादल, पत्रिका– शामराव पटवर्धन गौरव विशेषांक
६. साने गुरुजी सेवापथक – राष्ट्र सेवादल, प्रकाशन
७. विचार तीर्थ – प्रा. नरहर कुरुंदकर

राष्ट्र सेवा दल : पूर्ण समय कार्यकर्ता

नासिक जिला

१. वसुंधरा केसकर, नासिक
२. मधुकर निन्हाळी, नासिक
३. मोहन गुंजाळ, येवले
४. अशोक परदेशी, मनमाड
५. आप्पा पडळकर
६. कुसुम पटवर्धन, नासिक
७. कमल उपाध्ये, नासिक
८. गोकुळ वाणी, मालेगाव कॅंप
९. वंजारी पी. बी., नासिक
१०. वसंत नाईक, सिन्नर
११. बा. य. परीट, निफाड
१२. सर्फराज पटेल, नासिक
१३. पेन्टर दिक्षीत, चांदवड
१४. पी. आर. कुलकर्णी, नासिक
१५. मधुकर बारसे तात्या, नांदगाव
१६. राजीव राऊत, नासिक
१७. राम गायटे, नासिक
१८. कुसुम कुलकर्णी, नासिक
१९. रामचंद्र कोरात्रे, नासिक
२०. भास्कर व्यंकटेश कोरात्रे, निफाड
२१. मुराळकर, नांदगाव

नगर जिला

१. विठ्ठल बुलबुले, नगर
२. सारंग पांडे, संगमनेर
३. शब्बीर शेख, श्रीरामपूर
४. पुरुषोत्तम पगारे, कोपरगाव
५. सखाराम पगारे, कोपरगाव
६. देवदास अंबुरे, नगर
७. नितीन गाडेकर, संगमनेर
८. सरला ओगले, श्रीरामपूर
९. श्री दुसरे, नगर.
१०. वसंतराव चौधरी, नगर
११. विनय सांवत, राजूर

धुळे जिला

१. प्रा. अरविंद कपोले, धुळे
२. नुरा शेख, धुळे
३. कैलास चव्हाण, साक्री, धुळे
४. गिरीषभाई शहा, धुळे
५. गो. पी. लांडगे, धुळे
६. जयवंत ठाकरे, धुळे
७. प्रा. पितांबर सरोदे, नंदुरबार

जळगाव जिला

१. भिकचंद शर्मा, जळगाव
२. भाऊ रायसोनी, जळगाव
३. श्री बडगुजर, जळगाव
४. गोपाळ नेवे, चाळीसगाव
५. डॉ. सिंधुताई चौधरी, फैजपूर

मराठवाडा

१. शाहीर प्रभाकर वाईकर, परभणी

२. डॉ. बापूसाहेब काळदाते, औरंगाबाद.
३. गंगाप्रसाद अग्रवाल, परभणी
४. गोविंदराव कालेगावकर, परभणी
५. डॉ. विठ्ठलराव तावडे, नांदेड
६. वसंतराव कुलकर्णी, हिंगोली
७. दादाराव मगर, परभणी
८. सुधाकरराव कदम, मु.पो.वसमत, हिंगोली.
९. रावसाहेब गणपतराव शिंदे, वसमत, जि. हिंगोली
१०. ॲड. सयाजी शिंदे, उमरगा.
११. शिवाजी कांबळे, येरमाळा, उस्मानाबाद.
१२. नीलकंठ कांबळे, लोहारा, जि.उस्मानाबाद.
१३. विजय शिंदे, औरंगाबाद
१४. सुनील क्षीरसागर, बीड.
१५. यशवंत इर्लेकर, बीड.
१६. बाबूराव बागबंदे, उदगीर.
१७. पन्नालाल सुराणा, उस्मानाबाद

सातारा जिला

१. केशवराव शंकरराव पाटील, सातारा
२. श्रीमती गौराताई, सातारा
३. शाहीर शिवाजीराव पवार, ता. खटाव, जि.सातारा.
४. हणमंतराव काशिनाथ साळुंके, ता. खटाव, जि.सातारा
५. दीपक पोळ, सातारा
६. राम कदम, रहिमतपूर, जि.सातारा
७. विजू पांडुरंग माने, रहिमतपूर, जि.सातारा
८. चंद्रकांत शेडगे, कोल्हापूर.
९. अनंतराव शिकारखाने, सातारा
१०. यमुताई कुंभारे, सातारा
११. शांताराम गरुड, सातारा
१२. तुषार पवार, सातारा

नागपूर जिला

१. डॉ. सुरेश खैरनार, नागपूर

ठाणे जिला

१. श्री. भाऊ कदम, ठाणे
२. दत्ता उकीडवे, भिवंडी, ठाणे
३. सौ. प्रमिलाताई उकीडवे, ठाणे
४. इंदुताई दांडेकर, ठाणे
५. यमुताई साने, ठाणे
६. दत्ता शिगवण, डोंबिवली, ठाणे.
७. श्रीरंग वरेरकर, ठाणे
८. गजानन गोंधळेकर, ठाणे

पुणे

१. विमलताई गरुड, पुणे
२. सिंधुताई काटे, पुणे
३. प्रतिभा ठाकूर, पुणे
४. प्रल्हाद रत्नपारखी, पुणे

५. भाई वैद्य, पुणे
६. सयाजी लहाने, पुणे
७. आप्पा कापसे, पुणे
८. संजय पवार, पुणे
९. छाया कोंडाळकर, पुणे
१०. मधुकर निरफराके, पुणे
११. रामभाऊ तुपे, पुणे
१२. निळुभाऊ फुले, पुणे
१३. अनुताई लिमये, पुणे.
१४. चंद्रकांत पायगुडे, पुणे
१५. उमाकांत ढगे (भावसार), पुणे
१६. सुरेश टिळेकर, पुणे
१७. मधू तळवलकर, पुणे
१८. चंद्रकांत घाटे, पुणे
१९. वासूकाका देशपांडे, पुणे
२०. सुहास पालेकर, पुणे
२१. सिराज शेख, पुणे
२२. प्रकाश कांबळे, पुणे
२३. मदन मराठे, पुणे
२४. राम पारूंडेकर, पुणे
२५. भगवान कोळेकर, पुणे
२६. सलीम शेख, पुणे
२७. राम शरमाळे, पुणे
२८. संजय गायकवाड, पुणे
२९. भाल कोरगावकर, पुणे
३०. राम रानडे, पुणे
३१. रंगा कांबळे, पुणे
३२. गोविंद नायडू, पुणे
३३. शंकर पाटील, पुणे
३४. प्रमिला रत्नपारखी, पुणे
३५. नलिनी ओगले, श्रीरामपूर
३६. विकास देशपांडे, पुणे
३७. प्रमिला नरवणे, पुणे
३८. माधव खंडकर, पुणे
३९. राम भागवत, पुणे
४०. सुरेश बोधनी
४१. श्रीसाळ, पुणे
४२. अरुण थोपटे, पुणे
४३. राजाभाऊ मंगळवेढेकर, पुणे
४४. जान्हवीताई थत्ते, पुणे
४५. मिहिर थत्ते, पुणे
४६. प्रा. सुभाष वारे, पुणे
४७. वसंत शिरोळकर, पुणे

मुंबई

१. प्रा. सदानंद वर्दे, मुंबई
२. सुधाताई वर्दे, मुंबई
३. लीलाधर हेगडे, मुंबई
४. सदा बंदरकर, मुंबई
५. शशीकांत पारीख, मुंबई
६. सुरेश डहाळे, मुंबई
७. नंदकिशोर डहाळे, मुंबई
८. कपिल पाटील, मुंबई
९. युवराज मोहिते, मुंबई
१०. कमल रेडीज, मुंबई
११. प्रभूभाई संघवी, मुंबई
१२. बापू देशमुख, मुंबई
१३. लीला चांदोरकर, मुंबई
१४. नथुराम दीक्षित, मुंबई
१५. अ.धो.बागलकर, मुंबई
१६. राम महाडीक, मुंबई
१७. मृणालताई गोरे, मुंबई
१८. नारायण फेणाणी, मुंबई
१९. अनिल रणदिवे, मुंबई

२०. निखिल वागळे, मुंबई
२१. अपर्णा रमेश खेर, मुंबई

कुलाबा

१. दत्ता गांधी, कुलाबा
२. खंडू कुलकर्णी, कुलाबा
३. भाऊ गडकरी, कुलाबा
४. आप्पा कुलकर्णी, कुलाबा
५. दत्ता कदम, (महाड)

रत्नागिरी

१. राजन इंदलकर, रत्नागिरी
२. शशिकांत लवेकर, रत्नागिरी
३. आप्पा बेर्डे, रत्नागिरी
४. गणपत तुकाराम तपकीरकर
५. शंकर पेंढारकर, (देवरुख)
६. अनंत वालावलकर, रत्नागिरी

कोल्हापूर-सांगली

१. भरत लाटकर
२. चंद्रकांत पाटगावकर
३. त्रिंबक पित्रे
४. विश्वास पाटील
५. मोहन राणगावकर, सांगली
६. केशव शिकरे, सांगली
७. शामराव पटवर्धन
८. देसाई हसनभाई
९. बाबासाहेब नदाफ
१०. चंपाताई मुळीक

बेळगाव

१. राम आपटे
२. बापू रूपाली जाधव
३. राम देशपांडे

सोलापूर

१. एस. एम. कुलकर्णी, सोलापूर
२. भाई किनीकर, सोलापूर
३. पन्नालाल लुणावत, कुर्डुवाडी
४. दगडू बरिदे, बार्शी, सोलापूर
५. रोहिदास कांबळे, सोलापूर
६. शरद नूलकर, सोलापूर
७. किशोरी गांधी, सोलापूर
८. दत्ता गांधी, सोलापूर
९. मोहन मस्तूद, करमाळा, सोलापूर.

राष्ट्र सेवा दल का झंडा

राष्ट्र सेवादल की शाखाओं पर पहले हमेशा तिरंगा लहराता था। झंडे को सलामी देने की सेवादल की अपनी एक विशिष्ट पद्धति थी। उस कारण सैनिकों के मन में झंडे के प्रति सम्मान और आदर का भाव निर्माण होता था। स्वतंत्रता के बाद तिरंगे में थोडा परिवर्तन किया गया। उसके मध्य में अशोक चक्र की स्थापना हुई और उसे राष्ट्रध्वज का सम्मान प्राप्त हुआ। सेवादल सैनिक कई दिनों तक अपनी शाखाओं पर इसी तिरंगे को ससम्मान लहराते थे। पर १९४७ में राष्ट्रध्वज संबंधी एक नियमावली तैयार की गई। स्वतंत्रता दिन और प्रजासत्ताक दिन के अलावा सार्वजनिक तौर पर राष्ट्रध्वज का उपयोग न किया जाए ऐसा फर्मान निकला।

सेवादल ने यह तय किया कि अपना एक स्वतंत्र झंडा हो। १९५९ में सर्वश्री वसंत बापट, चित्रकार ओके, लीलाधर हेगडे, प्रभुभाई संघवी और प्रमिला दंडवते की समिति ने काफी विचारविमर्श कर सेवादल के झंडे का प्रारूप तैयार किया। राज्यमंडल ने उसे मंजूरी दी।

इस झंडे में भी तीन रंग हैं। लाल रंग क्रांति का, सफेद रंग शांति और शुचिता का तथा नीला रंग व्यापकता और विशालता का प्रतीक है। सेवादल की व्यापक क्रांति का मार्ग सदैव शांतिपूर्ण रहेगा, यह उसका अर्थ है। झंडे पर होनेवाला चक्र तथा कुदाल-फावडे के प्रतीक उस क्रांति की दिशा दर्शाते हैं। ये दोनों नवनिर्माण और श्रमिक जीवन के चिह्न हैं। सेवादल श्रमनिष्ठा के साथ इस निरंतर गतिमान जीवन की लय पकडता रहेगा, इसका विश्वास उन प्रतीकों में झलकता है।

सेवादल मुख्यतः श्रमिक वर्ग की क्रांति चाहता है। कृषि-उद्योगों पर आधारित एक ऐसा नया समाज उसे बनाना है जिसमें सभी को समान मौके, समान न्याय और समान दर्जा प्राप्त हो।

सेवादल की शाखाओं पर आज भविष्य की क्रांति का संदेश देनेवाला यह झंडा लहराता रहता है और लाख लाख सैनिकों के समूह उच्च स्वर में गाते रहते हैं –

ब्रीद तुझे विस्मरूनिया सैनिका भागेल का?
क्रांति येता पाऊल मागे घेऊनि चालेल का?
ज्या ध्वजापुढती आदरे नमता
आणि नेमाने ज्यापुढे जमता
त्या ध्वजाला, प्राण जावो, संगरी रक्षाले का?
..... सैनिका भागेल का?

■